कवि नेवाज कृत

ब्रजभाषा पद्यानुबद्ध

सकुन्तला नाटक

लेखक

साहित्य शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा

मंगल प्रकाशन

गोविन्द राजियों का रास्ता

जयपुर

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता जयपुर

प्रथम संस्करण १९७० ई०

मूल्य १२-०० [बारह रुपए मात्र]

मुद्रक
मंगल प्रेस जयपुर

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल काव्य शास्त्र की दृष्टि से अद्वितीय है। रीति ग्रन्थों के प्रणयन का महत्वपूर्ण कार्य इसी काल के नामी प्राचार्यों के द्वारा सम्पादित हुआ अनेक लक्ष्य और लक्षण ग्रन्थों की रचना की गई नाना अलंकारों और छन्दों का सृजन कर कविता कामिनी की रूप श्री को सजाया-सवारा गया। प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य मे कवि को अपने कौशल के प्रदर्शन का अवसर अधिक मिलता है सम्भवत काव्य कौशल प्रदर्शन की इसी प्रवृत्ति का यह परिणाम निकला कि इसी काल में प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन अत्यन्त परिमित सख्या मे हुआ। भक्तिकाल में जितने महा-काव्यों और खण्ड काव्यों की रचना की गई सम्भवत उसका शताश भी इस काल मे नही रचा गया। समस्त रीतिकाल म कठिनता से पाँच उल्लेखनीय खण्ड काव्य उपलब्ध हैं और ये भी प्राचीन इतिहास-पुराण पर आधारित अथवा पूर्व ग्रन्थो से अनूदित यथा गुमान मिश्र का "नैषध चरित (१८०१ वि०) और पद्माकर का "राम रसायन' (१८१० वि०)।

कवि नेवाज कृत "शकुन्तला नाटक रीतिकालीन प्रबन्ध काव्य परम्परा ही की एक कड़ी है। कवि कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम् पर आधारित होते हुए भी महाभारतीय और पद्मपुराणीय शकुन्तलोपाख्यानो से प्रभावित है। वस्तुत कथानक में इतने उलट फेर कर दिये हैं कथानुबन्ध इतना बदल दिया है कि नेवाज की मौलिक कृति कहना ही अधिक उचित प्रतीत होता है। भाव भाषा कथानुबन्ध युगीन प्रभाव आदि सभी दृष्टियों से यह कृति रीतिकाल के एक नवीन प्रयोग की सूचक है। अभिजात कथावस्तु को लोक परम्परा और लोक मानस के निकट लाने का स्तुत्य प्रयास है।

इस ग्रन्थ की भाषा ब्रज है यद्यपि यत्र तत्र उर्दू और फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। फारसी इस समय की राजभाषा थी जन सामान्य भी उससे प्राय परिचित था फिर राजाश्रित कवि समुदाय भला इससे किस प्रकार बच सकता था। अत गनीम, फौज, नाहक गिला आदि प्रचलित फारसी शब्दों का प्रयोग सहज रूप से इस पद्यबद्ध कथा में भी मिलता है। वस सम्पूर्ण ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त सरल प्रवाहमयी एवं प्रसाद और ओज गुण सम्पन्न है।

'सकुन्तला नाटक'' आकार में छोटा है। यह चार तरंगों अर्थात् सर्गों में विभक्त है। इसमें कुल मिलाकर ६१४ चौपाई, १२ सोरठे, १०१ दोहे, ४ छंद, ३ घनाक्षरी, ११ सवैये, और १६ कवित्त हैं। सूफियों की मसनवी और तुलसी के रामचरित मानस की शैली पर इसकी रचना की गई है।

''सकुन्तला नाटक'' की रचना कब हुई? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि नेवाज औरंगजेब के पुत्र आजमशाह के दरबार में थे और उसी के कहने से उन्होंने ''सकुन्तला नाटक' की रचना की। यही नेवाज कवि छत्रसाल बुंदेला के यहां भी थे। इनकी वहां नियुक्ति होने पर किसी भगवत् कवि ने यह फबती छोड़ी[1]।

> भली आजु कलि करत हो, छत्रसाल महाराज।
> जहं भगवत गीता पढ़ी, तहं कवि पढ़त नेवाज॥

आजमशाह १७२८ वि० में जोधपुर का गवर्नर बनाया गया। इससे पूर्व न तो उसका कोई दरबार था न दरबारी थे। अतः १७२८ वि० के बाद ही उसने नेवाज को भी आश्रय दिया होगा और 'सकुन्तला नाटक' की रचना कराई होगी। आचार्य शुक्ल ने 'सकुन्तला नाटक' का रचनाकाल १७३७ वि० माना है। उक्त संदर्भ में यह सही नहीं लगता।

'शिवसिंह सरोज' में नेवाज की जन्म तिथि १७३६ वि० दी गई है[2]। यदि वे आजमशाह के दरबार में रहे हों तो यह जन्मतिथि सत्य हो सकती है। प्रस्तुत कृति में एतद् सम्बन्धी दोहा इस प्रकार है —

> नवल फिदेयाखान जु नंद मसलिखान।
> फरकसेन को दय फते भयो सु आजमखान॥

स्पष्ट है कि यह 'आजमखान' पहले 'फिदाई खां' था। इसी आजमखान के कहने से नेवाज ने ''सकुन्तला नाटक'' की रचना की जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है —

> आजमखान नेवाज को दी हो यह फुरमाय।
> सकुन्तला नाटक हमय भाषा देहु बनाय॥

१— हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३१७।
हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन लेखक श्री वेदपाल खन्ना, एम० ए० पी एच०, डी०, पृ० सं० २१।

२— शिवसिंह सरोज, पृ० ३३३–३५।

यह "आजमखान" किसी भी प्रकार आजमशाह नहीं हो सकता। केवल दो ही संभावनाएं वर्तमान दिखाई देती हैं कि या तो यह मुजफ्फर हुसैन कोका है या फिर मुसलेह खां जिसका तजकरा श्रीधर कृत "जंगनामा" में है। यह मुसलेह खां फर्रुखसियर की तरफ से अजीमुश्शान से लड़ा था। यह बड़ा काव्य प्रेमी और रसिक था। मुरलीधर उर्फ श्रीधर कवि ने इसकी प्रशंसा में अनेक कवितायें लिखी हैं। बहरहाल यह विषय शोधव्य है। इसकी विशद विवेचना इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड में की गई है।

नेवाज कवि पर शुक्लजी ने एक और आरोप लगाया है कि उसकी "संयोग शृंगार के वर्णन की प्रवृत्ति विशेष थी और इसीलिए कहीं कहीं वह शालीनता की सीमा का अतिक्रमण भी कर गया है"। प्रस्तुत ग्रंथ में दुष्यन्त और शकुंतला के विरह वर्णन तथा विप्रलंभ शृंगार के चित्र देख कर शुक्लजी की धारणा का अनुमोदन नहीं किया जा सकता। उन्होंने जहां कहीं संयोग को पुष्ट करने वाले हाव भाव का बखान किया है वहीं वियोग की दशों अवस्थाओं के चित्र भी दिए हैं। शकुंतला की सुधि आने पर दुष्यंत कितना दुःखी है— देखिए—

देह पियरात लागी नेह की विथा यों जागी,
भूप भागी नीदौ न परति येक छिन है।
भावत न राग बयराग सो रहत लीन्हे,
सुनि के दसा यों सुप लागत अरिन है।
आठहू पहर कहरत ही वितावत,
सकुंतला की सुधि हिय सालत कठिन है।
केहू दिन बीतत तो बितात न रात
अरु राति केहू बीतत तो न बीतत दिन है।

इसी प्रकार शकुंतला का विरह कष्ट भी उन्होंने सम्यक् रूपेण अभिव्यंजित किया है। निम्न सोरठा द्रष्टव्य है —

दृग बरसत ज्यों मेह बैठत हिय जब कांत धर।
पियरानी सब देह तबहू दुरावत सखिन सो ॥

इस प्रकार के अनेक चित्र जिनमें विप्रलम्भ मुखरित है कवि नेवाज ने प्रस्तुत किए हैं अतः शुक्ल जी का यह कहना कि नेवाज का मन संयोग शृंगार में विशेष रमता था समीचीन नहीं है[1]।

---

१ — विशेष अध्ययन — सकुन्तला नाटक का प्रथम खण्ड।

सम्पादन टिप्पणी —

" सकुंतला नाटक " के सम्पादन में इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है कि पाण्डुलिपि का मूल ही ज्यों का त्यों प्रकाशित हो। यदि किसी स्थान पर लिपि दोष मूल प्रति में है भी तो वह भी इसमें ज्यों का त्यों मुद्रित है। प्रत्येक पाठ के जो भिन्न भिन्न रूप अन्य प्रतियों में उपलब्ध हुए हैं उन्हें मूल के नीचे नंबर डाल कर लिख दिया गया है। इस प्रकार मूल पाठ की पूर्ण सुरक्षा की गई है।

टिप्पणियां इस सम्पादन की उल्लेख्य नवीनता है। विषय वस्तु के अनुसार यथावश्यक व्याख्या, शंका, समाधान तथा ज्ञानवर्धन इनका उद्देश्य है। टिप्पणियों ही के माध्यम से यह भी सिद्ध किया गया है कि कवि अपने काल की उपज होता है वह कथानक कहीं से भी क्यों न ले अपने युग और समाज तथा निज के संस्कारों से नहीं बच सकता। कहीं न कहीं उसकी अभिव्यक्ति में वे झलक ही उठते हैं।

१ १८६४ वि० की हस्तलिखित प्रति जो मेरे पास है (मूलाधार)।

२ पंडित दुर्गादास द्वारा संशोधित और बनारस से लिथो मुद्रण में प्रकाशित प्रति।

३ नर्बदेश्वर चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित प्रति।

" सकुन्तला नाटक " का यह पाठ साहित्य रसिकों और मर्मज्ञों की सेवा में प्रस्तुत है। प्रथम खण्ड जिसमें विवेचन है यथा समय प्रकाशित होगा। जिन कृतियों से सहायता ली है उनके लेखकों का आभार —

— राजेन्द्र शर्मा

उदयपुर
३०—१—७०

क्रम

द्वितीय खण्ड

कवि नेवाज

कृत

ब्रजभाषा पद्यानुबद्ध

सकुन्तला नाटक

* मूल पाठ
* पाठ-भेद
* टिप्पणियाँ

प्रथम तरग

॥ श्रीगणेशाय नम ॥[1]

कवित्त— रापत[२] हैं सूरज औ राशि की न परवाहि,
निशि दिन[३] प्रफुलित रहै[४] येक बानी के।
ध्यान हू[५] किये ते देत ज्ञान मकरद वास
नाम के कहत लिये जिनकी कहानी के[६]।
कैसे और पानी के सरोज सरि करै सीचे,
मानस म[७] शिव[८] सीस सुरसरि पानी के।
सिद्धि की सुगध पाय मेरे मन मधुकर,
आयो पुकारत पद पकज भवानी (1) के[९] ॥ १ ॥

---

१ दुर्गाय नम (A)
२ रापत न सूरज ससी की परवाहि (AB)
३ निसि वासर (AB)
४ रहत (AB)
५ ध्यानहूँ (AB)
६ वासना कमल है कहैं या जिनकी कहानी के (A)
वासनाक मेल हैं कहैं या जिनकी कहानी के (B)
७ मान मे जे (AB)
८ सिव (AB)
९ पाये पकर न पद पकज भवानी के (AB)

1–कृत्यारम्भ से पूर्व देव, गुरु, ब्राह्मण अथवा इष्टदेव आदि की स्तुति, रचना की समगल परिसमाप्ति के लिए करना परपरागत काव्य शास्त्रानुमोदित रीति है यथा– 'रङ्गविघ्नापशान्त्यर्थं नान्दीपाठी प्रयोजयेत्'' कवि नवाज ने भी इस परम्परा के निर्वहण के लिए प्रस्तुत कवित्त मे जगदम्बा भवानी की चरण-स्तुति की है। महाकवि कालिदास न 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के पूर्व मे भगवान् शङ्कर की स्तुति की है जबकि डॉ० मैथिलीशरण गुप्त ने 'शकुतला' के आदि में विदेहनन्दिनी स कृपाशील रहने की काक्षा व्यक्त की है। नेवाज ने भवानी की स्तुति की—यह बात विचारणीय है। रीतिकालीन काव्या मे कही भी भवानी का ग्रथ की समगल समाप्ति के लिए स्मरण नही किया गया है इसका

कदाचित भवानी का युद्ध की देवी के रूप में लोकपूजित रहना रहा हो, तभी तो महाकवि भूषण यत्र-तत्र वीर रस के प्रसंग में उसे स्मरण करते रहे हैं। महाकवि तुलसी ने यद्यपि इस प्रकार कदम बढाया है तथापि उनका स्मरण शङ्कर के साथ किया है-'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ' अतः नवाज का मंगलाचरण में माता भवानी की इस प्रकार स्तुति करना प्रचलित रूढि में क्रांति उपस्थित करना है। इस स्तुति के मूल में निम्न कारण प्रेरक प्रतीत होते हैं --

१ कालिदास ने करुण रस प्रधान शाकुन्तलापाख्यान की विघ्नहीन समाप्ति और सभासद एवं नायिका की रक्षार्थ-रौद्ररसावतार पुरुष के उद्बुद्ध रूप भगवान शङ्कर की प्राथना की है यथा —

> या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
> ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
> यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
> प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥१॥

कवि नवाज कालिदास के प्रभाव से यहां सर्वथा मुक्त है वे जुल्म की फरियाद जालिम ही से करने के पक्ष में नहीं। शकुन्तला पुरुष जाति ही के व्यवहार से तो प्रपीडित है पुरुष [दुष्यन्त] की वासना और मिथ्याभिमान [दुर्वासा का कुपित होना] ही की अग्नि में तो उसके सुख और यौवन की आहुति चढी है अतः उसी पीडा और तिरस्कारजन्य वेदना के कलाकुशल चित्रण के लिए पुरुष ही से प्रार्थना करना भला कैसे संगत होगा? सम्भवतया नेवाज ने इसी विचार से परम करुणाशाला जगतमाता भवानी के चरणों की स्तुति की है।

२ दूसरा प्रश्न है कि मातृरूपा नारी की स्तुति तो मंगलाचरण में विघ्नहन्त्री के रूप में डा० मैथिलीशरण गुप्त ने भी की है फिर नवाज की विशेषता क्या? बात यह है *कि लोक-रक्षण और विघ्नशान्ति के लिए भारतीय परिसर में एकमात्र विघ्न-*विनायक गजानन ही पूज्य माने गए हैं, आज भी अधिकांश भीतों पर स्थापित उनकी मूर्ति इस मान्यता की साक्षी है अतः उन्हीं की स्तुति संगत है। कवि नेवाज ने भी उसी परिवार की गजानन की जननी अमंगलहारी की माता को परम करुणामयी जान-मानकर इस पद के योग्य माना और भक्ति विह्वल होकर गाया —

'सिद्धि को सुगन्ध पाय मेरे मन मधुकर

३ एक बात और—नान्दी अथवा मगलाचरण म कृति के आख्यान की ओर कुछ सकेत रहना भी शास्त्रोक्त है —

'यस्या बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुन
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावली तु सा ॥" [नाट्यदर्पण]

अर्थात् जिस नान्दी म अभिधेय कथावस्तु के, श्लेष अथवा समासोक्ति के द्वारा बीज का विन्यास किया जाता है उसे पत्रावली नामक नान्दी कहते हैं। प्रस्तुत कवित्त मे इस का भी कुछ आभास हमारे विवेच्य भवानी शब्द ही मे मिलता है। भवानी युद्ध की देवी हैं ऐसी मान्यता भ्रामक और निराधार है। इस शब्द का प्रयोग प्रथमत देवी के विवाह प्रसग म किया गया है डा० यदुवंशी का यह कथन द्रष्टव्य है —

मत्स्यपुराण' मे एक और सस्कार की चर्चा की गई है जिसमे शिव और *पार्वती की एक साथ ही पूजा होती थी। यहाँ पार्वती का भवानी कहा गया है —*

विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ।
प्रसन्नवदनौ वन्दे भवानीपरमेश्वरौ ॥ (मत्स्यपुराण ६०।११)

यह सस्कार भी लगभग वैसा ही था जैसा 'उमामाहेश्वर व्रत और यह वसन्त ऋतु म शुक्ल पक्ष की तृतीया को सम्पन्न होता था। इसी दिन सती का भगवान शिव मे विवाह हुआ था। यह सस्कार वास्तव मे सती के सम्मान के लिए ही था और शिव की उपासना उनके साथ, उनके पति होने के नाते की जाती थी।

(शैवमत पृ० १७६)

इस प्रकार सिद्ध है कि 'भवानी शब्द का सकेत उमा माहेश्वर विवाह प्रसग की ओर भी है जैसा कि इस काव्य म भी शकुन्तला-दुष्यन्त के परिणय का प्रसग चित्रित है। इसके अतिरिक्त रत्याद्दीपक वसन्त ऋतु की मादक सुगन्ध भी घ्राणित की जा सकती है। यह 'भवानी शब्द वस्तुत युगल रूप का अभिव्यजक है, यो भी —

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहित शिव ।
अन्योन्य च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथा प्रिये।
न वृक्षरहिता छाया न च्छायारहितो द्रुम ॥

(कौ० ज्ञा० नि० १७।८।६)

अत कवि नेवाज का प्रस्तुत कवित्त उनके गहन विचारकत्व, मननशीलता और काव्याश्रित प्रतिभा का अभूतपूर्व निदर्शन है ऐसा विश्वास है।

४ सम्भव है नेवाज शाक्त हो या शाक्तप्रभावाकुलित—ऐसी भी सम्भावना हो सकती है। यह प्रसग शोध्य है। इस धारणा की पुष्टि नर्मदेश्वर चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'सकुन्तला नाटक' की प्रारम्भिक पक्ति 'दुर्गायै नम ' से भी होती है।

दोहा— नवन फिदैया पान(1) को नन्द सो मसलिपान।
फरक मेन(2) को दय फ्ते भयो सु आजमपान(3) ॥२॥ (1)

१ नेवल फिदाई थानि को वली मुसालेपान।
फरुकसेर को द फते भयो वो आजमयान ॥ (A)
नवल फिदाई थान को नदन मुसलेपान।
फरुकसेर को द फते भयो व आजमयान ॥ (B)

1– फिदाई खा एक उपाधि थी जो महत्वपूर्ण सेवाओ के बदले मुगल शासनकाल म दी जाती थी। यह उपाधि कई व्यक्तियो का दी गई –

१ मीर जरीफ–यह शाहजहा का अत्यत स्वामिभक्त सेवक था। 'अपने शासनकाल के १२वें वर्ष मे इसे मौहर (अरब) से अच्छे घाडे लाने के लिए एक हजारी २०० सवार का मनसब तथा फिदाई खाँ की पदवी मिली।"

(मासिर उल उमरा भाग ४ पृ० ७४–७६)

२ हिदायत उल्ला– अपने (जहागीर) शासनकाल के १४वें वष मे मीर जरीफ के मरने पर इसे फिदाई खाँ का पुराना पदवी मिली।' (मा० उ० उम०, पृष्ठ ७६–८२)

३ "मुहम्मद सालह खाँ और सफदर खाँ मुहम्मद जमालुद्दीन, दोनो आजम खाँ कोका के लडके थे। औरगजेब के राज्य काल के २१वें वष म जब आजम खाँ बगाल के शासन स हटाए जाने पर ढाका पहुच कर मर गया तब बादशाह ने हर लडके के लिए शाक का खिलअत भेजा। पहला पुत्र ३८वें वर्ष म अपने पिता की पुरानी पदवी पाकर शायस्ता खाँ के स्थान पर आगरा का फौजदार नियत हुआ।

(मासिर–उल–उमरा, भाग ४ पृ० ८३)

४ इसका नाम मुजफ्फर हुसन था पर यह फिदाई खाँ कोका के नाम से प्रसिद्ध था। यह खानजहा बहादुर कोकलताश का बडा भाई था। शाहजहा के राज्यकाल म अपनी सेवाओ के कारण विशेष सम्मान और विश्वास का पात्र हो गया था। 'बादशाह ने कृपा करके इसका मसब पाँचसदी २०० सवार बढाकर ३०वें वष के प्रारम्भ में फिदाई खाँ की पदवी दी थी। (मासिर–उल उमरा भाग २ पृ० ३८५)

यही मुजफ्फरहुसन उफ फिदाई खाँ कवि नवाज का आश्रयदाता था। विशष विवरण क लिए देखिए विवेचन खण्ड।

2– इतिहास के निकष पर यह फरुकसेर नाम जा कि फर्रुखसियर का द्योतक है वचन सिद्ध नहीं होता। कवि नवाज का आश्रयदाता आजम खाँ जिसक शासन म 'सकुन्तला नाटक' की रचना का गई १६७८–७६ ई० म मर गया और फरुखसियर का जन्म ११ जनवरी १६८३ ई० का हुआ था अर्थात् 'सकुन्तला नाटक' के रचनाकाल म फर्रुखसियर ई व्यक्ति न था। ऐसा सिद्ध हो जाने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर

यह 'फरकसेन' या 'फरकसर' कौन था ? जिसे पराजित करने पर फिदाई खाँ, 'आजम खान' बन गया ?

विवेचन मे आजम खा के प्रसग मे यह सप्रमाण स्पष्ट कर दिया गया है कि सीमान्त प्रदेश मे सन् १६७२ ई० मे अफगानो के दुर्दांत विद्रोह और अफ्रीदी नेता अकमल खाँ के दमन के फलस्वरूप फिदाई खा को औरगजेब ने प्रसन्न होकर आजम खा की उपाधि दी थी। 'अफ्रीदी' (अफगानियो के लिए प्रयुक्त प्रचलित नाम) शब्द ही का सक्षिप्त काव्यरूप फ्रादी>फिरद>फरद हो सकता है। किसी शब्द का इतना अधिक परिवर्तित हो जाना लोक भाषा जगत मे कोई आश्चर्य नही है यहा 'गर्गारण्य' का 'गागरोन' और 'कदम्बवास' का 'कदमास' तक बडी सरलता मे हो जाता है। स्वर सकोचन की प्रवृत्ति को तो प्रयत्न लाघव भी प्रोत्साहित करता है 'मास्टर साहब' का 'मास्साब' और 'लाट साहब' का 'लाट्साब' इसी के निदर्शन हैं। अत फरदसेन मान लेने पर अर्थ स्पष्ट हो सकेगा।

3-देखिए विवेचन 'कवि नेवाज का आश्रयदाता' शीर्षक अश।

4-सम्पूर्ण पुस्तक मे यही एक ऐसा दोहा है जो नेवाज के आश्रयदाता का कुछ परिचय देता है किन्तु दुर्भाग्यवश इसी के पाठ की दुर्गति हो गई है। 'B' प्रति के सशोधक ने भी इसकी शुद्धि का सम्यक प्रयास नही किया उन्होने कदाचित नही सोचा कि 'नदन मुसलेपान' और 'फरुकसेर' आदि शब्दो की अर्थ सम्बन्धी सगति क्या होगी ? नन्द का अर्थ होता है, पुत्र—क्या आजमखान फिदाई खा का पुत्र था ? मुसलेपान का कोई अर्थ प्राप्त नही होता। फरकसर की बात ऊपर हो चुकी। अत अजीब धर्म सकट है—प्राप्त पाठ का अर्थ गडबड है और विद्वज्जनो के पाठ मे हस्तक्षेप करना धृष्टता है। सुधी पाठक क्षमा करें। फिर भी अर्थ की स्पष्टता के हित, विचार पूर्वक मैं इसका अधोलिखित पाठ समझता हू —

।।। ।ऽऽ ऽ। ऽ ऽ। ।।ऽ।ऽ।
नवल फिदैया खान जो, रग मुसल्लेहखान।

।।।ऽ। ऽ ।। ।ऽ ।ऽ । ऽ।।ऽ।
फरदसेन को दय फते, भयो सु आजमखान॥

रग—औरगजेब के लिए प्रयुक्त सक्षिप्त नाम।

मुसल्लेह—मुसल्लह— हथियार बन्द, सशस्त्र, अस्त्र-शस्त्र सज्जित।

(उर्दू हिन्दी शब्दकोष, पृ० ५३९)

खान—अध्यक्ष, अमीर, सरदार, बहुत बडा और प्रतिष्ठित-व्यक्ति

(उर्दू-हिन्दी शब्दकोष, पृ० १५६)

अत अर्थ होगा कि फिदाई खा जो कि औरगजेब की शस्त्र-सज्जित विशाल-वाहिनी का सरदार था, अफ्रीदियो की सेना को परास्त करने के कारण 'आजमखान' कहलाया।

दोहा— वपत विनद महावलो आजमपान अमीर।
दाता ज्ञाता सूरमा[1] सुन्दर माचो[2] वीर ॥ ३ ॥
देपि सूम साहेब सकल मव[3] जग ते उठि आइ।
हिम्मति आजमपान के हिय[4] मे रही समाइ ॥ ४ ॥
कल्पवृक्ष ज्यो[5] सब सुरन[6] करि पायो[7] अस मान।
सो[8] पायो सब गुननि मिलि[9] भुव मे[1] आजमपान ॥ ५ ॥
आजमपान नवाब को भावत[11] सुकवि समाज।
नाते अनि ही करि दया[12] रापे[13] सुकवि नेवाज(1) ॥ ६ ॥

---

१ सूरिवा(A) सूरिवा (B) २ साचो (साचो सुन्दर धोर) (AB) ३ जस (AB)
४ ही (A) ५ (AB) प्रति मे नहीं है ६ ज्या (A)
७ है (AB) ८ त्यौं (AB) ६ गुन निमित (A)
६ गुन नमित (B) १० उदित (A) उद्दित (B) ११ भावहि (AB)
१२ कृपा (AB) १३ राख्यो (AB)

प्रति सख्या (A) म दोहा सख्या ३ से पूव एक दोहा और दिया हुआ है जो इस प्रकार है—

सोहत ज्यो असमान मो सतभानु अरु भानु।
जस प्रताप सति जगत सो भुइ मो आजमपान ॥

पाचवें दोहे के बाद (A) प्रति म निम्न घनाक्षरी और कवित्त अधिक हैं—

घनाक्षरी— रावन के मन को नवावन को रामचन्द्र,
लीन्हों अवतार दसरथ के घराने मो।
कस बध काज ज्यों 'नेवाज' मथुरा मो
अवतार लीन्हो गोप के घराने मो।
गुनिन के दरिद को दहन को दुनी भो
अवतार लीन्हो आजमपानि आजु के जमाने मो।

कवित्त— गुनिन म देखि के नेवाज' की गरीबनाई
निपट नेवाज जू का दरिद कोउ सालियो।
फरुक्सेर की तरफ होइ फते कीनो हो तो
मवजदान जो गनोम सो उतारियो।
आजमखान अजब गहर सो रापन
रापनि को गती जो गरीबन को पालियो।
रग मोच चित्त रसवादनो मा दिय
कहिले मदे जग मो समसेरन सो घालियो ॥

1—"लिप लिरवन 'कवि परिचय' शीर्षक म द।

आजमपान नेवाजऽ कौ[1] दीन्ह्यो[2] यह फुरमाय[3]।
सकुन्तला नाटक हमय[4] भापा देहु बनाय ॥ ७ ॥
जाते भई सकुन्तला पहिले बरनौ[5] ताहि।
पीछे और कथा कहौ[6] आदि अन्त निरवाहि(1) ॥ ८ ॥

सवैया

येक समय मुनि नायक कौसिक(2) कानन जाय महातप कीन्हो।
दह को दीन्हो कलेस महा मिटि वेसु[7] गयो न करयो[8] कछु चीन्हो[9] ॥
या विधि[10] नेम किये ही[11] नेवाज निरजन(3)के पद[12] म चित[13] दीन्हो।
माधि कै जोग को आमन यो इन्द्रासन[14] इन्द्र(4) को चाहत लीन्हो ॥ ९ ॥

---

१ कौ (A) कौं (B) २ दीनो (AB) ३ फरमाइ (AB) ४ हम (AB)
५ वरनत (AB) ६ कहत (AB) ७ भेसु (AB) ८ पर (AB)
९ चीनो (AB) १० नित (A) ११ हैं (A)हैं(B) १२ पग (B)
१३ मनु (B) १४ इन्दरासन (AB)

1–अद्यतन प्राप्त उन समस्त कृतियो म, जिनमे शाकुन्तलोपाख्यान वर्णित है,प्राय कथा का प्रारभ दुष्यन्त की मृगया स किया गया है–वस्तुत सभी के अवचतन म 'महासत्वाऽपि गम्भीर क्षमावान् विकत्थन' आदि नायक का धीरोदात्तत्व ही रहा है इसीलिए नाटक की प्रधानपात्रा शकुन्तला को गौण और दुष्यन्त को प्रधान स्थान दिया गया है। कवि नवाज ने इस दिशा म मौलिक रूप प्रस्तुत किया। उन्हान शकुन्तला को प्रधान स्थान दिया और परम्परागत रूढियो का खण्डन कर एक सामान्या अप्सरा-पुत्री को नाटक का नायिकत्व प्रदान किया, इसीलिए वे अपनी कथा का प्रारम्भ शकुन्तला क जन्म की कहानी से करते हैं। (डा० मैथिलीशरण गुप्त न भी अपन काव्य का प्रारम्भ शकुन्तला के जन्म और बाल्य काल के वर्णन से किया है।) अन्य रचनाकारो ने यह प्रसग शकुन्तला अथवा उसकी सखियो के मुख स कहलवाया है। उन्होने चूकि यह समस्त व्यापार स्वय नही देखा था अत उनका कथन सैकिन्ड हैंड रहता है। शकुन्तला के जन्म का उपाख्यान अत्यन्त सरस और मनोरम है। नाटकीय दृष्टि से भी इसका अभिनय अत्यन्त प्रभावशाली और आल्हादकारी रहना सम्भव है अत इसका स्वतन्त्र चित्रण न किया जाना प्रशसनीय नही था। नवाज की इस नव उद्भावना ने 'सकुन्तला-नाटक' की इस कमी को तो पूर्ण किया ही है, साथ ही उसकी प्रभावशालीनता म भी वृद्धि की है। छन्द सख्या १८ तक शकुन्तला के जन्म, मेनका के द्वारा उसके छोडे जाने और कण्व ऋषि द्वारा उसके पालनार्थ आश्रम मे ले जाने की कथा वर्णित है।

2–इनका जन्म का नाम विश्वबन्धु था। बाल्मीकीय रामायण के अनुसार इनका वश-वृक्ष इस प्रकार है। प्रजापति>कुश>कुशनाभ>गाधि>विश्वामित्र। किन्तु वायुपुराण और हरिवशपुराण म इन्हें चन्द्रवशी शाखा की ३७ वी पीढी में उत्पन्न बताया गया है। बृहद्रथ के चक्रवर्ती पुत्र सहोत्र के तीसरे पुत्र वहन. जिसने पौरवो का स्वतन्त्र राज्य काय

कुब्ज में स्थापित किया था की परम्परा में इ ह स्थापित किया गया है जा इस प्रकार है । सुहात्र > बृहत > जह्नु > अजक > बलाकाश्व > वल्लभ > कुशिक > गाधि > विश्वामित्र। कुशिक अत्यन्त प्रतापी राजा और दवर्षि हुए। इनकी ऋचाएँ ऋग्वेद क दसा मण्डल में मिलती है। इन्ही के नाम पर विश्वामित्र का 'कौशिक' कहा जाता है। अपने पिता गाधि, जिन्हें वेदा में गाथिन् कहा गया है, और पितामह कुशिक की अपेक्षा विश्वामित्र अधिक प्रतापी और तपस्वी हुए। इन्हे 'ब्रह्मर्षि' की पदवी प्राप्त हुई, जबकि उन दाना का 'देवर्षि' ही कहा गया है।

यदि पौराणिक परम्परा का मान्यता दी जाय तो लोध्यन्ति भरत विश्वामित्र क पूर्वज और इनसे बारह पीढी पूर्व हुए सिद्ध हात है और इस प्रकार विश्वामित्र और मेनका के ससर्ग स शकुन्तला के उत्पन्न होन की कथा निराधार और निर्मूल सिद्ध होती है। जब शकुन्तला ही नही तो भरत कस आ सकता है?

बाल्मीकीय रामायण के अनुसार विश्वामित्र न राजा होकर कई हजार वर्षों तक राज्य किया। एक बार वसिष्ठ के ब्रह्मबल स परास्त होकर इन्हे क्षात्रबल क प्रति विरक्ति हो गई और ब्रह्मर्षि' पद प्राप्त करन के लिए कठार साधना रत हो गए। पुष्कर तीथ पर १ हजार वष तक तपस्या करन के उपरान्त जब व पुन कृच्छ्र-साध्य साधनाओ म लगे उसी समय मेनका द्वारा इनकी तपस्या का खण्डित किया गया जिसका वणन बाल्मीकीय रामायण में इस प्रकार है 'तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर मेनका नाम की एक परम सुन्दरी अप्सरा पुष्कर ताथ में आई और वहाँ स्नान करन लगी। उसक रूप और लावण्य का कही उपमा नही थी। मुनि की दृष्टि उसके ऊपर पड़ी और वे कामदव के वश में हो गए। इस प्रकार उनकी तपस्या म विघ्न पड गया।

(बाल्मीकीय रामायण—बालकाण्ड पृ० ७७—गीता प्रेस गोरखपुर)

इस प्रकार विश्वामित्र क काल के सम्बन्ध में अनेक विवाद हैं। प्रसिद्ध अनावृष्टि के बाद हमारे यह विश्वबन्धु सत्यव्रत त्रिशकु के यज्ञ मे पौराहित्य करन के कारण 'विश्वामित्र' कहलाये थे। इस प्रकार यह मानना कि एक ही व्यक्ति सत्यव्रत त्रिशकु दुष्यन्त और वशिष्ठ के समय से लेकर राम के समय तक जीवित रहा होगा बुद्धि सगत नही लगता। मेरे विचार से 'कुशिक' की भाति विश्वामित्र' भी काई गोत्र बन गया होगा अथवा वतमान शकराचाय' की भाति कोई गद्दी स्थापित हो गई होगी—जो भी उस वश म उत्पन्न हाता हागा या गद्दी पर बैठता हागा विश्वामित्र' कहलाता होगा। इस प्रकार परम्परा एक ही नाम से चली होगी किन्तु आगे चलकर भ्रमवश गाधिसुत कुशिक तथा विश्वामित्र तथा अन्य 'विश्वामित्र एक ही माने जाने लगे।

वस्तुत यह परम्परा तो एक है किन्तु व्यक्तित्व पृथक पृथक हैं। बहरहाल यह विषय शोध्य है। भारत का प्राचीन इतिहास इतना अधिक उलझा हुआ है कि *वास्तविकता प्राप्त करने का यत्न करना नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लता छेत्तुमृषि र्व्यवस्यति* तुल्य ही होगा।

3—या तो भारतीय वाङ्मय म यह शब्द प्राचीनकाल स प्रयुक्त होता रहा है किन्तु हिन्दी

माहित्य म इसका प्रयाग सातवी शता"ी के सिद्ध सरहपा के दाह म प्रथमत प्राप्य है। और वह भी स्वय मूल ग्रथ अर्थात् निराकार ब्रह्म के रूप म –

हँउ जगु हँउ बुद्ध हँउ णिरञ्जण।
हँउ अमणसिग्रार भव भञ्जण॥

(दाहा काप–स० डॉ० प्रबाधचन्द्र बागची)

नाथा और सता न भी इसा मौलिक भाव को बनाये रखन की चेष्टा की कि"तु सामाजिक मनास्था के परिवतन के साथ साथ इस निराकार का भी आकार दिया जाने लगा—अकाय की काया झलकने लगी –

घरवारी सा घर की जाणै। बाहरि जाता भीतरि आणै।
सरब निरतरि काटै माया। सा घरवारी कहिए निरञ्जन की काया॥

(गारखवाणी, पृ० १६–स० डा० बडथ्वाल)

गारख तक की यह अमूत काया भक्तियुग और रीतियुग की भावनाओं में मूत हो गई और नवाज न निरञ्जन का सपाद-मवाहु बनाकर प्रस्तुत कर दिया। वस्तुत नवाज क समय तक निराकार और निगु ण ब्रह्म का महत्व भी कम हा गया था।

इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्माकुनित निरञ्जन सम्प्रदाय भी रहा है। इस मत का इष्टदेव 'निरञ्जन' कहलाता था। धर्म सम्प्रदाय म, जो आज भी उडीसा के उत्तरी भाग छोटा नागपुर और रीवा प्रदेश म अवगुण्ठित जीवन व्यतीत कर रहा है, यही देवता 'धर्म-देवता' क रूप म पूजित है। यह धर्मदेवता' कबीर पथ म भी सुपूज्य है किन्तु निराकार शून्य और निर्विकार रूप में। धर्म-सम्प्रदाय म इसका रूप या है –

आ यस्यात नादिमध्य न च करण चरण नास्ति कायो निनादम्
नाकार नादिरूप न च भयमरण नास्ति जन्मैव यस्य।
योगीन्द्र ध्यानगम्य सकलजगत सवसकल्प हीनम्
तत्रैकोऽपि निरञ्जनाऽमरवर पातु मा शून्यमूर्ति॥

इसक अतिरिक्त धर्माम्बिक म भी इसके रूप की सुन्दर व्याख्या है।

4–विश्वामित्र के बढ़ते हुए बल और तेज का देखकर इन्द्र के मन म अपनी गद्दी के लिए शङ्का उत्पन्न हाना स्वाभाविक ही था। विश्वामित्र और इन्द्र के सघर्ष का सकेत यत्किञ्चित त्रिशकु के सशरीर स्वर्ग भेजन की चेष्टा और नवीन सृष्टि की स्थापना के प्रसग म मिलता ही है। विश्वामित्र न नए देवता भी बनाए थे।

वाल्मीकीय रामायण क अनुसार इन्द्र ने रम्भा नाम की अप्सरा को विश्वामित्र को लुभान क लिए भेजा था जिस ऋषि न क्राध म भरकर दस हजार वर्षों तक पत्थर की शिला बन कर पडी रहन का शाप दिया था। विश्वामित्र ने यद्यपि काम और मोह पर विजय पाली थी, किन्तु क्राध क वश हो जाने क कारण उनका तप पुन नष्ट हो गया और उन्हें फिर कठोर साधना करनी पडी। इसके अतिरिक्त सत्यव्रत त्रिशकु के साथ चोरा और चाण्डाला की सभा सगठित करक यह उत्तर कोसल के राजगुरु वसिष्ठ को भी परास्त कर चुके थे। ऐसी अवस्था म इन्द्र का सशक होना स्वाभाविक ही था।

सवैया

तीरथ न्हवै को कोऊ बच्यो न फिरयो सिगरी सरितानि के कूलनि।
चारिहु[1] आगि के बीच मे बैठि सह्यो सविता की[2] सताप की(1) सूलनि॥
धूम को पान(2) अमान किया पग ऊपर[3] बाधि अधोमुख मूलनि[4]।
चौसठि साल विसाल(3) ऋषीश्वर[5] पाय रह्यो वन म[6] फल फूलनि॥१०॥

---

१ चारिहुँ (A) चारिहू (B)   २ (B) प्रति में नहीं है २ के (A)
३ ऊरध (AB)   ४ भूलनि (A)
५ रिषीसुर (A) रिषीस्वर (B)   ६ के (AB)

1—हठयाग की क्रियाम्रा मे पञ्चाग्नितप का महत्व निर्विवाद है। यह तप विशप वैष्णवा शाक्त शैवा और वाममार्गियो आदि सभी म समानरूपेण प्रचलित था। एक चतुष्काण बनाकर उसके चारो कोनो पर प्रखर अग्नि प्रज्वलित की जाती थी। साधक उसके बाच मे बठकर उस चतुष्कोणस्थित अग्नि के आतप को सहता या पचमाग्नि सूर्य के प्रखर ताप को रहती थी। इस प्रकार यह पञ्चाग्नि तप सम्पन्न हाता था जैसा कि कल्कि–पुराण मे प्रमाण है –

पञ्चातपा या पञ्चाग्नि साध्य तपाविशेष।
यत्रयिर्दाहभि शुष्कैश्चतुर्दिशु चतुष्कृतम्।
वह्नि–सस्थापन ग्रीष्मे तीव्राशुस्तत्र पञ्चम॥

2—हठयौगिक प्रक्रियाम्रा म इस साधना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर को कष्ट देकर सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा हठयागियो का प्रचलित सिद्धान्त है। पार्वती ने भी साधना रत हा धूमपान किया था। हरतालिका महात्म्य क प्रसग मे आई हुई पौराणिक कथाम्रा मे इसका उल्लेख है। इस साधना के भी जनक अन्य वामपथी साधनाम्रा की भाति भगवान शङ्कर ही हैं जसा कि देवी भागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्धान्तगत एकादश अध्याय म वर्णित इस कथा से सिद्ध है।

दवा स पराजित होकर दैत्या को साथ लेकर काव्य-उशना भगवान शङ्कर क पास गए और बाले कि हे धूर्जटि हमे ऐसा मन्त्र दीजिए जिससे देवो की पराजय और दैत्या की जय हा। उनकी प्रार्थना सुनकर शङ्कर साचने लगे कि देव तो मेरे रक्षणीय हैं। अत उनकी पराजय क लिए इन्द्र मन्त्र कैसे दू। इसीलिए उन्होने निश्चय किया कि इन्हें अत्यन्त दुष्कर और उग्र साधना बतानी चाहिए ताकि यह कर ही न सकें और फलत इन्हे मन्त्र की प्राप्ति न हो। यह भाव इस श्लोक से स्पष्ट है –

रक्षणीया मया देवा इति सचिन्त्य शकर।
दुष्कर व्रतमत्युग्र तमुवाच महेश्वर॥ २५॥

शकर द्वारा बताई गई इस साधना का रूप इस प्रकार है —

पूर्ण वर्षसहस्र कणाधूममवाक्शिरा ।
यदि पास्यसि भद्र त तता मत्रानवाप्स्यसि ।। २६ ।।

अर्थात् यदि तुम सौ वर्ष तक नीचा सिर करके कण धूम का पान करो तभी देवा को जीत लने वाले मन्त्र की प्राप्ति सम्भव है।

3–चौसठ वर्षो ही का उल्लेख नवाज ने क्या किया ? इसका कोई सन्तोषजनक समाधान प्राप्त नही हो सका। न तो पुराणा म ही इसका उल्लेख है और न किसी अन्य साधन पद्धति म। तथापि तीन सम्भावनाएँ समझ म आती है जिन्हे सुधी पाठक यदि ठीक समझे तो ग्रहण करें —

१ विश्वामित्र ही नहा प्राय साना प्रसिद्ध ऋषि किसी न किसी रूप से वाममार्गी साधन स सम्बद्ध थे फिर विश्वामित्र तो स्पष्टत ही नारद (वामदेव) के अनुगामी थे इसका मूल कारण वशिष्ठ से शत्रुता थी। वशिष्ठ दक्षिणपथी वैदिक ऋषि थे और विश्वामित्र वामपथी। या भी विश्वामित्र ने जो चमत्कार–त्रिशकु को सदेह उडाकर स्वर्ग पहुचाने की चेष्टा, नवदेवा, ग्रहा, उपग्रहा का निर्माण आदि–दिखाए हैं वे बिना योगिनिया की सहायता के सम्भव नही है। अत अवश्य ही उन्हे चौसठ योगिनियाँ सिद्ध रही होगी और उन्हान इसी चौसठ वर्ष की दुर्धर्ष तपस्या म उन्हे सिद्ध किया होगा।

२ चौसठ का यदि हम सधि विच्छेद करें तो चौ+षट भी हो सकता है अर्थात् ४+६=१०। विद्याएँ दस होती है यथा–ब्रह्मज्ञान, रसायन, श्रुतिविद्या, वैद्यक ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, तैरना, संगीत, नाटक, अश्वारोहण, कामशास्त्र, चार्य और चतुरता। हरिश्चन्द्र की कथा म प्रसग आता है कि ये दश विद्याएँ उनके दरबार म उपस्थित होकर निवेदन करती हैं कि विश्वामित्र उन्हें बडे कष्ट देता है, उनका दुरुपयोग करता है। अत उन्हे किसी प्रकार मुक्ति दिलाई जाव। इस प्रसङ्ग स भी सिद्ध है कि विश्वामित्र ने दश विद्याओ को सिद्ध कर लिया था। सम्भव है इन्हे ही इस महान् तप के काल मे उसन प्राप्त किया हो।

३ 'विसाल' विशेषण भी यत्किञ्चित विचारणीय है। सम्भव है चौसठ की कुञ्जी यही हो। विष्णुपुराण म ब्रह्मा की आयु केवल एक सौ वर्ष बताई है —

निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशत स्मृतम् ।
तत्पराख्य तदर्द्ध च परार्द्धमभिधीयते ।। ३।६ ।।

किन्तु ब्रह्मा के यह वर्ष दिव्य-वर्षा से भी चौदह गुना बडे होते हैं। दिव्य-वर्ष हमारे एक वर्ष स ३६० गुना बडा होता है। अत सम्भव है विश्वामित्र के समय मे 'विसाल' नामक कोई सवत्सर प्रचलित हो जो हमारे सामान्य-वर्ष से भिन्न और बडा हो।

घनाक्षरी— घप के दिनन सनमुप हेरै[1] सूरज सो
चारा[2] ओर प्रबल अनल वारि[3] धरि कै।
जाडे के दिनन[4] म रहत जलसाई वैठि[5]
रहत नदीन म गरे लौ जल[6] भरि कै॥
लपि[7] विश्वामित्र को विसाल नेम सजमु
यो[8] अति ही सुरेस ससदर(1)[9] भयो डरि कै।
मैन(2) के प्रपच[10] करिवे को मघवान तवै[11]
मेनका(3) बुलाई सनमान बडो करि कै॥ ११॥

१ रहै (AB) २ चारयो (AB) ३ चारि (AB) ४ दिननि (AB)
५ पौढि (AB) ६ सुजल (AB) ७ देषि ८ सो (B)
९ ससक्ति(AB) १० प्रबड (B) ११ मघवा ने तव (AB)

1– शशधर अर्थात् खरगोश को धारण करने वाला चन्द्रमा–इसका मूल अर्थ है। इसी शब्द का तद्भव रूप 'ससन्र ह। इस शब्द म जहाँ भय के कारण पीला पड जाने का सकेत है वही खरगाश की भाति सशकित हो सिकुड कर बठ जाने का भी आभास ह। राजस्थानी अपभ्रंश मे यही ससहर' बना है। मेरे विचार से ससहर अपभ्रंश व्याकरणानुरूप है ससन्र नही–जसे पितृघर अथवा पितृगृह का पीहर। अत 'ससहर' पाठ ही शुद्ध होगा। ढोला मारू मे प्रयुक्त इस शब्द का देखिए –

हस गवणि कन्नी सुजघ कटि केहरि जिम खीण।
मुख ससहर खजन नयण कुच स्रीफल कठ वीण॥

2–इस शब्द का सस्कृत रूप सम्भवत मदन ह जो मद्' धातु मे ल्युट प्रत्यय के स्थान मे अनादेश करके बनता ह। मद् का अर्थ है 'तृप्तियोग (सि० कौ० पृ० २२८–प्र० श्री राजस्थान सस्कृत कालेज मीरघाट बनारस प्रथम सस्करण) इस प्रकार मदन का अर्थ होगा 'तृप्ति प्रदान करने वाला। द के स्थान पर अपभ्रंश प्रभाव स 'य हो गया और 'मदन का मयन बना। इस प्रकार का वर्ण रूपान्तर अन्यत्र गजेन्द्र' का गयद' 'मृगाङ्क' का मयक और 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' का तिलोयपण्णत्ति आदि मे भी देखा जा सकता है।

3–प्रचलित कथानुसार आदियोगी शिव के तप खण्डन का यत्न कामदेव ने किया था। शिव ने क्रुद्ध होकर उसको भस्म कर दिया था। पुन मदन-पत्नि रति की अनुनय विनय पर उन्होने उसकी शक्ति का तो पुर्नस्थापित कर दिया किन्तु उसे शरीर प्रदान न किया। इसीलिए मदन अनङ्ग सज्ञक भी हुआ। भगवान शङ्कर ने रति और रतिपति को सदैव के लिए एकाभिभूत कर दिया मानो की शक्ति पारस्परिक मिलन और साहचर्य ही म अक्षुण्ण रखी–रति स्त्री रूप मे और रतिपति भावना के अरूप म रहा। इसकी शक्ति त्रिलोक जयी बनी। रति रहस्य की निम्नपक्ति प्रमाण है –

'अनगेनाबलामगाजिनायेन जगज्जयी'

अत मयन की शक्ति ही का नामरूप 'मयनका है। अगल कवित्त म तो वह

दोहा– श्रादर दपि सुरेस को हरपित हृदै सु पोलि[1] ।
या विधि तव मघवान सो उठी मैनका बोलि ॥ १२ ॥

कवित्त– श्रौर की कहा है बात[2] हरि हरहू॰ सो जो कहौ
(मैं) सा[3] मनमथ[4] वस काम करि श्राऊ तौ[5]
मेरे महामोह मे[6] ठहरि सकै छिन भरि
श्रैसो तिहु लोक मे सुयागो ठहराऊ तौ[7] ॥
विश्वामित्र जू का जप–तप नेम–सजम
घरी मे पोइ श्राऊ नेक श्रायसु कै पाऊ तौ[8] ।
मुनि को जु मैन के[9] न नाचनि[10] नचाऊ
महाराज की दुहाई मै न मैनका कहाऊ तौ(1) ॥ १३ ॥

---

१ हिरदो पोलि(AB) २ महा(AB) ३ तो ४ मन मथि (B) ५ सो (AB)
६ म(B) ७ को (AB) ८ जो (AB) ९ क (A) १० नाच (A) नाचन (B

स्वय ही कह देती है कि यदि मैं ऐसा-ऐसा न कर सकू ता मुझ 'मयनका श्रयात् मयन की शक्ति न कहना। इस प्रकार सिद्ध है कि मयनका या म निका मयन का शक्ति श्रर्थात् 'रति हैं।

एक सम्भावना श्रौर हो सकती है। 'शुक्र काय उशना क पुत्र (श्रनि के दो पुत्र) हुए-चन्द्र श्रौर त्वष्टा। त्वष्टा का पुत्र प्रसिद्ध शि पी हुश्रा है। देवा में इसका नाम 'विश्व कर्मा श्रौर दत्यो मे 'मय प्रसिद्ध हुश्रा। इस दैत्य का वश मय जाति के नाम से प्रसिद्ध हुश्रा।' (वय रक्षाम चतुरसेन शास्त्री, पृ० ३५) श्राज जिसे मध्य श्रमेरिका कहा जाता है वही पुराकाल मे यह जाति निवास करती थी। श्रमरिका मे इस जाति का सभ्यता को Amazing and Puzzling कहते हैं। खुदाई क दौरान मे जा चिह्न मिलते हैं उनके श्राधार पर विदित हुश्रा है कि इस जाति क राष्ट्रीय ध्वज पर मीन या मकर का चिह्न श्रकित रहता था। कामदेव श्रर्थात् मयन भी मकरध्वज कहा गया है यथा –

मकराकृत गोपाल के कुण्डल सोहत कान।
धस्यो मनो हियधर समर, ड्योढी लसत निमान ॥

श्रत सम्भव है मयन श्रौर मयनका इसी विभिन्न कला कुशला जाति स सम्बधित हा श्रौर देवा से पराजित हाकर उनकी सेवा मे रहने लगे हा।

1–विवेचन मे कहा गया है कि नवाज की यह कृति लाकजीवन के सन्निकट है। श्रत लाक मे प्रचलित वाक्यावली का प्रवेश स्वाभाविक है। क्या यह इसी वाक्य कि 'श्रापकी कसम श्रगर मैं यह काम न कर सकू ता श्राप मुझे श्रमुक न कहना का काव्यरूप नहीं है? मेनका का भावावेग, श्रह शक्तिनिष्ठा श्रौर श्रात्म विश्वास पूर्ण तीव्रता क साथ यहा मुखरित हैं। लोकवाणी मे ऐसा श्राज प्रस्तुत करना नेवाज सरीख कवि ही का काय है। इसक श्रतिरिक्त सभगश्लेष का छटा भी श्रवलोकनीय है–छद का गति स्पृहणीय है।

छप्पय– गहि कर वीन नवीन निपटि परवीन पियारी।
चढि विमान असमान(1) लोक ते भूमि सिधारी।
सोरह करि शृङ्गार(2) पहिरि द्वादश आभूषन(3)
लपि अँगिया¹ की जोति² गये छपि शशि अरु पूषन।
तप भग करन की बेलि सी फुरसत सो³ फली फली।
मूरति बनाय निज⁴ मोहिनी मुनि को मन⁵ मोहन चली॥ १४॥

१ सुअङ्ग (AB) २ ज्योति (A) ३ सी (A) ४ (A) मे नहीं है ५ मनु (B)

1–आसमान या असमान की कल्पना उच्चस्थल से की गई है। काकशम पवत धरती के सामान्य धरातल से ऊँचा है अत उसी प्रान्त को असमान लोक कहा गया है। इन्द्र अर्थात् इन्द्र उसी प्रात का राजा था और वहीं की सुन्दरिया अप्सराये थी।

2–सोलह शृ गार परम्परागत रूढि बने हुए हैं। मान्यता यह है कि शरीर के सोलह अङ्गों के सोलह शृ गार होते है। जायसी ने भी इसका उल्लेख किया है –

पुनि सारह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुँ खीन।
(पद्मावत—रत्नसेन-पद्मावती विवाह खण्ड–२९६)

चार दीघ —केश अ गुली नयन और ग्रीवा।
चार लघु —दशन, कुँच, ललाट और नाभि।
चार सुभर —कपोल, नितम्ब, जाघ और कलाई।
चार क्षीण —नाका, कटि, पेट और अधर।

ये १६ अवयव शृ गार योग्य है। परम्परित शृ गार रीति निम्न है –

मिस्सी रेखकारी सोभान्त की सुधारी अङ्ग,
मर्दन किये प्यारी छिप स्नान करन वारी है।
नवल वसन धारो नाल गूथन मागवारी,
माग बिन्दी ने सवारी अङ्ग गोरे रंग प्यारी है॥
चुडला हाथ भारी नैन सुरमा रेखकारी,
मेंहदी शोभा देत न्यारी पान चाबत पधारी है।
अतर फूलवारी टीका सज्यो नवल नारी,
कान्हो सोलह शृ ङ्गार जगे चन्द्र की उज्यारी है॥
(मुकलावा बहार)

3–द्वादश आभूषण — लोकप्रसिद्ध आभूषण या ता बत्तीस है किन्तु नेवाज ने प्रधान १२ आभूषणों ही को लिया है। बत्तीस आभूषण इस प्रकार हैं –

करके शृङ्गार नार कञ्चन की मञ्झदार,
बैठी सुकुमार मुख निरखत है ऐना मे।
मन्न कै उमग अङ्ग चाहत पिय मिलन सग,
साजत आभूषण सुख चाहत है नैना मे॥
काना म कर्णफूल मातियन की लगी भूल,
हारन की चमक वाके सब गैना मे।
ओढ़नु सुहाग भाग चोटी फूल सीसफाग,
च द्र माग मातियन की बैठी सज बिछौना मे॥
बिन्दी नकबेसर तन बेसर को सुगन्ध फन्द,
डारत अनूप चोप देखत पिय प्यारी की।
गनी तरली हमेल, गुलबन्द पुनि च द्रहार,
नाभी गम्भीर तक माला मतवारी की॥
बाजू भुजदण्ड कर कञ्चन जटित माणिक के
गजरा पछेली पर नजर ब्रह्मचारी की।
पौंची कर चुडिय रही बगडी सग लूम भूम,
अगुरी म अगूठी है चुनी चमत्कारी की॥
आनन छवि निरखन कू आरसी अगूठी मे,
पन्ना पुखराज लाल फूल हस्त वारे पे।
किंकिणि कटि भूषण ध्वनि मद मद श्रवण सुनि,
मुनिजन अवलोकन पग पायल भनकार पे॥
चरन के बिछिया पुनि पजनी की लरक देख,
लाखो जती रहत नाय अपने व्रत धारे पे।
चन्द्रमुखी चपला सी भाकती भरोखे म
कचन को वार वार वारति पिय प्यारे पे॥

(मुकलावा बहार, पृ० १६७–६८)

मलिक मुहम्मद जायसी ने भी पद्मावती के शृगार का वर्णन करते हुए बारह आभूषणो का ही उल्लेख किया है। सम्भवत यही वे परम्परित १२ आभूषण हैं जिनकी ओर कवि नवाज ने सकेत किया है —

प्रथमहि मजन होइ सरीरू। पुनि पहिर तन चदन चीरू॥
साजि माग पुनि सदुर सारा। पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारा॥
पुनि अंजन दुहु नन करई। पुनि कानन कुँडल पहिरई॥
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तँमोला॥
गिय अभरन पहिरै जहँ ताई। और पहिर कर कँगन कलाई॥
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। औ पायल पायह भल चूरा॥
बारह अभरन एइ बखाने। ते पहिर बरहौ अस्थाने॥

(पद्मावत, रतनसेन–पद्मावती विवाह खण्ड–२९६)

घट हरीगी–फहरात अवन नयन तरल निपटि[१] नवरत लव है।
बीना बजावन[२] फागु गावत[३] भरति घनति गत है॥
सुधि नंद की नहि होति अब लखि जोति या[४] मुख चन्द की।
लगि तरन पर सुषमा भजी सुषमा सरोरुह वृन्द की॥१८॥
लखि नयन जाके नलिन[५] खंजन मीन अरु मृग नैन का[६]।
मुनि मथन के वस करन का उतरी तपोवन मयन का[७]॥
सुनि रात करि[८] अनुराग(1) मुनि दृग पाति दीन्ह ध्यान त।
छवि लषत लूट्यो तपु गया छूट्यो रिपीस्वर[९] ध्यान त॥१९॥

चौपाई–मार्‌यो मन्मथ(2) साधि सरासन(3)। छाडि दियो[१०] मुनि जोगर[११] आसन॥
जप तप सजम[१२] धरम गवायो। माहि मेनका के ढिग आयो॥
अग अग सो आनि मिलायो। जोग किय को फल मनु पायो(4)॥

---

१ निपट (AB) २ बजावति (AB) ३ गावति (AB) ४ जा (AB)
५ ललित (AB) ६ की (AB) ७ मनकी (AB) ८ कर (AB)
९ रिपीसुर (A) १० दयो (B) ११ जोग की (AB) १२ सजमु (A)

1–प्रायन् प्रेम भी अनुराग कहा जाता है। गुण-श्रवण, दर्शन चित्रावलोकन आदि के द्वारा इसकी उत्पत्ति होती है। अनुराग क्रमश वृद्धि प्राप्त करके दृढरति में परिवर्तित होता है यथा – स्याद्दृढैव रति प्रेमा प्रायन् स्नेह क्रमादयम्।
रयामान प्रणयो रागोऽनुरागो भावइत्यपि॥

2–मन का मथन कर डालने वाला। यथा —
मीनध्वजस्त्वमसि नो न च पुष्पधन्वा
केलिप्रकाम तव मन्मथता तथापि।
(हे स्मर! तुम न तो मीन-ध्वज हो और न पुष्पधन्वा हो तथापि मन्मथ अवश्य हो)

3–कामदेव के पंच कुसुम शर इस प्रकार हैं —
अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका
रक्तोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका॥

इन पाचो का प्रभाव क्रमानुसार इस प्रकार होता है —
सम्मोहनोन्मादौ च शोषणस्तापस्तथा।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणा प्रकीर्तिता॥

4–'अङ्ग अङ्ग सो आनि मिलायो' का अभिप्राय मात्र परिरम्भण और आलिंगन ही नहीं है वरन् भगवान कुसुमायुध रतिपति के शासन की उस स्थिति से है जो 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कही जाती है और जिस सुरत रस मे निमग्न प्राणी समाधि से भी परा गति को प्राप्त हो जाता है जहां अङ्ग अङ्ग का अभेद हो जाता है मानो देह सायुज्य रूप अद्वैत हो जाता है। यथा —कोऽयं काऽहमिति प्रवृत्तसुरता जानाति या नान्तरम्।
रन्तु सा रमणी स एव रमण शेषौ तु जायापती॥ (अ० सु०)

चौपाई– येक महूरत के सुप कारन । पोये[1] नप करि वरष हजारन ॥(1)
पीछे[2] निपटि बहुत पछिताना । वा वन ते मुनि अनत पराना ॥(2)
गरभ मेनके जानि परयो उर । याते जाय सकी नही सुरपुर ॥
नर गरभहि नर लोक गवावौ[3] । तौ सुरपुर मह[4] पैठन पावौ[5] ॥ (3)
भई सुता नव मास भय जब । गई मेनका सुरपुर को तब ॥१७॥

---

१ पोयो (AB) २ पाछे (I) ३ गवाव (AB) ४ तहँ (AB) ५ पाव (AB)

1–रति विषयक काव्य रातिकाल म मुख्यरूपेण लिखा गया है। कवि नवाज भी आचार्य शुक्ल क अनुसार शृङ्गारी कवि ह और उनम कहीं-कहीं अश्लीलता भी पाई जाती है किन्तु प्रस्तुत पक्तियाँ शुक्ल जी क इस आरोप का अपवाद है। मुगल वैभव और मद म युक्त दरबार मे सुरत–सुख की अपराधता, क्षणिकता और अपावनता का उद्घोष करना किसी शृङ्गारी कवि का काम नहीं हो सकता। निवाज की सात्त्विकता और पूत भावनाओं का यहाँ निदर्शन ह। मूलत उनका रूप यह है, उनका एतद्विषयक दृष्टिकोण यह है तथापि दरबारी कवि होने क कारण काव्य को परान्त सुखाय बनाने के लिए मिलन-शृङ्गार का सयोग भी उन्हें करना पडा है जो यत्र-तत्र परिलक्षित होता ह।

2–विश्वामित्र, मेनका द्वारा तप खण्डित किए जाने म पूर्व पुष्करतीर्थ पर तप करते थे किन्तु तदुपरान्त उत्तर दिशा मे एक पर्वत पर चले गए जैसा कि वाल्मीकीय रामायण म लेख ह "अत इसके लिए पश्चाताप करते हुए वे उत्तर दिशा म एक पर्वत पर चले गए और कामादि विकारो म रहित स्थिर बुद्धि प्राप्त करने की इच्छा म कौशिकी नदी क तीर पर घोर तपस्या करने लगे।"

(वा० रामायण पृ० ७७–गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण का अङ्क)

3–मेनका इन्द्र के द्वारा विश्वामित्र का तप भग करने क लिए भेजी हुई एक अप्सरा थी। अप्सराएँ देवयुगीन सभ्यता की अनुयायी हैं। इस सभ्यता की ओर महाभारत क १२३वें अध्याय म महाराज पाण्डु न इस प्रकार सकेत किया है 'पूर्व समय म सब स्त्रियाँ स्वाधीन थी। पर्दा न था। व चाहे जिसके साथ रह सकती थी। वे घूमती फिरती थी। स्वजन भी उन्हें न रोक सकते थे। क्वारी रहने पर भी स्त्रियाँ व्यभिचार करती थी, पर उनका वह काम दोष न समझा जाता था क्योंकि उस समय का सामाजिक नियम ही ऐसा था।' इतना ही नहीं सूर्य ने स्वय (अध्याय ३०७ म) कुन्ती स कहा ह– 'हे कुन्ती। तुम्हारे माता पिता गुरुजन आदि किसी को भी तुम्हारे दान का अधिकार नहीं है। अतएव मेरी इच्छा पूरी करने से अधर्म न होगा। स्वभाव से सभी स्त्री और पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार काम करने क लिए स्वाधीन हैं।' अस्तु यह तो रहा उस सभ्यता की बात जिससे मेनका सम्बन्धित थी। अब यह भी देखें कि अप्सराओं मे प्रचलित धर्म क्या था? डा० रागेय राघव के 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' म पृ० ८६ का कथन द्रष्टव्य है "अप्सराये क्रीडानारी थी, सुरयोपिता थी, उनकी बिल्ली की सी आखें थी। XXX दक्ष कन्याओं की पुत्रियां स अप्सरस उत्पन्न समझी जाती हैं। वैदिकी हैं–सम्मानित हैं–मेनका, सहजन्या, पर्णिनी, पुञ्जिकस्थला, धृतस्थला, घृताची, विश्वाची, उर्वशी,

अनुम्लाचा, प्रम्लाचा, मनावती। प्रधा अप्सराग्रा की माता है। उत्तर की अप्सराय विद्युत्प्रभा कहलाती थी। कुबेर की प्रिया वर्गा अप्सरा थी। मलय पर्वत पर नृत्यगान रता ऊर्जशि और पूर्वचित्ति रहती थी। अप्सरा पञ्चचूडा है, वे नगी नहाती है। रावण ने कहा था, वे पतिहीन है, स्वतन्त्र है। रम्भा कुबर की प्रिया थी, और उसके पुत्र की पत्नी थी। उन्हे रति का शौक है। उनका प्रधान नृत्य हल्लीशक कहलाता था। गान का नाम चालिक्य था। मेनका ऊणायु की पत्नी थी। पर गधर्व विश्वावसु से प्रमद्वरा की मा हुई और बच्चो को छोड गई। अप्सरा घृताची और च्यवन से प्रमति जन्मा। उससे प्रमद्वरा ने बन्दी होकर विवाह किया और शुनक का जन्म दिया।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि मेनका का विश्वामित्र द्वारा गर्भ धारण करना अधम न था। अत उसका यह भय कि गर्भावस्था म वह सुरपुर (अपने समाज म) नहा जा सकती निर्मूल और निराधार है। ऐसा हम मान सकते है। किन्तु बात ऐसा नहा है। मानव समाज की भाति देव समाज म भी मातृसत्ता के स्थान पर पितृसत्ता की प्रतिष्ठा हुई। स्त्री को पुरुष सम्पत्ति समझा जाने लगा। उसकी स्वतन्त्रता पर रोक लगा दी गई, कदाचित यही कारण था कि जब 'दक्षकन्या स्वाहा ने प्राचीन अग्निवशी एक व्यक्ति से गर्भ धारण किया (तो) फिर उसे देवो के डर से वन म छोड दिया। (प्रा० भा० प० और इति० पृ०–१०८)। देवो ने इस बालक को स्वीकार नही किया और हम देखते हैं कि अततः देवो और स्कद का युद्ध हुआ। देवो का इस प्रकार परपुरुष से उत्पन्न बालक को स्वीकृत न करना इस बात का प्रमाण है कि वे इसे अधर्म मानने लगे थे। मानव जाति म भी हम इस मान्यता का प्रभाव कुन्ती के प्रसग म देखते हैं। पति के रहते नियोग से जो गर्भ कुन्ती ने धारण किए थे उन्हे तो समाज ने स्वीकार कर लिया किन्तु जो अकेले कानीनावस्था म कर्ण को सूर्य से उत्पन्न किया था उसे वह समाज ही के डर म अपने पुत्रो तक से न कह सकी। फिर मेनका के उदर म तो एक मानव का गर्भ था। मानव निःसन्देह देवो की दृष्टि म अत्यन्त निम्न योनि के प्राणी थे अत उसका गर्भ तो किसी भी प्रकार उन्हे मान्य न हो सकता था। सम्भवत उन्होने अपने समाज मे अप्सराओ की स्वतन्त्रता तो रखी होगी किन्तु उसे केवल देव गन्धर्व, किन्नर आदि सहवर्गीय जातियो तक ही सीमित कर दिया होगा। अप्सरा बहुभोग्या थी इन्द्र प्राय उनका उपयोग शत्रु को कामग्रस्त कर क्षीणबल करने म करता था तथापि देव समाज मे उनका कोई गर्भ स्वीकृत न हो सकता था। प्रत्युत यह भी सम्भावना थी कि ऐसी अप्सरा का मान सम्मान गिर जाये।

इसके अतिरिक्त इन पक्तियो का लिखते समय कवि नेवाज के समक्ष प्राय शास्त्रानुमोदित यह विचार कि "व्यभिचारात् ऋतौ शुद्धि गर्भे त्यागो विधीयते' (याज्ञवल्क्य स्मृति १–७२) अर्थात् व्यभिचार द्वारा नष्ट हुआ सतीत्व या तो मासिक धर्म के स्नान के द्वारा या सतान उत्पत्ति के द्वारा लौट आता है भी रहा होगा। इसी कारण उन्होने मेनका के गर्भावस्था म सुरपुर न जाने और उसके शकुन्तला के जन्म तक नरलोक म ही रहने की चर्चा की है।

सवैया

उत[1] डारि[2] सुता[3] को गई सुरलोकहि(1) दूध पियायो न एकौ[4] घरी।
यह जानि कै मानव[5] की जननी वत्सु मैनका नेकु दया न धरी॥
कुल मे[7] है न कोऊ राखे कहू[8] काहे को धौं करतार करी(2)।
मुख लीवे को कोऊ नही सग मे बन सूने सकुन्तला रोवै परी ॥१८॥

---

१ वह (AB)
२ छोडि (B)
३ क ता को (B)
४ एक (AB)
५ मानुस (A) मानस (B)
६ मन क (AB)
७ माह (AB)
८ कहू (A)

1–विदेशी ऐतिहासिका ने दो ईरानी जातियों का उल्लेख किया है एक 'सु' और दूसरी 'असी'। 'सु' सुषा के सुर और 'असी' असीरियावासी 'असुर' हैं। सुषा नगरी ही देवताओं की राजधानी 'सुरपुर' या 'इन्द्रपुरी' हैं। यह ससार की प्राचीनतम नगरी है जो सुमेरु प्रान्त में अबुरु (एशिया की खाडी) पर अब तक अवस्थित है। यही के प्रसिद्ध नरेश मनु अभिमनु का प्रशस्तिगान अवेसा महाकाव्य में भी है।

सुषा के प्रसिद्ध राजा इन्द्र के अधीन मध्यवर्ती देश बशलोक (Bashlukur) भी था। इसी प्रान्त में काकेशस पर्वत है। इस पर्वत का प्राचीन नाम शक्र भी है। काकेशस (कोह-काफ) की सुन्दरियाँ ही सुरलोक का अप्सराये थी।

(आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत वयरक्षाम के आधार पर)

2–'सकुन्तला–नाटक' आपातत करुणरसप्रधान रचना है। विविध कारुणिक प्रसगो का समवेत रूप ही शाकुन्तलाख्यान है यदि ऐसा भी कहे तो अत्युक्ति न होगी। किन्तु नेवाज ने प्रचलित प्रसगो में इस प्रसग का स्वतन्त्र रूप में चित्रित करके कृति की कारुणिकता को और बढा दिया है। सद्य जात अबोध शिशु के प्रति किसके हृदय में करुणा का सागर हिलारें नहीं लेता–निर्दोष, निरपराध अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न बालक मात्र सामाजिक व्यवस्था का शिकार होकर स्मृतिशेष हो जाये ऐसा कौन चाहेगा? केवल 'मानव की जननी' होने ही के कारण देवयोनि अप्सरा मेनका शिशु शकुन्तला को बन में अनाथ छोड गई–न कोई रक्षक और न कोई पालक। कैसी विडम्बना है! कैसा करुणा त्मक दृश्य है॥ और है सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध कठोर व्यग्य॥

इस प्रसंग का उल्लेख कवि कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह और डॉ० मैथिलीशरण गुप्त ने भी किया है किन्तु वे करुण रस का परिपाक इस स्थान पर ऐसी सुघरता से नहीं कर सके हैं जैसा कवि नेवाज ने किया है। तीनो ही काव्यकारो के प्रासगिक अश अवलोकनार्थ उद्धृत है —

सुरयुवतिसभव किल मुनेरपत्य तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिल च्युतमिव नवमालिका-कुसुमम्॥ ८॥

(अभिज्ञान शाकुन्तलम्)

पुण्डलिया— मुनि दुहिता है नाम को जनी अपसरा माय।
जनतहि जननी छोड़के गई बिना पय प्याय ।।
गई बिना पय प्याय भूमि पर डारि अकेला।
परी डार तें छूटी मारि पै मनहु चमेली ।।
मुनि निरखे तहँ गाय कर नाना महिता।
पाली पिता बढ़ाय नाम मानें मुनि दुहिता ।।
(शकुन्तला नाटक पृ० ३५)

किन्तु ले गई साथ तपोधन मात्र मेनका मातृमयी
हाय! हाय! उस कुसुम कली को वही विपिन म छोड़ गई!
जिस पर निज पक्षों की छाया रक्खी शकुन्त द्विजवर ने,
मृदु कापल-सी वह मुनि कन्या देखी कण्व मुनीश्वर ने।
(शकुन्तला पृ० ६)

यद्यपि कवि कालिदास ने प्रयोजनवती सुन्दर उपमा का प्रयोग किया है और उनके अनुवादक राजा लक्ष्मणसिंह ने भी उसे ज्यों का त्यों अपना लिया है डा० मथिलीशरण गुप्त ने तो मात्र कथा प्रसंग को पूरा करने के लिए ही लिखा प्रतीत होता है किन्तु कवि नेवाज का सा रस इनमें नहीं है। मन को एक क्षण के लिए चमत्कृत कर देने वाला आलंकारिक कौशल तो उनमें है पर नेवाज के सवैयों की वह नितय करुण रसमयी अभिव्यंजना नहीं है जो अन्तर को जीवन के रसमय हिंडोले पर झुला देती है।

कवि नेवाज ने इन सवैयों की रचना के लिए लोक प्रचलित मनोवैज्ञानिक शब्दावली का अङ्गराग भी अद्भुत हो चुका है जो इनके निरावरण तन पर फब उठा है। क्या अत्यन्त कारुणिक प्रसंग उपस्थित होने पर हम कह नहीं उठते कि 'हे भगवान! तूने यह क्या किया, 'यदि तुझे यही करना था तो पैदा ही क्या किया था, हाय, राम! तूने यह क्या किया?' आदि। वस्तुत यह शब्दावली स्वतः ही हमारे हृदय की असीम वेदना को अभिव्यंजित करती हुई फूट पड़ती है। भगवान ही दुःख सागर मे मात्र तिनका है—उस की बात उसी से कह सकते हैं। 'कहू काहे का धौं करतार करी' इसी कारुणिक भाव का मूर्तत्व प्रदान करता है। अन्तिम पंक्ति सुधि लीवे को कोऊ नहि संग म बन सून सकुन्तला रोव परी चित्र को सर्वांशतः पूर्ण बनाती है अबाध शिशु की विवशता और दुःख व्यंजित करती है।

काव्य शास्त्रीय दृष्टि से करुणरस के परिपाक के लिए अपेक्षित विभाव स्वनिष्ठ संचारी भाव– शिशु की दीन निरीह अवस्था, उद्दीपन– शकुन्तला का रोना आदि भी प्रस्तुत पद्य में विद्यमान हैं यथा —

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः ।।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ।।
अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः, वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च ।।
(साहित्य दर्पण २२२-२२४)

सवैया

न्हैव को ग्रानि कह्यो[1] तेहि भारग देपि कै कनु(1) कृपा ग्रति कीन्ही[2]।
देव की दानव की[3] नर की[4] किधौं नाग की है न परै कछु चीन्ही[5]।
सुदर ऐसी सुता केहि कारन को वन मे[6] गहि डारि धौ दीन्ही[7]।
रोवै ग्रकेली परी वन म[8] ऋपि[9] ग्राय उठाय सकुतला लीन्ही[10] ॥१६॥

दोहा– लीन्ही[11] सुता सकुतला कुलपति[12] ग्राश्रम ग्राइ।
कह्यो गौतमी वहिनि सा याको देहु जियाइ॥ २०॥

छप्पय– सुदर गात निहारि गौतमी गरे लगाई।
ग्रायुर्वन्न ते जियन रही करि जतन जियाई।
करै कृपा ऋपि वधू सवै सबके मन भाई।
सकल तपोवन माहि कनु की सुता कहाई।
नित नित[13] नेवाज लागी वढन जोति ग्र ग फैलन लगी।
गहि वाह सपिन के सग द्रुम[14] वेलि छाह पेलन लगी॥ २१॥

१ कह्यो(A)कह्यो(B) २ कीनी (AI) ३ किन्नर(AB)४ कि(A) ५ चीनी (AB)
६ मो (AB) ७ दीनी (AB) ८ मो (A) ९ रिषि(AB) १० लीनी (AB)
११ लीन(A)लीन्हे(B)१२ कलपत (AB) १३ नित (AB) १४ द्रुम छांह(A)

1–महाभारत के ग्रादिपर्व के ग्राधार पर मालिनी नदी के समीप चत्ररथ वन मे कण्व का ग्राश्रम था। यह कण्व काश्यप गोत्रीय था। पुराणो की वंशावलियो म एक ग्रागिरस कण्व का नाम है किन्तु काश्यप कण्व कोई नही दिया गया है। सम्भवत यही काश्यप कण्व है जो चक्रवर्ती भरत का प्रधान याज्ञिक था। (भा० का वृ० इ० भाग २–प० भगवद्दत्त)

श्रीमद्भागवत के ग्रनुसार यह पुरुवंशी था। ऋतेयु के पुत्र रतिभार के तीन पुत्र थे सुमति ध्रुव ग्रौर ग्रप्रतिरथ। सुमति का शाखा म दुष्यन्त ग्रौर ग्रप्रतिरथ की शाखा मे कण्व हुए। कण्व के मधातिथि ग्रौर उनसे ग्रन्य प्रस्कण्व ग्रादि ब्राह्मण हुए है। यथा — तस्य मधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्याद्विजातव।
पुत्रो ग्रभूत् सुमते रेभ्या दुष्यन्तस्तत्सुतो मत॥ ९।७॥

ग्राज ऐसा विश्वास किया जाता है कि "मन्डावर (उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले म एक स्थान) से थोडी दूर जगल म मालिनी नदी के किनारे जो ग्राश्रम था उसी म शकुन्तला का जन्म हुग्रा था वही उसका पालन पोषण हुग्रा था ग्रौर वहा उसकी दुष्यन्त से भी भेंट हुई थी। (तपोभूमि पृ० २६५)

इसके ग्रतिरिक्त कण्व ऋषि के ग्रन्य भी कई ग्राश्रम हैं। राजस्थान में चम्बल नदी के तट पर कोटा से ४ मील दूर एक स्थान है 'कण्वस्वा' कदाचित यह कण्ववास का ही जन रूपान्तरण है। इसे धर्मारण्य भी कहते थे। महाभारत के वनपर्व मे इसका उल्लेख है। पद्मपुराण के ग्रनुसार इनका एक ग्राश्रम नर्मदा के तट पर भी था।

दोहा– सकुन्तला सँग द्वय सखी रहती आठो जाम।
यक अनसूया[1] नाम अरु प्रियवदा यक नाम[2] ॥ २२ ॥

सवैया

बैस म[3] तीनौं समान सखी दिनहू दिन तीनिहू[4] प्रीति बढाई।
प्रान तिहून[5] के व्है रह यक पै देह[6] मे तीनि व्है देत[7] दखाई(1)।
शोभा तिहून के अङ्गन की कवि केतो[8] करो[9] वरनौ नहि जाई।
राखी तिहून[9] के अङ्गन मे[10] विधि तीनिहू लोक की सुदरताई ॥ २३ ॥

---

१ अनस्वीया (B) २ वाम (AB) ३ सो (A) है (B) ४ तिनहू (B)
५ तिहूनि (AB) ६ सुदेह (A) सदेह (B) ७ देह (AB) ८ के तो (AB)
९ कर (AB) १० क (AB)

1–लोक प्रचलित मुहावरा एक जान दो कालिब का हिन्दी रूप। नवाज की यह कृति लोक जीवन क अधिक निकट है। अत लोक–भाषा और लोक प्रचलित मुहावरो का प्रयोग स्वभावत हुआ है। उर्दू म बहु प्रचलित यह मुहावरा घनिष्टता का द्योतक है, अभिन्नता का प्रतीक है। शकुन्तला और उसकी दोनो सखी अनसूया और प्रियवदा की प्रगाढ मैत्री का परिचय इस पक्ति से स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त शृगार रस क परिपाक के लिए सखी की स्थिति परम आवश्यक है। यह सखी दूती से सवथा भिन्न होती है। सखियाँ रूप वय, गुण और जाति में नायिका के अनुरूप उदारचित्तवाली बुद्धिमती तथा हितकारिणी होती हैं। इनका कार्य रहीम और कृपाराम के अनुसार शिक्षा मडन उपालम्भ और परिहास है। केशव ने दूती कर्म को भी सखी क कामो म शामिल कर दिया है अत वे सखी का काम शिक्षा देना, विनय करना मनाना, मिलाना शृगार करना झुकना, उलाहना दना, मानत हैं। शकुतला की ये दोनो सखियाँ वस्तुत प्रस्तुत कथानक मे जहा सखी-कर्म अपने शुद्ध रूप म करती हैं वही आगे आप देखगे कि दौत्यकर्म भी थोडा बहुत करती है। दशरूपककार ने निम्न स्त्रिया को दूती-कर्म के लिए उपयुक्त बताया है —

दूत्या दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका।
लिगिनी शिल्पिना स्व च नेतृमित्रगुणान्विता ॥२६॥

मालती माधव म कामन्दकी के गुणो की ओर सकेत करत हुए कवि ने दूती के गुणो पर भी प्रकाश डाला है। अपेक्षित गुण अत निम्न होने चाहिए —

शास्त्रेषु निष्ठा सहजश्च बोध प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोध प्रतिभानवात्त्वमेते गुणा कामदुधा क्रियासु ॥

अर्थात् शास्त्रो में निष्ठा, सहजज्ञान, प्रगल्भता, गुणवती समयानुरूप प्रतिभा सम्पन्नता आदि गुण सभी क्रियाओ में सफलता दिलाने वाले होते हैं।

सवैया

काम कमान चढाइ मनोज[1] गही[2] कमिकै कछु भौह[3] मरोरै[4]।
बान कहे जब ही हँसिकै तब श्रौननि[5] माह सुधा सो निचोरै।
जा मग व्है के धरै पग ता मग पायन[6] को रग आगे ही[7] दोरै(1)।
सुदर ओऊ[8] है दोऊ मपी पै सकुतला की छवि है कछु औरै(2) ॥ २४॥

दोहा— कछुक दिनन मे[9] कनु मुनि वन ते कियो पयान।
आश्रम राखि सकुतलै तीरथ(3) गयो[1] अ हान ॥ २५॥

मनौं (A) मनों (B) २ जब हीं (A) जबहीं (B) ३ भौंहै (AB) ४ मरोरे (A)
स्रवननि (A) ६ पायनि (A) ७ ह्व (AB) ८ वोऊ (A) ६ को १० चल्यो (AB)

1—नायिका के पगमूल की लालिमा कविया और रसिको के मन रञ्जन एव चित्ताकर्षण का प्रमुख विषय रही है। नाइन के महावरी लगाने की परशानी का चित्रण इसी का निदर्शन है। बिहारी का निम्न दोहा, जो नवाज की इस पक्ति का समर्थक है नायिका की पग लालिमा और उसकी गति तीव्रता का सुदर चित्र प्रस्तुत करता है—

पग पग मग अगमन परत अरुण चरण दुति भूति।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया के फूलि॥

शकुतला के पगमूल की आभा भी बिहारी की नायिका स कम नही है उसकी चरण दुति तो आगे ही आगे चलती है।

2—यह भी जन सामान्य म व्यवहृत वाक्य 'अजी, वह तो चीज ही कुछ और है' का सुन्दर प्रयोग है।

3—महाभारतीय शाकुन्तलोपाख्यान और पद्मपुराणीय शकुतला की कथा म कण्व ऋषि के तीर्थ जाने का उल्लेख नही है अपितु वहाँ तो केवल उनके फलाहरण जाने की बात कही गई है —गत मे पिता भगवान फलान्याहर्तुमाश्रमात्।

मुहूर्त्तं सम्प्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥ महाभारत ॥
फलाहारगतो राजन् ! पिता मे इत आश्रमात्।
मुहूर्त्तन्तु प्रतीक्षस्व स मा तुभ्य प्रदास्यति॥ पद्मपुराण ॥

कवि कालिदास ने शकुन्तला के ग्रहो की शान्ति के लिए उनके सोमतीर्थ जाने की बात कही है। 'इदानीमेव दुहितर शकुन्तलामतिथिसत्कारायादिश्य दैवमस्या प्रतिकूल शमयितु सोमतीर्थ गत' (अभि० शा० प्रथम अङ्क)। यह सोमतीर्थ आज सोमनाथ पट्टन के नाम से प्रसिद्ध है। पुराणो मे इसे सिद्धाश्रम व कुल्याणक क्षेत्र भी कहा गया है। कथा है कि "चन्द्रमा यहाँ तप करके क्षय रोग से मुक्त हुए थे और इससे यहाँ का नाम सोमतीर्थ हुआ था" (तपोभूमि पृ० ३६३) वामनपुराण अ० ३४ के अनुसार सोमतीर्थ में स्नान करके भगवान सोमनाथ के दर्शन करने से राजसूय यज्ञ का फल होता है।

नेवाज ने सोमतीर्थ का खास तौर से न देकर केवल तीर्थयात्रा की बात कही है। वैष्णव मतावलम्बियो मे तीर्थयात्रा का महत्व स्वय सिद्ध है।

सवैया

कछु पैर का माग्यो चह्यो जबही तबही तुम जानसी गा रहिया।
कपि आवे जो काऊ दो रहि[१] पा करि आदर पायन ना गहिया।
यह सीप सकुन्तला(1)[२] को[३] दे[४] गयो के[५] उनाग सकू करिया न हिया।
कछु धीम म[६] फिरि आवत हो[७] तब लो तुम आनन्द सो[८] रहिया॥२६॥

चौपाई-लागी रहन पिता[९] बिन बन म। भई उनागी कछुक[१०] दिनन[११] म॥
आश्रम काऊ अतिथि जो आवै। तासो आदर सो[१२] बैठावै[१३]॥
पसही र तदुल[१४] ले आवे। मृग छौननि को आनि चरावे॥
छोटे छोटे द्रुमनि बढ़ावे। पानी भरि भरि मूलनि ढरकावै॥
साइ रर जो कछु यह भापे। जिय त अधिक गोतमी रापे॥
सकुन्तला ही का सुप चहती। दोऊ सपी सग ही रहती॥
बाल वैस बहु धाम बिताई। झलकन लगी कछू तरुनाई॥२७॥

कवित्त[१५]- बिसरन लाग्यो बालपन को अयानप[१६]
　　　　सखिन[१७] सो सयानप[१८] की बतिया गढे लगी।
दृग लागे तिरछ चलन पद मद लागे
　　　　उर म कछुक[१९] उससनि[२०] सी चढ़ै लगी।
अङ्गनि म आई तरनाई या भलनि
　　　　लरिकाई अब हर हरे दह त कढे लगी।
हान लगी कटि अब छीन कछला[२१] सी
　　　　द्वैज चद की कला सी तन दीपति[२२] बढ़ै लगी(2)॥२८॥

चौपाई-वन हू म[२३] नहि दुरत दुराई। सकुन्तला की सुदरताई॥२९॥

---

१ तिहि (A) तेहि (B)　२ सकुतल (AB)　३ AB प्रति मे नहीं है
४ द और गयो के बीच मे 'जु' है (AB)　५ ह्व (A) है (B)　६ म (A)
७ हो (B)　८ मे (B)　९ बाप (AB)　१० कछु (AB)
११ मन (AB)　१२ निपटि (AB)　१३ देपाव (AB)　१४ गहि (AB)
१५ घनाक्षरी(AB)　१६ अयानपन (A)　१७ सखिनि (B)　१८ सयानपन(B)
१९ कछुक (B)　२० उकसनि(AB)　२१ छटि क छला (AB)
२२ दीप (A)　२३ म (A)　प्रति A मे एक चौपाई अत मे और है —
सोभा तन मे आनि समानी। कछुक दिन म भई सयानी॥

1- देखिए विवेचन मे नायिका-परिचय भाग।

2-वय सन्धि का यह सुन्दर चित्र है। नेवाज रीतिकाल के दरबारी कवि थे अत श्रृङ्गार परक काव्य के प्रणयन मे उन्हे सिद्धहस्तता प्राप्त होना स्वाभाविक ही है यही कारण है कि ऐसे सभी स्थल अत्यन्त सुन्दर और सजीव बन पडे हैं। इस चित्र म 'बाला शैशव

कवित्त-- मृग के चरम ही को पहरे[1] दुकूल ग्रौर
गहनो कहा है न गरे[2] मे जा के[3] पोति है।
तऊ जाके अग अग रूप के[4] तरग उठै
सुन्दर अनग अगना की मानो[5] सोति है ॥
देह मे नेवाज ज्यो-ज्यो जोवन बढत जात
त्यो त्यो हरि दिन[6] यो बढत जात जोति है।
छिन ग्रौरे देपिये घरी म ग्रौरे देपियत[7]
छिन छिन घरी घरी[8] ग्रौर छवि होति है(1) ॥ ३० ॥

---

१ पहिरे (AB) २ नगरे (A) ३ को(AB) ४ की(AB)
५ मनु (A) मनो(B) ६ दिननि (AB) ७ दोनों प्रतियों मे नहीं है ८ ताके माहि (AB)

तान्न भट हो रही है। लोक-प्रचलित सभी परिवतनो का समन्वय् निरूपण इस कवित्त मे हुआ है। विद्यापति की राधा का चित्र इससे कितना अधिक मिलता है —

ग्रापल यौवन ईशव गेल। चरण चपलता लोयन नेल ॥
नैनव छोडल नाहि मुख देह। खत दइ ते जल त्रिवलि तिरेह ॥
ग्रब भेल यौवन, वङ्किम दीठ। उपजल लाज हास भेल मीठ ॥
कटि गौरव ग्रब पावल नितम्ब। चाल्ल नितम्ब माझ भेल खीन ॥

शृङ्गार शास्त्र के प्रमुख ग्राचार्य महाकवि बिहारी भी नायिका के इस नव्य रूप की ग्रोर आकर्षित हुए बिना नही रह हैं उनका निम्न दोहा दृष्टव्य है—

छुटी न सिसुता की झलकि, झलक्यो जोवन ग्रङ्ग।
दीपत दह दुहून मिलि, दिपत ताफता रङ्ग ॥

पद्माकर तो लरिकाई के पराभव का प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं–ग्रब शक क्या रह सकता है ?

चोक मे चौकी जराय जरी तिहि प खरी बार बगारत सोंधे।
छोरि परी है सुकचुकी न्हान को ग्रङ्गन तेज म ज्योति के कौंधे ॥
छाई उरोजन की छवि ज्यो पद्माकर दखत ही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनो लरिके करिके दुहुँ दुदुभी ग्रौंधे ॥
(कविता-कौमुदी, प्रथम भाग, पृ० ४७७)

1–सौन्दर्य की सत्ता जहाँ विषयीगत है वही विषयगत भी है। रीतिकालीन कवियो ने तो वाणी का सार शृंगार को ग्रौर शृंगार का सार किशोर किशोरी को ही स्वीकार

किया है –'प्रति महागुन गात सिंगार, सिंगार को मानो सुधारस वारो।
बानो को सार बनायो सिंगार, सिंगार को सार सिंगार सिंगारो ॥– २५

मुतरा उनके काव्य मे चित्रित सौन्दर्य की कुम्बकीय मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के सम्मोहन की खोज करना संगत नहीं है–ये तो मात्र विद्यमान सौन्दर्य के आख्याता हैं। इन कवियों ने यूनानी आचार्यों द्वारा औपचारिक सौन्दर्य के लिए कल्पित छः रूपतत्वों जिनका उल्लेख गौडीय आचार्य रूपगोस्वामी ने भी किया है को भी मतिबेन अपने काव्य में किया है। यह रूपतत्व ये हैं –

अंग प्रत्यंगकानां य सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्टसन्धिबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्यमितीयते ॥
मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं तदिहोच्यते ॥–उज्ज्वल नीलमणि

नेवाज के प्रस्तुत कवित्त मे सौन्दर्य के लावण्य तत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। एडमंड बर्क जिसे Gradual Variability कहता है रूपगोस्वामी ने उसी को मोतियों की छाया की आन्तरिक तरलता के समान अंगों में चमकने वाली वस्तु 'लावण्य' बताया है। *माघ ने भी सौन्दर्य धर्म के इसी तत्व को रमणीयता कहकर क्षणे-क्षणे नव्यता ग्रहण की बात कही है –*

प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' –शिशुपाल बध ४।१७ ॥

यही तत्व वर्ण आकार और रूप की सीमाओं का अतिक्रमण कर अपनी सूक्ष्मता एवं अग्राह्यता (Elusiveness) से ध्याता या पक्षक को चमत्कृत कर देता है। बिहारी की नवयौवना नायिका का रूपांकन जो चतुर चितेरों द्वारा भी सम्भव न हो सका उसका कारण भी यही क्षण क्षण नवीनता प्राप्ति का कौशल [Ever increasing beauty] था। दास के शब्दों मे 'आज भोर औरई पहर होत औरई है दुपहर औरई रजनि होत औरई' वाला रहस्य था।

नेवाज के इस कवित्त मे लावण्य की शास्त्रोक्त छटा के साथ-साथ सौंदर्य के स्पृहणीय गुण 'सुकुमारता' अथवा 'मार्दव' की भी 'लपलपाहट' है। शकुन्तला यद्यपि मणि माणिक्य पुखराज हीरा, नग नीलम चंदन चोवा अरगजा आदि प्रसाधन के उपकरणो से मंडित नही है तथापि रूप की तरंगों ने उसे इस तरह ढक लिया है कि वह 'रति' की स्पर्द्धा करने वाली बन गई है।

इस चित्र की सबसे बडी विशेषता सौन्दर्य का पारिवारिक जीवन की मर्यादा मे प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। नेवाज ने अपनी शैलीगत सरलता और भाषागत प्रसाद के सहारे इस सूक्ष्म भाव को जिस सुन्दरता से व्यंजित किया है वह अद्वितीय है। प्रसादत्व के कारण प्रेषणीयता मे भी वृद्धि हुई है। यों समस्त पद्य की गति दृष्टव्य है अन्तिम पंक्तियों मे तो कमाल ही कर दिया है।

दोहा– सुदर वैसो वर[1] मिलै, सकुतला ज्या आपु[2]।
करिहौ[3] तासो व्याह[4] यह, करो प्रतिज्ञा बापु ॥ ३१ ॥
लगी रहन सकुतला, वन मे[5] यहि परकार।
यरु समय दुष्यत(1) नृप, खेलन कढ्यो[6] सिकार ॥ ३२ ॥

घनाक्षरी– रथ पै[7] सवार दौरयो दर्प कै सिकार[8]
नृप कीन्हा श्रम मतनो न जाको कछु माप है।
दिन चढि आयो कढि[9] आयो अति दूर[1]
पै न पायो तव[11] याते तन आयो चढि ताप है।
जाय नजिकानो[12] घोरो पोन को[13] समान दौरो[14]
वान सो मिलाय पैच्यो[15] कान लगि[16] चाप है।
आगे ते हरिन भाग्यो ताके सग आपु लाग्यो[17]
पीछे सब फौज पीछे हरिन के आपु है(2) ॥ ३३ ॥

सवैया
फोक(3) लगाय करेरी कमान मे कान लौ पैचि लियो मर सारो।
चोट करै जब लौ[18] तब लौ रिपि लोगन दूरि तै[19] आनि पुकारो।
रक्षा ऋपीश्वर[2] लोगन की करिवे का भया अवतार तिहारो।
हहा[21] रहो महराज हमारे तपोवन को मृग है मति[22] मारो ॥ ३४ ॥

---

१ वर (AB) २ आप (AB) ३ करिहो (AB) ४ व्याहु (AB) ५ म (A)
६ हुतो (AB) ७ प्र (AB) ८ मृगाहि (AB) ९ बढ़ि कढि(AB) १० दूरि (AB)
११ तऊ (AB) १२ नजिकाने(AB) १३ क (A)के(B) १४ दौरें (A) दोरे (B)
१५ पच्यो (A) १६ लगें(B) १७ रहो (AB) १८ रिसक(B) १९ B प्रति मे नहीं है
२० रिपीसुर(A) रिपीस्वर (B) २१ हा हा(AB) २२ मत (A) जनि(B)

1–सस्कृत वाङ्मय म यह राजा प्रसिद्व हा चुका है। महाभारत क आदि पव मे इस पुरुवश का प्रारम्भ करने वाला भी कहा है किन्तु ऐसा नही है। पुरवश का प्रथम राजा स्वय पुरु था दुष्यत ता उसी परम्परा म उत्पन्न सुमति के पुत्र रैभ्य का पुत्र था। यह चतुरन्त पृथ्वी का गोप्ता था। म्लेच्छ राज्य पयन्त उसन सब सामायें जीत ली थी।
(विशेष विवरण के लिए विवचन दखिए)

2–कवि कालिदास कृत अभिज्ञान–शाकुतल, महाभारतीय शाकुतलोपाख्यान और पद्म-पुराणान्तगत वर्णित शकुन्तला की कथा इसी स्थल स प्रारम्भ हाता है। इसमे पूर्व की चर्चा उनमे है ता किन्तु आगे जाकर प्रसगानुसार वर्णित है। नेवाज द्वारा इस समस्त व्यापार का स्वतन्त्र चित्रण करना उनकी मौलिकता है। इस एक घनाक्षरी मे भी उन्होंने कालिदास क कई श्लोको का समाहित कर लिया है। दुष्यन्त का थकना, घाडा का तीव्रगति से दौडना और पुन हरिण का पीछा करना आदि व्यापार कुशलता पूर्वक अकित है।

3–फारसी शब्द फौक जिसका अर्थ है ऊपर, सिरेपर का अपभ्रष्ट रूप है।

चौपाई–ऋषि लोगन यह टेरि सुनायो । मृग पर नृप नहि बान चलायो ॥
वागहि गहि[1] ठाढो रथ[2] की हो । आसिरवाद मुनिन[3] तब दीन्हो ॥
करि प्रनाम पूछ्यो नृप तहा[4] । कहो कनु को आश्रम कहा[5] ॥
मुनिजू के चलि दरसन करो । तपवन को मृग ही नहि हरो(1)[6] ॥
यह सुनि ऋषिन बहुत सुप पाया । आश्रम अतिही[7] नगीच[8] बनाया ॥
महाराज अब कछु दिन भये । तीरथ न्हान[9] कनु मुनि गये ॥
सकुंतला बेटी करि पाली । सौप्यो ता कह आश्रम पाली ॥
महाराज व्हा लगि जब[10] जैहै । यह सुनि कनु बहुत सुप पैहै ॥
सकुंतला तासो जब कहै । तीरथ न्हाय कनु जब अहै[11] ॥
यह रिषि वचन नृपति मन बैठ्यो । रथ ते उतरि तपोवन पैठ्यो ॥
रथ सारथि समेत टिकायो । आश्रम निकट आपु नृप आयो[12] ॥
दक्षिण[13] बाहु लग्यो तब फरकन । प्रफुलित भयो महीपति को मन(2) ॥
कछुक दूरि आगे जब आयो । सगुण[14] भयेको[15] फल मनु[16] पायो ॥
अद्भुत रूप वैस मे नई । वाला(3) तीनि नजरि परि गई ॥
सीत वात से कछु नहि डरै । सब आश्रम ऽ की सेवा करै ॥३५॥

---

१ बाग गहि (A) बाग गहि (B) २ नृप (A) ३ रिषीन (AL)
४ पूछ्यो यह तब(A) पूछी यह तब (B) ५ कहँ अब(AB)
६ आजु पाप पुंजनि परिहर । मुनिवर को चलु दरसनु कर ॥ (AB)
७ निपट (AB) ८ नजीक (AB) ९ करन (AB) १० जब (A) जो (B)
११ तीरथ न्हाइ जब मुनि अहै । सकुंतला तासों जब कहै (AB)
१२ A प्रति मे यह चौपाई और है "आनंद बढ्यो विलोकि तपोवन ।
भाजे पाप प्रसन्न भये मन ॥" १३ दछिन (AB)
१४ सगुन (AB) १५ भयो ताको (AB) १६ (AB)प्रति मेनहीं है

1–अभिज्ञान शाकुंतल म वैखानस राजा दुष्यंत से आश्रम मे चलकर आतिथ्य ग्रहण करने को कहता है यथा न चेदन्यकार्यातिपातस्तन्त्र प्रविश्य प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कार ' अर्थात् यदि आपके और काम का हज न हो तो वहा जाकर आतिथ्य ग्रहण कीजिए। नवाज राजा ही की ओर से आश्रम म जाकर कण्व के दर्शन की इच्छा प्रकट कराते हैं जो राजा के धर्म बुद्धि सम्पन होने का द्योतक है।

2–शकुन शास्त्र के अनुसार पुरुष की दाहिनी भुजा का फडकना अच्छी स्त्री प्राप्त होने का सूचक होता है यथा वामेतरकरस्पन्दो वर स्त्रीलाभ सूचक '।

इस चौपाई के द्वारा परिकर नामक मुखसंधि के द्वितीय अग का निर्देश किया गया है जिसका लक्षण है– यदुत्पन्नार्थबाहुल्य ज्ञेय परिकरस्तु स अर्थात् जहा आरब्धकार्य का विस्तार किया जाय वहाँ परिकर होता है।

3–(A) 'बालेतिगीयते नारी यावत् षोडशवत्सरम् । –नागर सवस्वम्
(B) 'का नाम बाला द्विजराज पाणिग्रहाभिलाषकथयेत्लज्जा। –नैषध

छद हरगीत– सेवा न आश्रम की तजै अति श्रमित ह्वै ह्वै आवती।
कोमल कमल से करण[1] सो क्यारो नवीन बनावती।
मिगगे तपोवन सीचिबे कौ सलिल श्रम करि लावती[2]।
छोटे द्रुमन के तटनि म[3] भरि भरि घटन ढरकावती ॥३६॥

सीच[4] द्रुमनि[5] थकि गई श्रम जल रह्यो[6] सब[7] तन छाय है।
अति सिथिल सब अग ह्वै गय डगमगत धरती पाय है।
पुलि केम पाम रहे विथुरि भरती उसास अनत है (1)
तीनो सखी यो[8] सोहती मानो भया[9] सुरतत है ॥३७॥

---

१ करनि (AB) २ ल्यावतीं (AB) ३ म (A) ४ छिचतीं (A)सींचत (B)
५ द्रुमनि' और 'थकि' के बीच में 'कौ' है (A) ६ रई (AB) ७ 'AB' प्रति मे नहीं है
८ इमि (B) ९ भये (B)

1–कवि कालिदास न अभिज्ञान शाकुतल मे यद्यपि इस स्थल पर शकुतला क रूप का वर्णन राजा दुष्यत के हृदय म उठती हुइ भावनाओ क चित्रण के रूप मे किया है तथापि वह स्वतन्त्र नहा है। डा० मैथिलीशरण गुप्त ने स्वतत्र चित्रण किया है यथा —

भ्रू कुटिल थे किन्तु सुस्थिर, पलक पट अनमाल,
दार्घ थे, द्युति-पूर्ण थे पर थे न लोचन लाल।
भाव सा झलका रहे थे विमल गात कपाल,
पान देते थ सुधा-सा सरल मुख क बाल ॥
घट–वहन स स्कध नत थे और करतल लाल,
उठ रहा था श्वास गति स वक्ष देश विशाल ॥
श्रवण-पुष्प–परिग्रहा था स्वेद-सीकर–जाल
एक कर स थी सभाले मुक्त–केश बाल ॥ (शकु०पृ० १०)

यह चित्र यद्यपि शकुतला की रूपच्छवि का अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है तथापि इसमे सिचन कार्योत्पन्न शिथिलता, क्लान्तता एव श्रम–प्रवणता की अभिव्यजना नहीं है। नेवाज का वर्णन सभी दृष्टियो से पूर्ण और आकर्षक है वातावरण और प्रभाव की दृष्टि से भी समयानुकूल है–रति विषयक भावोद्दीपन करने वाला है। सुरतात छवि की रूप-छटा कितनी आकर्षक मनोहारिणी और ह्लादिनी होती है किसी भुक्त भोगी से पूछिए। नवाज ने शास्त्रोक्त सुरतान्त चित्र का आरोप इस प्रसग म अद्भुत कुशलता स किया है। सुरतात का प्रचलित रूप चित्र यह है —

आलोलामलकावलिं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं,
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां जालकैः।
तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ॥

छंद हरगीत– बिच द्रुमनि के ह्वै जान[१] बाहेर[२] निरमि[३] जाकी[४] छवि छटा।
खुलि गय कुच तडित ऊपर गिरि परी मनु घन घटा (1)[५]।
सिगरे तपोवन म लमति यो गगन मे ज्यो[७] समिता।
यह रूप सी श्रम मुनिन वैसा करत बाल सकुन्तला(2) ॥३८॥

---

१ जाति (AB) २ बाहिर (A) ३ निरखी (A) ४ जो वहि की (B)
५ खुलि गए कच यो अङ्ग प ज्यों तडित ऊपर घन घटा (AP) ६ म (A) ७ जिमि (B)

1–A और B प्रति के पाठ के आधार पर जा अर्थ निकलता है वह भी ठीक है किन्तु कुच द्वय के खुल जाने और उन पर अलकावलि रूप मघो के छा जाने म जो दृश्य उपस्थित होता है वह नवीन है। नवयौवना की दहयष्टि मे कुचो का महत्व सर्वाधिक है यथा 'सुवृत्तमु नत पीनभद्ररान्नतमायतम्। स्तनयुग्म सना शस्तम्। (भविष्य पुराण) और कासा न सौभाग्य गुणाऽङ्गनाना कष्ट परिभ्रष्टपयोधराणाम्। अपभ्रंश के सिद्ध कवि हेमचन्द्र ने तो बडे ही तार्किक ढग से इनकी श्रेष्ठता सिद्ध की है —

सोहग्गीउ सहि कञ्चुयउ जुत्त उत्ताणु करेइ।
पुट्ठिहि पच्छइ तरुणियणु जसु गुण गहण करइ॥

अर्थात् जिसका गुणानुवाद पीठ पीछे हो वह तो अवश्य ही बडा या ऊँचा होता है। सुहागिन की कंचुकी की गुण (डोरी) भी तरुणिजन पीठ पीछे ही से ग्रहण करती हैं—कंचुकी बधने म ही तो स्तनोन्नयन होता है—अत वे स्तन भला श्रेष्ठ क्या न होंगे? फिर इनकी ओर सकेत किये बिना अचिरविरूढबालस्तनी का सर्वांग चित्र कदापि नहीं बन सकता।

एक बात और सवथा नग्न–अनावृत्त कुच शोभा सम्पन्न और प्रशसनीय नहीं माने गए है उनका तो आवृत अनावृत रहना ही आकर्षक है विद्यापति ने भी इसीलिए अध–अनावृत उरोजा ही को चित्राकित किया है।

आध अँचर खसि आध बदन हँसि आधहि नयन तरग।
आधउ एजन हेरि आध आचर भरि तब धरि दगध अनग॥

अत बालो के कुच प्रदेश पर गिर कर उन्हें तनिक आवृत कर लेन की सगति भी ठीक बैठती है।

2–कवि कालिदास ने इस स्थल पर अत्यन्त प्रयोजनवती उपमा का प्रयोग करके दृश्य की मनोहारिता को द्विगुणित कर दिया है—

इद किलाव्याजमनोहर वपु
तप क्षम साधयितु य इच्छति।
ध्रुव स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलता छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ १८॥ अभिज्ञान शाकुन्तल।

कवित्त[1]– बानी कहिय तो वह बीना[2] को लियेइ[3] रहै
गौरी[4] तो गिरीश ग्ररधग म लगाई है।
कमला न काह के हिय ते उतरति
ग्ररु रभा म[5] स्वरूप की न येती ग्रधिकाई है।
रति कहिये तौ वह प्रौढ ग्रति ही है
ग्रार या मे[6] तौ ग्रजौ लपि[7] कछु लरिकाई है।
फेरि फेरि बेर लपि[8] हेरि हेरि हार्यो[9] नृप
जायो[10] न परत ये को है कहा[11] ग्राई है(1) ॥३६॥

निरपि सकुतला को नप सिप रीझ रह्यो
ग्रापु को महीपति निछावरिमे[12] कीन्हो सो।
भयो यो[13] ग्रचरज[14] रति रभौ है न ग्रेसे[15]
या स्वरूप के वपान को भयो है बुधि हीनो सो।
सुकवि नेवाज सोभा सिन्धु मे समाने नैन
काहू गहि मैनहि सुवाल कर दीन्हो सो[16]।
बाढ्यो उर प्रम गहि चित्र लिपि काढो
मनौ ठाढा नृप ह्वै रहयो[17] ठगो सो मोल लीन्हो सो ॥४०॥

दाहा– सकुन्तला को रूप लखि सफल भये नृप नैन।
श्रवण सुफन[18] चाहत कियो[19] सुनि[20] मीठे से बैन ॥४१॥
सघन द्रुमन की ग्रोट ह्वै द्दग निमेप बिसराइ।
दुरे दुरे देखन लग्यो सकुतला के भाइ ॥४२॥
चौपाई– राजहि नहि दपै ये काऊ। पूछन लगी सहेली दोऊ ॥
सकुतला नित सीचत जो तै। मुनि के द्रुम प्यारे कह तो तै[21] ॥
मुनि के तू[22] प्रानन ते प्यारी। करी द्रुमन की सीचनहारी ॥

---

१ घनाक्षरी (AB) २ बीन(A) बीनि(B) ३ लिये ही(A)लिये हीं (B) ४ गौरि (A)
५ के (AB) ६ क (AB) ७ लगि (AB) ८ लगि (AB)
९ हरयो (A) १० जानि(A)जानी(B)११ कित(B) १२ म (A) १३ है (AB)
१४ ग्रचम्भो(AB) १५ ऐसी (AB) १६ मनु धरि मनके हवाले कर दीनो सो (AB)
१७ देषि क (B) १८ सफल (AB) १९ भयो (A) भये (B)
२० सुनि-सुनि(AB)२१ सींचि जात न यह द्रुम तोल (B) २२ त(AB)

1–ग्रभिज्ञान शाकुन्तल में यह चित्र नहीं है। शृगारी कविया की परम्परा का निर्वहण ही यहाँ नेवाज को ग्रभीष्ट प्रतीत होता है। पुराण प्रचलित सुन्दरी नायिकाग्रों से तुलना करके शकुन्तला के उन्मुक्त सौन्दर्य का सुन्दर ग्र कन किया है।

चौपाई–विधि अति ही सुकुमार[1] सवारे । श्रम लायक नहि अग तिहारे ॥
वतक्हाउ[2] सखियन यो कीहो । सकुतला तव[3] उत्तर[4] दीन्हो ॥
मुनि के कहे नही ही सीचति । मोहि मया लागति इनकी अति ॥
जेते द्रुम सब देत देपाई[5] । मय जानत सब[6] मेरे भाई ॥
हरिन चरम की पहिरे आगी । कसि बँधि गई गडन उर लागी ॥
कर सो ऽ अगिया पुलत न खोली । अनसूया[7] सो तव यो वाली(1) ॥

---

१ सुकुमार (AB) २ यद कहाऊ (A) यनक्हाऊ (B) ३ यह (B) ४ उत्तर (AB)
५ ये द्रुम जे सब देत वेपाई (AB) ६ ये (AB) ७ अनसोया(B)

1—इन पक्तिया में चित्रित प्रसग अभिज्ञान–शाकुतल का ही रूपान्तर है प्रत्युत कालिदास की प्रतिभा ने इसमे भी मनोहारी रग भर दिया है । स्तनायुकावृता स्तना और नवादित मौवन की प्रशस्ति इस श्लाक में श्लाघनीय है —

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन ।
वपुरभिनवमस्या पुष्यति स्वा न शोभा
कुसुममिव पिनद्ध पाण्डुपत्रोदरेण ॥१६॥ अभिज्ञान शाकुतल ॥

ये सूक्षम गाठिन तें वाधे । बलक्ल बसन धरे दुहु काँधे ॥
इन मे ढके न देखत हेर । मण्डल जुगल उरोजन केरे ॥
उमगति देह मनोहर नीकी । पावति नहि शोभा निज नीकी ॥
छुप्यो फूल सुदर जिमि कोई । पीरे पातन के बिच होई ॥ (शकु०-नाटक)

यौवन के द्वार पर पहुँचते ही बाला में स्वभावज और अगज परिवतन होते हैं, कुच प्रदेश उक्सने लगता है । वक्षोन्नयन ही नारी का पुरुष से भिन्न हाने का प्रत्यक्ष चिह्न है । यह वैभिन्य ही प्रधानत नारी में सकोच और लज्जा का प्रादुर्भाव करता है । अज्ञात यौवना मुग्धा-नायिका तो कभी-कभी इस परिवर्तन को 'बलाय' (व्याधि) मानकर अपनी माता से चर्चा भी कर बठती है किन्तु ज्यो ही उसे यह ज्ञात होता है कि ये यौवनाकुर है वह व्रीडित और सकुचित हो उठती है । कवि नेवाज ने मुग्धा शकुन्तला को यौवनागम का यह आभास सखियो के माध्यम से बडी चतुरता से दिखवाया है ।

सस्कृत के रसिक कवियो ने तो स्तनोन्नयन की इस प्रक्रिया मे भी बडा रस लिया है । एक उदाहरण प्रस्तुत है –

स्वकीय हृदय भित्वा निगतौ यौ पयोधरौ ।
हृन्स्यान्यस्यदीये का, कृपा तयो ॥ —क्वचित

जो अपने ही हृदय को फाडकर बाहर निकल आए है भला उन पयाधरा से दूसरे के हृदय पर कृपा की क्या आशा की जा सकती है ।

प्रियवदा[1] कसि वाधी छतिया। ग्रनुसूया ढीली कर[2] ग्रगिया ॥
ग्रनुसूया[3] हँसि ग्रगिया खोली । प्रियवदा तव रिस करि बोली ॥
उससति[4]ग्रावे[5]छिन छिन छतिया। याते गाढी ह्वै गय[6] ग्रँगिया ॥
बढत जात जोबन की लीला । नाहक मेरो करती गीला ॥
सकुतला मुनि के सरमानी । सीचन लगी द्रुमनि भरि पानी ॥
तव यक ग्रलि तजि कुसुम उग्रानो। सकुतला के मुख मडरानो ॥
मुख[7] सुगधि पाय करि मधुकर । बैठ्यो ग्राय[8] मधुर ग्रधरन पर ॥
ससकि[9] हाथ प्यारी सहरायो[10] । उडि ग्रलि गयो फेरि फिरि ग्रायो ॥
सकुतला व्हा ते टरि ग्राई । पीछे भौर लग्यो[11] दुखदाई ॥
सकुन्तला जिन जित उठि[12] डोलै। तित तित भौर गुजरत बोलै ॥
राजा निरखि तमासो[13] रह्यो। मन मन मधुकर सो यो कह्यो ॥४३॥

---

१ प्रियवद (AB) २ करि (A) ३ ग्रनस्त्रोय (B) ४ उकसति (AB)
५ ग्रावति (AB) ६ गइ (AB) ७ सुमुख (AB) ८ ग्रानि (B)
९ ससकी(A) १० झहरायो (AB) ११ गयो(B) १२ डरि(AB)
१३ ह्वा सो (A) 'A' प्रति मे यह चौपाई ग्रौर है —
"राजा परम प्रेम सो पाग्यो । मन मन कहन मधुप लौं लाग्यो ॥"

1–यह समस्त ग्रश भी कवि कालिदास की ग्रमर कृति 'ग्रभिज्ञान–शाकुतल' ही के एतद् सम्बन्धी स्थल का छायानुवाद है। नेवाज ने उसी प्रसग के कुछ सम्वादो को छोडकर शेष को यहाँ भाषा में काव्य निबद्ध कर दिया है। कालिदास के वर्णन मे रसात्मकता एवं प्रयोजनीयता विशेष है, इस स्थल पर उन्होंने जो सम्वाद प्रस्तुत किए हैं वे भी नाटक के कथानक के विकास मे सहायक हैं। नेवाज ने तो केवल कालिदास के प्रभाव के कारण इस स्थल को ग्रपनाया प्रतीत होता है। राजा की मनगत स्पृहा ग्रौर साथ मे नव-तरुणी की नेत्र सचालनप्रक्रिया का निदर्शन कविराट् कालिदास ने बडी सुदरता से किया है —

यतो यत षट्चरणोऽभिवर्तते
ततस्तत प्रेरित वामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते
भयादकामापिहि दृष्टिविभ्रमम् ॥२४॥ (ग्रभिज्ञान शाकुन्तल)

उनही मे मोरति दृगन ग्रावत ग्रलि जिहि ग्रोर।
साखति है मुग्धा मनो भयमिस भृकुटि मरोर ॥

(शकुन्तला नाटक

कवित[1]— श्रौननि[2] समीप गुजरत मडरात मनु
बात कहि केलि की लगावत लगन हौ।
चचल[3] दृगनि की पलकि करि छोभित[4]
छुवत[5] फिर आनि कपोल फलकनि हौ ॥
प्यारी ससकति भहरावति करन तुम
उडि उडि बैठत पियत अधरनि हौ।
दुरि दुरि[7] दूरि ही ते देखत डेरात हम
हम कौने काज के मधुप तुम धनि[8] हौ(1)॥४४॥

---

१ घनाक्षरी (AB)	२ स्रवनन(A)श्रवन (B)	३ चचलि(A)
४ क्षोभित ह्व (A)छोभित ह्व (B)	५ छुवो (A)	६ अधरानि (A)
७ दूरि दूरि (A)	८ धनि धनि (A)अति धनि (B)।

1—यह कवित्त भी अभिज्ञान शाकुन्तल के निम्न श्लोक का छायानुवाद है —
चलापागा दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमती,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचर ।
कर व्याधुन्वत्या पिबसि रतिसर्वस्वमधर
वय तत्वान्वेषान्मधुकर । हतास्त्व खलु कृती ॥२५॥

राजा लक्ष्मणसिह न इसका अनुवाद इस प्रकार किया है —
सवय्या— दृग चोकत काए चले चहुधा अङ्ग बारहि बार लगावत तू ।
लगि कानन गूँजत मद कछू मनो मन की बात सुनावत तू ।
कर रोकता का अधरामृत ल रति कौ सुखसार उठावत तू ।
हम खाजत जातिहि पाति मरे धनि रे धनि भार कहावत तू ॥२४॥

नवाज ने प्रणय निवेदन दृष्टिस्पर्श, चुम्बन और अधर रसपान चारो ही रति व्यापारो का चित्रण किया है। भ्रमर के माध्यम से राजा दुष्यन्त का एतद्विषयक मनोदशा का सही चित्र यही है। यद्यपि भ्रमर दुष्यन्त का रकीब बन गया है फिर भी अपनी चातुरी और प्राप्ति के लिए वह धन्य हो ही गया है।

प्रणय प्रस्ताव सुनते ही नव यौवना नायिका का कुपित होना स्वाभाविक है और यह कोप नेत्रा क चाचल्य से अभिव्यक्त होता है किन्तु प्रणयी नायिका क इस कोप को भी उसकी एक 'अदा' मानता है और बरबस उसके कपोलो का स्पर्श करता है। नायिका हाथ झटक कर उसे हटाती है, किन्तु कामीजन तो रतिसर्वस्व अधर का आस्वादन कर ही लेता है। आदौ रत बाह्यमिह प्रयोज्य तत्रापि चालिगन पूर्वमव इस प्रकार आलिगन चुम्बन ही रतिकार्य के प्रथमत आस्वादन है। रीतिकालीन कवि बिहारी ने ऐसी ही नायिका के हाव भाव और हेला की विनिति इस दोहे मे सुन्दरता म की है —
भौंहनि त्रासति मुख नटति आँखिन सो लपटाति।
ऐंचि छुड़ावन कर इँची आगे आवति जाति ॥

चौपाई–सकुतला वेती कछु करै। मग ते मधुप टारे न टरै ॥
बन मे[1] मधुकर बहुत सनाई। सकुन्तला तव टेरि सुनाई ॥
सपि यह[2] हरबर मो दिग ग्रावहु। यहि[3] पापी ते मोहि बचावहु ॥
काटत ग्रधर टरत नहि टारे। होत नही कछु हाथन मारे[4] ॥
निरपि सपिन यह हास[5] बढायो। हमको तौ[6] विन काज बुलायो ॥
या गनीम ते[7] ग्रानि बचावै। नृप दुस्यतहि ते जु बोलावै[8] ॥
तव नृप निकसि द्रुमनि के बाहिर[9]। भयो सवनि के ग्रागे जाहिर[10] ॥
निपटि नगीच कहत यो ग्रायो। कह्यो कहो किन[11] तुमहि सतायो[12]॥
निरखि नृपहि[13]बिन मोल विकानी। तीनौ छकी डरी ग्रकुलानी (1)॥
ठाढी रहि न सक नहि डोलै[14]। जाकि सि रही कछुक नहि बोलै ॥
ग्रनसूया[15] तव मन दृढ कीन्हो। महाराज को उत्तरु दीन्हा ॥४१॥

---

१ म (A)   २ यह (A)   ३ या (AB) ४ भारे (AB)   ५ हासु (AB)
६ त (AB)   ७ सो(AB)   ८ नृप दुष्यन्त इत जो ग्राव (B) ९ तें ग्रायो
१० कहो कहो किन तुमहि सँतायो(B)   ११ क (A)   १२ यह पक्ति B प्रति मे नहीं है
१३ नृपति (B)   १४ ठाढ़ रही सकीं नहि डोल (A) १५ ग्रनस्वीय (B)

1–ग्रभिज्ञान शाकुन्तल के ग्रनुसार राजा को देखकर तीनो सखा तनिक सम्भ्रमित हो जाती है। नेवाज न निरखि नृपहि बिन मोल बिकानी' लिखकर उनमे मुग्धाभाव का भी ग्रारोप कर दिया है। राजा तो शकुन्तला की उन्मुक्त ग्रनाविल यौवन श्री पर लुब्ध सा था ही, शकुन्तला भी दुष्यन्त के ग्राकर्षक व्यक्तित्व मे प्रभावित होती है ग्रौर ग्रतिथि सत्कार के साथ-साथ ग्रपना हृदय भी दान कर देती है।

नेवाज का यह मुग्धात्वारोप ग्रत्यन्त सगत ग्रौर प्रणयरीत्यानुकूल है। इस स्थिति का चित्रण भी शास्त्रोक्त ग्रौर मर्यादानुकूल है। प्रथम-दर्शन का प्रभाव ऐसा स्तम्भित कर देने वाला ही होता है ग्राखिर वह सनमखाना ही क्या, जहा ग्राँख का सचालन न रुक जाए? तभी तो किसी की ग्रारजू है कि वीराने मे चला जाय —

ले चल ऐ वहशत जनवा कहीं वीराने मे।
ग्राख पत्थर की न हो जाए सनमखाने म॥

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस प्रसग पर निम्नाकित पद्य लिखकर इसी भाव की ग्रभिव्यक्ति की है—

हुई मुग्ध शकुन्तला भी नृपतिवर को देख,
मान देता था जिन्हें ग्रमरेन्द्र भी सविशेष।
उस मनोज्ञ ग्रतिथि की ग्रातिथ्य में चुपचाप,
दे दिया उसने हृदय भी शीघ्र ग्रपना ग्राप॥ शकुन्तला पृ० ११॥

कवित्त– जाके तेज[1] होत[2] ना अनीत की कहानी[3]
क्हू पानी येक घाट मे पियत वाघ गाइ है।
जप तप करत तपसी निरभय या
तपोवन म दानव सकत नहि आइ है ॥
काहू न सतायो[4] यह भोरी सी[5] सकुंतला
उठि कै सोरु भारी भाजी भौर की डराई है[6]।
अति ही तपति[7] महाराज सी दु रयत
ताके[8] राज म ऋपीन कौन सकन[9] सनाइ है ॥४६॥

दोहा– सकुंतला सो ताकि तब पूछयो यो[10] महिपाल।
कहौं तिहारे कुसल है छोटे द्रुम मृग वाल ॥४७॥
कंप वढयो तन कटकिन मुप ते कढत न वैन।
जकि सी रही सकुंतला निरपि नृपहि भरि नैन(1) ॥४८॥

चौपाई– सकुंतला को वोलि न आयो। अनुसूया[11] यह वोलि[12] सुनायो ॥
क्यो न होइ अब कुसल हमारी। तुमसे साधु करत रखवारी।
प्यारे[13] श्रन[14] करि तुम इत आये। श्रम जल कन आनन मे छाये॥
सीतल छाह सघन तरु डारै। वैठो इत हम पाय पपारै ॥
लखे भाग ते चरण तिहारे। आजु द्यौस तुम अतिथ हमारे ॥

---

१ राज (AB) २ होति (AB) ३ क्हा नीति कहां (A) नीति कहा क्हो (B)
४ सताई (AB) ५ मौंर सो(B) ६ सुटी क सोरु मारी माजी मौन का डेराइ है(A)
लुठी क सोर मारी भाजी मोन को डराइ है(B)
७ अमीत (AB) ८ ताको (AB) ९ सकता (A) १० यह (AB)
११ अनस्वीयें (B) १२ नृपति(A)नृपहिं(B) १३ प्यारे (AB) १४ स्रमु (B)

1–लज्जा नारी का जहा आभूषण है वही पुरुष के हृदयाकर्पण का महार्घ अस्त्र भी। रीति कालीन कवियो ने नारी की इस अदा का अनेक रूपो मे वर्णन किया है। लज्जान्विता दृष्टि का शास्त्रोक्त लक्षण इस प्रकार है—

किंचित्चितपक्ष्माग्रा पतिताध्र्वपुटा ह्रिया।
अपाङ्गागत तारा च दृष्टिर्लज्जान्विता तु सा ॥

तन में रोमाच हो जाना, मुख खुलकर भी वचन न निकलना स्तम्भित होकर देखने लगना भी इसी के लक्षण हैं। इन सभी अनुभावो का इस स्थल पर सम्यक निरूपण है। वस्तुत स्थिति यह रही होगी—

कुछ इस तरह म नजर बाजियां की मश्क बढी
मैं उनको और वह मेरा नजर का देखते हैं ॥

चौपाई–सकुन्तला क्यो[1] भई अयानी। ल्याउ पियन को सीतल पानी ॥
तब नृप कह्यो बैन रस साने[2]। देपत ही हम तुमहि अघाने ॥
मधुर मधुर कहती तुम बानी। यहै हमारे है मिजमानी[3] ॥
तुम हू थकी सलिल के सीचे। बैठो धरिक द्रुमन[4] के नीचे ॥
तब बोली अनुसूया वाकी[5]। विहसत[6] सकुन्तला सो ताकी ॥
अद्भुत आजु अतिथ ये आये। सिगरे कहत वचन मन भाये ॥
इनको उतरु[7] न कछु मन मानै[8]। इनको उचित कह्यो है मानै ॥
यो सुनि सकुतला छाया में। बैठी मोहि नृपति माया मे ॥
सकुतला के जिय मे पैठ्यो। छितिपालौ छाया मे बैठ्यो ॥४९॥

घनाक्षरी–
भाग ते वन में दुहुन सो भट भेरो भयो
पोल्या भगवान आजु दुहुन को भालु है।
दोऊ दुहू के देपत अघात दृगनि[9] नई
लगनि दुहुन के साल्यो उर सालु है ॥
मन में दुहुन के मनोज बान लाग्यो[10] सग
येकै रग दुहुन को यकै भयो हालु है ॥
हिये मे महीप के सकुतला समानी औ
सकुन्तला के हिय म समायो महिपालु है(1) ॥५०॥

१ क्यौं (AB) २ तब नृप बन मन रस साने (B) ३ महिमानी (AB)
४ द्रुमनि (A) ५ अंत बोली नृप ओर सु वाकी (AB) ६ विहसि (A)
७ उत्तर न (AB) ८ मान (AB) ९ न डगत (AB) १० लागे (AB)

1—लक्षण ग्रथा में नारी के यौवन कालीन २० अलकार माने गये हैं इनमें भाव हाव और हेला यह तीन अङ्गज अलकार हैं। भाव सर्वथा अस्फुट रहता है और शरीर के अन्तस मे ही छिपा रहता है जब यही भाव कुछ अधिक स्पष्ट हो जाता है तो 'हाव' कहलाने लगता है। 'अल्पालाप-सशृगारो हावोऽक्षिभ्रू विकारकृत' अर्थात् नायिका बात-चीत तो कम करे परन्तु शृगारवश उसके भ्रू-नेत्र आदि म चाचल्य या स्तम्भन आदि विकार स्पष्ट प्रतीत हो तो हाव की अवस्था होती है। यहाँ इसी 'हाव' नामक अङ्गज अलकार का निर्देश है।

प्रणय जगत मे सामरस्य की महत्ता भी अवर्णनीय है। सामरस्य अत्यन्त दुर्लभ है जब तक प्रेमी और प्रेमिका दोनो ही मे नैसर्गिक प्रीति अप्रतिबध विलास, प्रतिरसायन-वय-तारुण्य समान न हो निर्व्याज अद्वैत सम्भव नहीं। 'सदृशजन समाश्रय काम' सम स्नेह के अतिरेक ही मे प्रणय का प्राप्तव्य प्राप्त होता है। अत विधि की कृपा ही से यह अप्रतिम सयोग घटित हुआ। मन्मथ ने एक ही बाण मे दोनो के हृदयो को बंध डाला और अस्फुट रीति मे उन्हें प्रणयपाश आबद्ध कर दिया। प्रस्तुत घनाक्षरी की ४था औ ६ठी पक्तियो म मन्मथ शर की अद्भुत प्रभाविष्णुता विशेषत **द्रष्टव्य है।**

चौपाई– दोऊ सखी दुहुन निहारै । कोटि काम रति की छवि वारै ॥
सकुंतला करि नयन लजौहै । निरपत छितिपतिसो[1] तिरछौहै(1) ॥
नृप मुख ते यह वचन उचारो[2] । भलो बनो सजोग तिहारो ॥
एकै बैस अल्प[3] यकै है । देहै तीनि प्रान नहि द्वै[4] है ॥
बानी सुनि नृप की अनमोली । अनसूया[5] फिरि नृप सो बोली ॥
धनि वह वस जहां तुम जाय । धनि यह देस जहां तुम आये[6] ॥
देव गधरव कै मनमथ हौ । चले पयाद क्यो यहि[7] पथ हौ ॥
नाम आपुनो हमहि[8] सुनावहु । करहु कृपा सदेह मिटावहु ॥
आपनपौ छितिपाल छपायो[9] । कह्यौ हमहि दुष्यत पठायो ॥
यह पिजिमित करि दई हमारी । ऋषि लागन की वन रखवारी ॥
फिरत तपोवन म निसिवासर । नृप दुस्यत के हैं हम चाकर ॥
यह कहि[10] महीप वचन चुपानो । अनसूया तब उतर ठानो ॥
अब ऋषि लोग[11] सनाय कहाये । तुम से साधु तपोवन आये ॥
भलौ आनि तुम दरसन दीहो । हम लागन किरतारथ कीहो ॥
बतरस म अति ही सुप पायो । फिरि महीप यह वचन सुनायो ॥
सकुंतला यह सखी निहारी । विधि अति ही सुकुमारि सवारी ॥

---

१ नृप सों तकि (AB) २ निकारो (AB) ३ रूप (AB) ४ त (B) ५ अनसोया (B)
६ यह देस जहां तुम आये । विघन होत नृप जाय बचाये ॥ (B) ७ या (AB)
८ हम (A) मोहि (B) ९ तब आपनपो छितिप छपायो (AB)
१० कहिये (AB) ११ सब (AB)

1–सत्वावस्था म उत्पन्न भाव हा यहां कुछ अधिक स्पष्ट हाकर हाव बन गया है, क्योकि शकुन्तला की यह तिरछा-नजर उसकी मुग्धावस्था का काफी स्पष्ट कर कर रहा है अत यहा हेला अलकार भी माना जा सकता है। हेला का लक्षण है हेलात्यन्तसमालक्ष्य विकार स्यात्स एव तु अर्थात् जब विकार अत्यन्त स्पष्ट रूप म दिखाई पडे वहीं हेला हाता है।

नवाज ने इस चौपाई म शृ गार सज्जा का निदर्शन सुन्दरता म किया है। इस स्थिति का वर्णन कवि कालिदास या राजा लक्ष्मणसिंह आदि किसी भी शाकुंतलोपाख्यान रचयिता न इतना स्पष्टता और सुन्दरता म नहा किया है। निम्न लक्षण म तुलनीय है –

परार्द्ध मुखा वृत्त नीय परावृत्तमुदारितम् ।
तत्कार्य कारनन्नाद्रि कृत्वे वक्नापसारण ॥

—अथवा—

मिया भिमामिरभाषाव्य अन्नाद्गतनारका ।
पतिनार्धपूर्ण दृष्टिर्नन्दा लज्जिता मता ॥

चौपाई– मुनिवर याहि ब्याहि कहु देहै । कै अस यामा तप बरबहै (1)॥
कहा विचार करै मुनि नायक । या के अंग न है तप लायक ॥
तब अनसूया उत्तर दीन्हा । कहु महामुनि यह प्रण[1] कीन्हा ॥
सकुंतला सम सुन्दर ह्वै है । वरि सकुंतला या जग रहै[2] ॥
ऐसो वर जो कहु लखि पैहै[3] । तब ही ताहि ब्याहि हो[4] देहै[5] ॥
अनसूया सो बोलि महीपति[6] । सकुंतला की लखि तन दीपति ॥
पहन बात विचारि न कीन्ही । मुनि यह कठिन प्रतिज्ञा कीन्ही ॥
सकुंतला जैसी है सुंदर । कहो कहा जैसो मिलिहै वर ॥
ढूंढि जात मुनिवर फिरि ऐहै । सकुंतला अनब्याही रहि है ॥

---

१ प्रनु (AB) २ करि है सकुंतला जो कहै (AP) ३ पहों (AB) ४ म (A) कहु (B)
५ ब हों (AB) । प्रति A और B मे एक चौपाई इस प्रकार और है—
प्रनस्वीयें यह कहा कहानी । सकुंतला मुनि क सरमाना ॥
६ यह सुनि के बोल्यो अवनीपति (AB)

1–प्रागतिहासिक सम्प्रदायानुकूल नारी भी तप की अधिकारिणी थी । भगवन कण्व के काल मे भी स्त्रियां तपस्विनी होती होंगी । गौतमी अनुसूया, प्रियंवदा आदि इसी प्रणाली की प्रतीक हैं । हारीत वचनानुसार स्त्रियां द्विविध ब्रह्मचर्य धारण करती थी 'द्विविधा स्त्रियः ब्रह्मवादिन्य सद्योवध्वश्च'। ब्रह्मवादिनी नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी होती थी अर्थात् आजीवन तापसिक जीवन व्यतीत करती थी और दूसरी उपकुर्वाण ब्रह्मचारिणी कहलाती थी-यह ब्रह्मचर्य कुछ काल तक ही रहता था तदनन्तर ब्रह्मचारिणी विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थी । महाराज दुष्यन्त अनुसूया से यही पूछना चाहते है कि शकुन्तला केवल उपकुर्वाण व्रत मे दीक्षित है अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी बन आजीवन कठोर तप करेगी । कविराट कालिदास ने साभिप्राय विशेषण का प्रयोग करके तथा परिकर महोक्ति एवं वृत्यनुप्रास के आश्रय से इस उक्ति मे काव्यरस की वृद्धि की है तथा राजा दुष्यन्त की वाक् चातुरी की झलक दिखाई है जो श्लाघ्य है यथा —

वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदाना–
द्व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।
अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभि–
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभि ॥ अभि० शाकु० ॥२३ ॥

राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है –

सवैया– रतिराज के काज बिगारन को रिपु है व्रत को व्रत लोक कहु ।
यह सुन्दर प्यारी तिहारी सखी रहि है कहा कौ लौं ताहि गहु ।
तजि देहिगी व्याह भये पै किधौं नव प्रीतम प्रास्य चाह गहु ।
अरन मे विधो हग्यारी मृगन में जन्म बितावन या हो रहु ॥ शकु० ना० २३ ॥

चौपाई– तब हँसि अनसूया फिरि बोली । पानि चतुरई की मनु पोली ॥
जब विरंचि नीके दिन ल्यावत । मन वाञ्छित[1] घर बैठे आवत (1) ॥
तुम से[2] साधु कृपा उर धरिहै । सफल प्रतिज्ञा मुनि की करिहै ॥
नृप सुष पायो सुनि यह बानी । सकुंतला सुनि कै[3] सरमानी ॥
प्रियवदा विहँसित आनन सों[4] । सकुंतला के लगि कानन सों[5] ॥
कह्यो आजु जाती तुम ब्याही । करिये कहा कनु घर नाही ॥
सकुंतला नयन[6] भरि लाजहि । लषत तिरेछे[7] फिरि फिरि राजहि ॥(2)
राजा सकुंतला पर अटक्यो । राजहि ढ़ूढति सब दल भटक्यो ॥
आई फौज निकट जब वारी[8] । वन मे सोरु भयो[9] अति भारी ॥४१॥

---

१ वछित (B)　　　　२ सो (A)
३ अति ही (AB)　　　　४ मे (AB)
५ मे (AB)　　　　६ नन्न (A)
७ तिरीछे (AB)　　　　८ सारी (AB)　　　　९ परयो (B)

1–कवि कालिदास के अनुसार प्रियम्वदा के यह कहने पर कि 'गुरो पुनरस्या अनुरूपवर प्रदाने संकल्प' अर्थात् गुरुजन ने किसी योग्य वर को इसे देने का संकल्प कर लिया है, राजा दुष्यन्त अपने मन में यह धारणा बना लेता है कि 'न दुरवापेय खलु प्रार्थना' अर्थात् अब मेरी शकुन्तला विषयक प्रार्थना व्यर्थ न जायेगी किन्तु नेवाज इस प्रसंग को और अधिक स्पष्ट करते हैं। वे अनुसूया के माध्यम से उक्त पंक्ति कहलवा कर आश्रमवासियों की इच्छा भी व्यक्त करा देते हैं वस्तुत यह भी आगे की घटनाओं के प्रति संकेत है।

2–शकुन्तला के हृदय में भी राजा के प्रति अनुराग पैदा हो गया है इस भाव का स्फुटन उसके व्रीडानिमज्जित प्रस्तुत हाव में है। कवि कल्याणमल्ल विरचित अनंग रंग की पाण्डुलिपि में पृ० ११ पर अनुरागिनी के लक्षण इस प्रकार दिए गए हैं। देखिए उनमें इस हाव का कितना साम्य है –

> मज्जानियतेभिमुखं प्रारन्दपान्न भूमि विलिखति ।
> स्मिता च स्तनाग्निगाते गुप्तं च हास्यं दृष्ट्वा कान्तं । नयने विस्फारः ॥

सवैया

घोरन[1] की पुरयारन[2] की रज सो सिगरो[3] नभ मडल छायो।
जाली जीवन[4] घेरिवे को चहु ओर[5] करानन[6] (1) को गन[7] धायो।
पेलत फौज समेत[8] सिवाग नगीच[9] दुष्यत महीपति आयो।
रे मृग आपने आपने बाधट्ट यों रिपि लोगन सोर मचायो(2) ॥५२॥

चौपाइ– सुनि यह सोर सवै अकुलानी। धक धक उरनि मुपनि[10] मुरझानी[11] ॥
कर न पाई नृप यह[12] लाला। मन मन करत फौज को गीला॥
अनसूया भयरस मा मानों। यो कहि उठी नृपति सो बानी॥
कपन[13] लागी डर ते[14] छाती। अब हम सब आश्रम को जाती॥
उचित तिहारी सेवा हमको। श्रम करि तुम आए आश्रम को॥
सेवा बिन कीन्हे हम जाती। यह बिनती अब[15] करत लजाती॥
दास[16] हमारो मन नहिं कीजे। एक बार फिरि दरसन दीजे॥
सकुतला को कर सो गहि के। चली सपी नृप सो यह कहि के॥
फैली तन मन व्याकुलताई। राजा चल्यौ फौज यह[17] आई॥५३॥

---

१ घोरेन (B)	२ पुरयारिन (A)	३ सिगरे (A)
४ जीवनि (AB)	५ कोर (B)	६ करीलनि (A)
७ गत (A)	८ समेति (B)	९ नजीक (AB)
१० हियनि (B)	११ कुँमिलानी (AB)	१२ सों (AB)
१३ कापन (AB)	१४ सों (B)	१५ हम (AB)
१६ दोसु (AB)	१७ जहँ (AB)	

1–सम्भवत यह अरबी का शब्द है। इसका शुद्ध रूप है 'करीन' अर्थ होता है सभासद, सखा मुसाहिब। इसी का ब्रजभाषा के व्याकरण के अनुसार बहुवचन करीनन बनेगा जिसका काव्य रूप बदल कर करीलन या करोनन कर लिया गया है।

2–क्या इस सवैये से यह ध्वनित नहीं होता कि राजा जब शिकार पर जाता था तो वनवासी हिंसक अहिंसक जीव-जन्तुओं के साथ साथ तपस्वियों के आश्रम भी खतरे में पड जाते थे। कवि कालिदास ने तो यद्यपि दुष्यन्त के इस प्रपीडक कृत्य को हाथी के बिगड जाने की घटना से ढकने का यत्न किया है तथापि दुष्यन्त के इस कथन से वह फिर मुखर हो गया है " (आत्मगत) अहो धिक। पौरा अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति।' अर्थात् पुरवासी सैनिकादि जान पडता है, हमे खोजते हुए तपोवन को कुचल रहे हैं। नेवाज ने इस प्रकार के आवरण की कोई आवश्यकता नहीं समझी है और स्पष्ट ही वन-वासियों के भय को मूर्त कर दिया है।

कवित्त– उरझाय द्रुमनि[1] ढकुल सुरझावै लागे[2]
काढ़ै[3] लागे[4] काटन[5] का कबहू पानि सो।
कबहू नेवाज पुनै केमनि कमन लागे
कबहूक[6] अंगिरान लागनि[7] अगनि सो।
ऐसे छन छिद्र कै कै ठानी ह्वै ह्वै रहनि
सकुन्तला निपटि भई व्याकुल लगनि सा[8]।
सपिन की नजरि बराय[9] नारि फेरि फेरि
फिरि फिरि देपि[10] महिपालहि हगनि सा (1) ॥५६॥

॥ इति श्री सुधातरगिया सकुन्तला नाटक प्रथमन्तरग[11] ॥

---

१ द्रुमनि उरझें (B) २ लग (A) ३ काढन (AB) ४ लगनि (AB)
५ काँटो (AB) ६ कबहुँक (AB) ७ लागत (A)
८ सकुन्तला नृपति के सुप्रेम की लगनि सों (AB)
९ नेवारि (AB) १० देखत (A) देखे (B)
११ इति श्री सुधातरगिया सकुन्तला नाटक कथायां प्रथमस्तरग (AB)।

1–शकुन्तला और दुष्यन्त के अद्यावधि साम्मुख्य में दुष्यन्त की अनुरक्ति प्रगाढ़ राग का तो मूर्तत्व मिल गया है, पाठक उसकी अनुरक्ति से परिचित हो गए हैं तथापि कन्या-सुलभ व्रीडा के कारण शकुन्तला की आसक्ति स्पष्ट नहीं हुई है। जो कुछ भी सकेतित है वह केवल भाव और हाव के माध्यम से। मुग्धा नायिका की पहुँच यहाँ तक है किन्तु दुष्यन्त के आकर्षण ने शकुन्तला को भाव और हाव से भी आगे बढ़ा कर हेला तक पहुँचा दिया और इसी कारण नेवाज ने उसकी प्रगाढ़ चेष्टाओं मे प्रस्तुत कवित्त में उसकी अनुरक्ति का प्रकाशित कर दिया। सम्भवत इस हेलायाम के बाद अब दुष्यन्त ही नहीं पाठक भी शकुन्तला की रागासक्ति से परिचित हो सकेंगे। वस्तुत इस आसक्ति-निरूपण के बिना विप्रलम्भ शृंगार का सन्निवेश भी सम्भव न था। करुण रस के परिपाक के लिए विप्रलम्भ शृंगार का पुट अनिवार्य है। अनगरंग' में अनुरागिनी नारी के जो लक्षण दिए गए हैं वे यहाँ पूर्णतया प्राप्त हैं। अत यह चित्र शास्त्रानुमोदित भी है —

मृद्वानि दृष्ट्वा स्ववुचकरोण सस्फोटयेदगुलिका सज म भूषा -
विहीना सन्दाति तस्मै स्वचित्तं याचितमप्यजस्त्र ॥२१॥
पुरान्निहतितआतितार सकाशे मार्ष्टि भुज करण
व्याजेनगच्छद् सन्न बराग्नि वरवेषु धर्मा वुरहद्विनावय ॥२२॥

रीति कालीन कवियों ने भी नायिका के इस प्रसंग प्रनवार का सौन्दर्य-रस पिया है यथा :—

डग कुडगति सी चलि ठठकि, चितई चली निहारि।
लिए जात चित चोरटी वहै गोरटी नारि॥ ॥ बिहारी ॥

तब तो दूरि दूरहि ते मुसुकाय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन मे सरसे॥
अब तो उर माहि बसाय क मारत एजू विसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह निबाहन जानत हा तो सनेह की धार मे काहे धसे॥ —देव॥

इस प्रकार रीतिकालीन कवियों ने अनुराग का दर्शाने वाली अदाओं का पृथक पृथक चित्रण किया है किन्तु नेवाज ने इन सभी पुष्पों को एकत्र कर जो गुलदस्ता पेश किया है वह अप्रतिम है।

कवि कालिदास ने नाटकीय सकेत के रूप मे केवल इतना कह कर सन्तोष कर लिया है कि 'शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याज विलम्ब्य सह सखीभ्या निष्क्रान्ता' अर्थात शकुन्तला राजा को देखती हुई किसी बहाने रुकती हुई चली गई। कविराट ने अगले अक म इस चित्र को दुष्यन्त और विदूषक के सम्वाद म स्पष्ट किया है किन्तु नेवाज ने विदूषक को अपने काव्य म स्थान नही दिया है अत शकुन्तला की ये चेष्टायें उन्होने यही प्रदर्शित कर दी है जो उपयुक्त हैं। डा० मैथिलीशरण ने भी इस ओर सकेत किया है किन्तु इतिवृत्तात्मक रूप मे—देखिए :—

विवश आया बिछुडने का समय दोनो ओर—
बिछुड कर भी वे परस्पर बन गये चित चोर।
मार्ग में मिस से ठिठकती ठहरती सौ बार—
गई व्यग्र शकुन्तला नृप को निहार निहार॥शकुन्तला पृ० १२॥

द्वितीय तरग

अभिनान शाकुन्तल' के द्वितीय अक मे जो कथा वर्णित है, उसी का परिवर्तित रूप इस तरग मे है। कालिदास, लक्ष्मणसिंह और डा० मैथिलीशरण गुप्त तीनो ही ने इस स्थल पर शकुन्तला की विरहाकुल अवस्था का चित्रण नही किया है, उन्होने राजा दुष्यन्त और माण्डव्य के सम्वाद के रूप में शकुन्तला की प्रीति और दुष्यन्त की मानसिक अवस्था को स्पष्ट किया है। डा० गुप्त ने तो केवल दुष्यन्त की विरह विपन्ना स्थिति का सक्षेप म वर्णन करके उसे शकुन्तला क समक्ष ला खडा किया है किन्तु यह शीघ्रता प्रणय के परिपाक का उचित अवसर नही देती। प्रथम तरग मे दैवयोग से शकुन्तला और दुष्यन्त का साम्मुख्य होता है और प्रथम दर्शनजन्य प्रेम की उत्पत्ति होती है। सखियो के वार्तालाप और शकुन्तला के हाव भाव से वह क्रमश पुष्ट भी हुई किन्तु उस उद्बुद्ध मात्र प्रीति को पूर्ण परिपुष्टता एव प्रगाढ़त्व प्राप्त कराने के लिए समय क व्यवधान और वियोग की आवश्यकता होती है जैसा कि कहा भी है —

न विना विप्रलम्भेन सम्भोग पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयारागो विवर्धते ॥

अत नेवाज द्वारा नायिका और नायक की वियोगावस्था का विस्तृत वर्णन करना सगत और न्यायोचित है। प्रारम्भ मे नायिकागत विरह ही की सतप्त किरणो के विकीर्ण करने का कारण भी मनो वैज्ञानिक है। पुरुष की अपेक्षा नारी अधिक भावुक, सवेदनशील एवं प्रेमातुर होती है कदाचित यही कारण है कि विरह वर्णना मे अधि काशत नारी ही आलम्बन है उसीकी दशा का चित्रण कवि को अभीष्ट रहता है। या भी वह अबला है। यदि अप्रतिरथ विजेता मदन उसे सताये तो आश्चर्य क्या ? विद्यापति तो स्पष्ट ही घोषित करते हैं —

'नीवर पुरुष पिरिती । जिव दय सन्तर युवती ॥''

अर्थात् पुरुष की प्रीति निष्ठुर हुआ ही करती है, प्राण पर खेलकर रमणी ही प्रेम पयोनिधि मे तिरती है।

अत दुष्यन्त की विरहाक्रान्त अवस्था से पूर्व शकुन्तला को इस स्थिति म दिखाना सगत और उचित है।

चौपाई– या विध नृप सो लगन लगाई । सकुतना आश्रम म आई ॥
प्रान प्रानपति सग सिधारे । सूने से सब अग निहारे ॥
दिन भरि भूख प्यास नहि लागे । परत[1] न नीदि रात भरि जागे ॥(1)
सकुचि सखिन हू[2] सो[3] नहि भाखै । हिय की पीर हिये म राखै ॥५७॥

---

१ परति (A B) २ सखीनहु (B) ३ ते (B)

1–छन्द सख्या ५८ तक शकुन्तला की पूर्वरागमयी अवस्था का चित्रण है । वियाग शृङ्गार के चार भेद साहित्यदर्पणकार और रीति-आचार्य केशव न स्वीकृत किए हैं – पूवराग, मान, प्रवास और करुण । रीति कालीन कवियो न अन्तिम तीन पर तो पयाप्त मात्रा मे लिखा है किन्तु पूर्वानुराग का चित्रण अत्यल्प है सम्भवत इसका कारण उनका इसे अभिलाष के अन्तर्गत मानकर गभीर वियाग के अनुपयुक्त समझना है किन्तु यदि *मनोवैज्ञानिक आधार पर सोचें तो यह अभिलाष मात्र नहा कहा जा सकता* । कुछ ही काल मे इसमे भी वियोग की अखड ज्वाल भभक उठती है । श्रवण मात्र न जहा अनुराग जन्म ले लेता है और प्रिय का देखे बिना दाह उत्पन होता है वहा पूर्वानुराग हाता है —

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथ सरूढरागयो ।
दशाविशेषा योऽप्राप्तौ स उच्यत ॥ —साहित्य दर्पण ३।१८८॥

देखति हीं द्युति दपतिहि, उपज परत अनुराग ।
बिन देखे दुख दखिए, सो पूरब अनुराग ॥ —रसिक प्रिया ८।३ ॥

आचाय धनञ्जय ने शृङ्गार का तीन भागा म विभक्त किया है अयाग, विप्रयाग तथा सयाग (अयोगो विप्रयाग सम्भागश्चे ति स त्रिधा) इनम अयाग और विप्रयाग को विप्रलम्भ क अन्तगत माना है । अयोग शृङ्गार की स्थिति के सम्बन्ध म दशरूपककार का कथन है —

तत्राऽयागानुरागेऽपि नवयारेकचित्तयो । पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसङ्गम ॥५०॥

अर्थात् जहा दो नवयुवका (नायक–नायिका) का एक दूसरे के प्रति अनुराग हाता है उनका चित्त एक दूसरे क प्रति आकृष्ट रहता है किन्तु परतन्त्रता (पिता-माता या दैव आदि) क कारण व एक दूसर स अलग रहत हैं, उनका सयाग नही हो पाता वहाँ अयाग शृङ्गार का स्थिति हाती है ।

इस स्थिति मे अनुरागाकुरा म प्रपीडित हाकर भी लज्जावश किसी स कुछ कहा नही जा सकता । बाधा न इस दशा का अच्छा चित्रण किया है —

जबत बिन्दुर कवि बाधा हितू, तबतें उर दाह थिरानो नहीं ।
हम कौन सा पीर कहैं अपनी, दिलदार तो कोऊ दिखानो नहीं ॥
प्रथम दर्शनाल्पन्न इस राग की तीव्रता का ओर रहीम न भी सकेत किया है —

गये हरि हरि सजनी विहँसि कछूक ।
तब त लगति अगनि उच्च भभूक ॥

सोरठा– लगत कटारी तीर पीर सहि लेत[1] सुरमा[2] ।
नये विरह की पीर काहू सो सहि जात नहिं ॥५८॥ (1)
कहे न माने कोई जैसे[3] पीर वियोग की ।
जापर[4] बीती होई सोई जानै समुझि[5] के ॥५६॥ (2)

१ हिये लेत सहि (AB) २ सूरिवा (A) सूरिमा (B) ३ जसी (AB)
४ जाप (AB) ५ समझि (B)

जहा रीतिकालीन कविया ने पूर्वानुराग की किसी किसी चेष्टा पर थाडा बहुत लिखा है, वहा नवाज ने एतन्तर्गत लगभग सभी चेष्टाओं और स्थितियो का चित्रण किया है। उनमे नवल नेह के नव वियोग का आतप अनुभव किया जा सकता है। हृदय हरण के बाद शरीर का सूना सा हो जाना भूख प्यास न लगना नाद न आना, एकाएक इसका इजहार न करना आदि दशायें विरही जनो मे आज भी देखी जा सकती है अनुभव की जा सकती है क्योकि जापर बीती होइ सोई जानै समुझि क।''

1–नव मिलन अथवा प्रथम मिलन प्रमी प्रेमिका के जीवन म कितना महत्वपूर्ण है, आह्लादकारी है यह किसी भी अनुभवी स छिपा नही है। दाम्पत्य जीवन का प्रथम चरण होन क कारण जहाँ यह महिमामय है वही ब्रह्मानद सहोदर' रस का प्रथम आस्वादक भी है सूर ने इस नव नेह का मर्म भली प्रकार समझा है —

नयो नेह नयो गेह, नवल, कुँवरि वृषभानु किशोरी।
नयो पितम्बर नई चूनरो, नई-नई बूँदनि भीजत राधिका गोरी।
नये कुंज अति पुंज, नए द्रुम, सुभग जमुन जल पवन हिलोरी।
सूरदास प्रभु नवरस विलसत नवल राधिका जोवन भोरी॥

सूर-सभा पद १३०३।

इस क्रिया की प्रतिक्रिया भी अत्यत तीव्र होती है जहाँ नव-सयोग मादक है वही नव-वियोग घातक। 'नए विरह का तात्पर्य है प्रथम विरह। आलम्बन नवीन है उसका यह अनुभव पहला है नौ सिखिया है वह-अल्हड अनाडी। कुसुमायुध रतिपति के व्यापार के कुशलतम खिलाडी भी इस मदान मे 'इक आह' सी करके बैठ जाते है। रहीम तो स्पष्ट ही कहते है —

रहिमन तीर की चारतें चाट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट तें चाट परे मरि जाय॥ रहि०, वि० २०१॥

नेवाज न विरह की इसी असह्य पीडा की अभिव्यक्ति सरलतम भाषा म यहाँ की है।

2–जीवन म तथ्य ऐस हैं जो केवल अनुभव करके ही जाने जा सकते हैं क्योकि बुद्धि वहाँ जवाब दे देती है और विवश पगु हो जाता है। ऐसे ही अनुभवगम्य तथ्यों म से एक नेह' भी है। इसे सबके रस विरस का वाणी या लखनी मे नहा समझाया जा सकता। भक्ति रीति युग के विभिन्न कवियो न इसी भाव का प्रकाशन इस प्रकार किया है –

सोरठा– दृग बरसत ज्यों मह बैठन जब हिय कात घर[1]
पियरानी सब देह नवहु दुरावत सखिन सो ॥ ६० ॥
उर भरि रह्यो सनेह लागी आगि वियोग को । (1)
मनहु[2] बुझावति देह असुवन की झर लायकै ॥ ६१ ॥
दोहा– वादिन ते यह हौ[3] गयो सकुन्तला को हाल[4] ।
जा दिन ते उत नजर[5] भरि देख्यो वह[6] महिपाल[7] ॥ ६२ ॥

---

१ बैठति जब इक्त मे (A) बठति जहाँ इक्त घर (B) २ मनौं (AB) ३ है (AB)
४ हालु (B) ५ नजरि (AB) ६ नहि (AB) ७ महिपालु (AB)

हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जानै कोय ।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय ॥ —मीराबाई ।

सबै कहत हरि बिछुरे उर धर धीर ।
बौरी बाझ न जानै ब्यावर पीर ॥ —रहीम, बरवै, ८० ॥

नेवाज का यह सोरठा यद्यपि प्रेम की इसी अवर्णनीय स्थिति का द्योतक है तथापि अपनी सरलता एवं स्पष्टता के कारण अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है ।

1–प्रेम के पथ की करालता का बोध किसी न किसी रूप में प्रायः प्रत्येक रीतिकालीन कवि ने कराया है इस दाह मे मलिक मुहम्मद जायसी कबीर और मीरा भी जले हैं अंतर केवल भौतिक और आध्यात्मिक का है–वस्तु एक है दृष्टिकोण अलग । रहीम के अनुसार तो – जे सुलगे ते बुझि गये बुझे ते सुलगे नाहि ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि के सुलगाहिं ॥ —रहि० वि० ६८ ॥

यद्यपि यह दोहा भी विरही के निर्धूम-दाह की अभिव्यंजना करने में समर्थ है तथापि नेवाज ने रूपकाश्रय मे वियोगजन्य विकलता, बेकली और दाह का जो चित्र प्रस्तुत सोरठे मे दिया है वह अप्रतिम है । 'सनेह' पद श्लिष्ट है । स्नेह-पूर्ण पात्र में आग की चिंगारी पड जाने पर जैसे सुलगन प्रारम्भ हो जाती है, दाह जन्म ले लेता है और धीरे धीरे वह स्नेह सूखता जाता है, (एक बात और यदि पानी डाल कर तलाग्नि को बुझाने की चेष्टा की जाय तो आग और भभकती है बुझती नहीं ।) ठीक वैसी ही स्थिति वियोग विधुरा नायिका की होती है स्नेहमय हृदय मे वियोग की चिंगारी जा पड़ी है आसू तरल खाकर उस ताप को समाप्त करना चाहते हैं किन्तु हाय रे भाग्य वह तो और अधिक तापित होती है । इस दुनिया की रीति ही विपरीत है यहा के व्यापार ही उल्टे हैं ।

नेवाज की यह उक्ति सर्वथा मौलिक है और उनके काव्य कौशल का सुन्दर उदाहरण है । यहा वियोग से उत्पन्न दुख की स्वाभाविक स्थिति पूर्णतया स्पष्ट भी हो गई है और विप्रलम्भ के रस की निष्पत्ति भी हो गई है ।

चौपाई– महिपाली अति[1] व्याकुल रहै। पीर हिये की का सा कहै[2]॥
सकुंतला सो मनु अटकायो। राज काज अब सब बिसरायो॥
भई लगन घर जान न दीन्हो। डेरा निकट तपोवन कीन्हो॥
कल न परै निशि दिन महिपालै। सकुंतला की सुधि हिय सालै॥
मुनि लोगन को उरपन मन मे। राजा आय सकत नहि बन मे[3]॥(1)
नेकु न मिटत मरुरा (2)मन को। नृप यो गीला(3)करत मदन को[4]॥
रे रे मदन महा अपराधी। निपटि अनीति आनिते नाधी॥
मन ते भया मनोज कहावत[5]। ताही मन को कहा जरावत[6] (4)॥६३॥

१ उत (B) २ महिपालों यो रहत मन मारे। निसिदिन जरत विरह के जारे॥ (A)
३ मुनि लोगन को डर मन तप को। नेक न मिटत मरुरा मन को॥ (B)
मुनि लोगनि को डर मन तप को। नृप यो गीला करत मदन को॥ (A)
४ विरह अगिन सों तावत तन को। नृप यो गीला करत मदन को॥ (B)
नेकु न मिटत मरुरा मन कों। विरह अगिनि तावत तन को॥ (A)
५ कहावतु (AB) ६ जरावतु (AB)

1–यह पंक्ति कवि कालिदास की 'जाने तपसो वीर्य सा बाला परवतीति मे विदितम्' का रूपांतर है साथ ही तत्कालीन महात्माओं और ऋषियों के प्रताप की भी द्योतक है। चक्रवर्ती सम्राट दुष्यंत भी उनके भय से स्वेच्छापूर्वक आश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता और मन का मरुरा नहीं मिटा सकता। राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका अनुवाद यों किया है —

जानत हूँ तप बल बड़ा अरु परवस वह तीय।
तदपि न वा सों हटि सके मेरो व्याकुल हीय॥ श० ना० ५४॥

2–यह प्रचलित ग्रामीण शब्द है ब्रज प्रदेश और मुरादाबाद के ग्रामों मे बहुधा बोला जाता है–अर्थ है ऐंठन वेदना।

3–फारसी का शब्द है शुद्ध रूप गिल अर्थ है उपालम्भ उलाहना शिकवा।(उ० हि० को०)

4–विधि की विडम्बना है कि जान ही जनक का द्वेषी हो गया। मनोज शब्द को लेकर कवि ने सुन्दर और अनूठा उपालम्भ प्रस्तुत किया है। वृहत्संहिता के अनुसार भी 'मनोज' का मूल 'मन' है 'मनोहि मूल हरदग्ध मूर्ते'। आशय यह है कि मन से पैदा होने के कारण उसका नाम मनोज है और यह भी निश्चित है कि काम-दाह सर्वाधिक होता भी मन में ही है तभी तो कालिदास की शकुंतला के स्तनों पर उशीरादि का लेप किया जा रहा है अन्य शरीरावयवों पर नहीं– स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलित मृणालैकवलयम् आदि (कामशास्त्र के अनुसार तरुणी नायिकाओं के स्तन ग्रीष्म में शीतल तथा शिशिर में उष्ण रहते हैं किन्तु काम के प्रभाव से ग्रीष्म में भी नायिका का वक्ष प्रदेश तप्त है–मानो जल रहा है।)

सोरठा– स भु नयन की आगि वडवानल ज्यों समुद म । (1)
रही सु तो म लागि तासों तैं हमको दहत¹ ॥६४॥

१ दहतु

1–काव्य में वर्णनीय अर्थों या विषयों के लिए भरत, भामह, वामन, राजशेखर प्रभृति आचार्यों ने १६ स्रोत बताये हैं उनमें इतिहास और पुराण भी हैं। उनका महत्व भी काव्यार्थ क्षेत्र में वेद और स्मृतियों से कम नहीं है यथा —

श्रुत्यर्थस्य निबन्धेन श्लाघ्यन्ते कवयो यथा।
स्मृतीनामितिहासस्य पुराणस्य तथा तथा ॥ (का० मी० पृ० ८६)

अर्थात् वैदिक अर्थों का अनुसरण करके रचना करने वाले कवि जैसे प्रशंसनीय होते हैं उसी प्रकार धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण में प्रतिपादित अर्थों को लेकर रचना करने वाले कवि भी सराहनीय समझे जाते हैं।

इस सोरठे में 'काम-दहन' की पौराणिक कथा की ओर संकेत है। शङ्कर ने मन्मथ को अपने त्रिनेत्र की ज्वाला से दग्ध कर दिया था अतः जो स्वयं ही जल रहा है–जला हुआ है भला वह किसी को शीतलता क्या प्रदान करेगा ? बाहर से शांत शांत और स्निग्ध लगते हुए भी वह भीतर ही भीतर असीम दाह से जल रहा है जैसे समुद्र वडवाग्नि से जलता रहता है।

नेवाज ने इस पौराणिक प्रथ के आश्रय से काम-पीडित विरही की उक्ति का बड़ा सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। कालिदास का शिवका कुसुमायुध के बाणों की कठोरता तक ही सीमित रहा है। रहीम के मालिनी छंद में भी इसी पौराणिक भाव को देखा जा सकता है —

हरनयन समुत्थ ज्वाल वह्नि जलाया।
रति नयन समौघे, खाक बाकी बहाया।
तदपि दहति चेतो, मामक क्या करौंगी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥
(रहिमन विलास, व्रजरत्न दास भूमिका पृ० ८६)

इसी के निम्न पाठान्तर और प्राप्त होते हैं —

हरनयन हुताशन ज्वालया जो जलाया।
रतिनयन जलौघे खाक बाकी बहाया।
तदपि दहति चित्तं माक क्या मैं करौंगी।
मदन सरसि भूय क्या बला आग लागी ॥
(याज्ञिक जी द्वारा उपलब्ध सुभाषित रत्न भण्डार पृ० २१७)

हरनयन समुत्थ ज्वाल वह्निज्जलाया।
रति नयन जलौघे खाक बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चेता मामक क्या करौंगी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आगि लागी ॥
(पुरानी हिन्दी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृ० ११४)

दोहा– निंदा करि या मदन की दसि जुन्हाइ¹ रानि। (1)
निंदा शशि की अब करन लाग्यो नृप यहि भांति ॥६५॥

१ जोन्हाई (AB)

कामदेव की बात देखिए—पहले उसे शिवजी के तृतीय नेत्र की ज्वाला ने जला दिया, बाकी खाक रही थी, वह रति के आंसुओं से बह गई, तो भी वह मेरे चित्त को जलाता है ? क्या करूंगी। न मालूम कामदेव के सिर पर यह क्या बला की आग लगी है, जल-बल कर भी जो उठा है।

1–विप्रलम्भ के अन्तर्गत मदन और चन्द्र की निन्दा करना परम्परागत रूढि है। प्राय एतद्विषयक प्रत्येक कवि ने इस परम्परा को अपनाया है। कवि कालिदास ने भी इसे निम्न श्लोक के माध्यम से निभाया है –

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो–
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै–
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारी करोषि॥ अभि० शाकु० ३।३॥

नेवाज और कालिदास की रीति में अन्तर है, भाव भिन्न है, किन्तु आशय एक है, लक्ष्य एक है। डा० मैथिलीशरण गुप्त ने शीतल समीर और मदन की निन्दा की है। यद्यपि समीर भी शीतलताप्रद है तथापि परम्परासम्मत नहीं है। अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुसार तो मालिनी तीर का शीतल-पवन विरही दुष्यन्त के लिए सुखकारी है यथा –

शक्यमरविन्दसुरभि कणवाही मालिनी तरंगाणाम्।
अंगैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितु पवन ॥ ३। ४॥

डा० साहब के भाव भी नवाज और कालिदास से भिन्न है –

दुखदायी हो आज यह शीतल सुखद समीर।
प्रिया बिना करता व्यथित मेरा तप्त शरीर।
मेरा तप्त शरीर न सुख इससे पाता है
उलटा आग समान उसे यह झुलसाता है।
किसी ने यह बात बहुत हा ठीक बताई–
बन जाती है कहीं सुधा भी विष दुखदायी॥

और

है करता तू पचशर! बिद्ध यदपि मम चित्त,
हूं कृतज्ञ तेरा तदपि मैं इस कार्य-निमित्त॥
मैं इस कार्य-निमित्त मानता हूं गुण तेरा
इस प्रकार उपकार भार। होता है मेरा।
जिस सुमुखी का विरह धैर्य मेरा रहता है
उसके ही मिलनार्थ प्रेरणा तू करता है॥ (शकुंतला, पृ० १३)

सोरठा–विरहिनि देत जराय हत्या को शशि डरति[१] नहि ।
तम से पूतहि पाय सागर को सरमात नहि[२] ॥ ६६॥
हिये बढावत दाह सो यह दोसु तुम्है नहि[३] ।
करत पाप यह राहु[४] तुम्है जो छोडत[५] निगलि कै ॥ ६७॥
तोहि[६] सुधानिधि नाउ[७] लोग कहत ते वावरे । (1)
वारि देत सब ठाउ[८] आगि जुन्हाई की छलनि[९] ॥ ६८॥

---

१ डरतु (A) २ तुमते सुत है जाहि, सागर क्यो सर मात नहि (AB) ३ नहीं (AB)
४ राहि (AB) ५ छोडतु (A) ६ तुम्हैं (AB) ७ नाऊँ (AB) ८ ठाऊँ (AB)
९ विरहिन को जिन किरन सो (AB)

1–इन तीना सारठा म सुधानिधि शशि के प्रति विरही दुष्यत का उपालम्भ व्यजित है । कालिदास शशि को केवल विश्वासघाती' कहकर ही छाड दते है लेकिन नेवाज का दुष्यन्त उसे भली प्रकार फटकारता है ।

सागर का पुत्र चद्रमा है – सागर मथन से यह निकला था, ऐसी पौराणिक प्रसिद्धि है और चद्र का पुत्र अधकार है ऐसी साहित्यिक मान्यता है । सागर के समान विशाल गम्भीर, अनेकानेक रत्ना के आकर पिता का पुत्र होकर भी किसी निरीह को मारे, अबला विरहिणी को जीवित जला डाले, यह शोभनीय नही है । यही नहा उसका पुत्र भी तम है । उलाहना अच्छा है ।

दूसरे सोरठे मे विकल जन की आह है , दु खी का रोष है । ऐस पापी को यदि छोड दिया जाएगा ता वह सिवाय लूटमार, हत्या और आगजनी के क्या करेगा ? अत दापी तो वह है जो उस दण्डित नही करता–पकड कर भी छोड दता है । दु खी जन की मन स्थिति की अभिव्यजना सुदर बन बडी है । इन दाना ही सोरठा मे नेवाज की उद्भावनाएँ यद्यपि मौलिक और अछूती नही है तथापि प्रसाद गुण से समन्वित हाकर मार्मिक और प्रभावशाली बन गई है ।

तीसरा सारठा रीतिकालीन प्रचलित भाव का ही व्यजक है । कविवर बिहारी के ये दोहे क्या इसी भाव के पोषक नहीं है ?

> हौं ही बौरी विरह–बस, कै बौरो सब गाऊँ ।
> कहा जानि ए कहत हैं, ससिहि सीतकर नाऊँ ॥
> विरह जरी लखि जीगननु कह्यो न डहि कै बार ।
> अरी आहु भजि भीतरी, बरसत आज अ गार ॥

इसी प्रकार बारहवी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हमचद्र की उक्ति भी इसी भाव से समन्वित है —

उप्पाइ अमृत मयूख मयूखउ दुस्सह चदन—पकउ ज्वलै लताघर भी ।
एहुँ तव विरहे तसु तनु–अ गिहि सुभग । सोहाइ न विछुउ प्रिय सखि क्या करवि ॥
(हिन्दी काव्यधारा पृ० ३८१)

दोहा – सकुंतला के विरह ते व्याकुल अति महिपाल ।
एक द्योस कछु कहन[1] को आये द्वै मुनि वाल[2] ॥ ६६॥
चोपाई– द्वै मुनि शिष्य[3] द्वार म[4] आये । सुनतहि[5] राजा[6] तुरत[7] बुलाये[8] ॥
आसिरवाद दुहुन तब दीन्हा । करि प्रनाम नृप आदर कीन्हो ॥
मुनिवर बोलि उठे तव दूना[9] । बिना कन्त यह वन[10] है सूनो ॥
महाराज है यज्ञ हमारे । सो ह्व सकत[11] न जिन रखवारे ॥(1)
राक्षस विघ्न करन को आवत । सब ऋषि लोगन आनि सतावत ॥
कछु दिन को तुम चलौ [12]तपोवन । विनती करो सकल ऋषि लोगन ॥
वन म[13] चहत हुतो[14] नृप आया । सुनि मुनि वचन वहुत सुख पाया[15]॥
विनती करि यो ऋषिन बोलाया[16]। राजा हरषि तपोवन आया ॥

१ करन (AB) २ मुनिपाल (B) ३ बाल (A) सिद्ध (B) ४ पर (AB) ५ सुनत (B)
६ राज (B) ७ तुरत (A) ८ बोलाये (AB) ९ तव नृप सों बोले रिषी दूनों (A) तव रिषी बोलि उठे वे दूना (B) १० बनु (A) ११ सकतो (B) १२ चलो (A) १३ कों (B)
१४ हुतौ (A) १५ वनती करि यों रिषिन बोलायो (AB) १६ भयो सकल निज मन भायो (AB)

कृष्ण काव्य धारा के लब्ध-प्रतिष्ठ महाकवि सूरदास का निम्न पद तो नेवाज के इन सभी भावों का समवेष्ठित रूप है —

काऊ बरजो री या चदहि ।
अति ही क्रोध करत हम ऊपर कुमुदिनी कुल आनदहिं ।
कहा कहौं वर्षा रवि तमचुर कमल बलाहक कारे ।
चलत न चपल, रहत थिरकै रथ विरहिन के तनु जारे ।
निन्दति शल उदधि पन्नग को श्रीपति कमठ कठारहि ।
देति असीस जरा देवी को राहु केतु किन जोरहि ।
ज्यों जल हीन मीन तनु तलफति ऐसी गति ब्रज बालहि ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गुपालहि ॥

1–कण्व ऋषि का आश्रम मालिनी नदी के तट पर अवस्थित था । यह मालिनी नदी ही मन्दाकिनी कहलाती है यह घाघरा नदी की एक सहायक नदी है । ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का आश्रम भी इसी नदी के तट पर उस स्थान पर था जहाँ यह गगा मे मिलती है । इस प्रदेश के प्राचीन नाम वेदगर्भपुरी विश्वामित्र आश्रम सिद्धाश्रम, व्याघ्रसर और व्याघ्रपुर मिलते हैं (तपोभूमि पृ० २११) । ताड़का वन भी इसी स्थान पर था । सिद्धाश्रम से लगभग एक मील दूरी पर ताड़का वध हुआ था । बिहार का यही भाग जहा बक्सर नाम का कस्बा आजकल आबाद है सम्भवत दण्डकारण्य है । वहीं मन्दाकिनी नदी के तट पर शरभग सुतीक्ष्ण और महिमाशाली अगस्त ऋषि के उपनिवेश भी रामायण काल में स्थापित हुए थे । 'रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा के नेतृत्व मे दण्डकारण्य ही म एक उपनिवेश स्थापित किया था । यद्यपि वास्तव मे वह सैनिक सन्निवेश था । ये राक्षस केवल अपनी सस्कृति का प्रचार बलात् करते और वहा के लोग

चापाई–आपु अकेलो नृप धनु धारी। करत ऋपिन की बन रखवारी॥
बाढ्यो विरह नृपति के मन म। ढूढत सकुतला को वन म॥
ग्रीपम तरनि तेज तपि आयो। तव नृप मन म यह ठहराया॥
सकुतला यह[1] धूप विकट मे। ह्वै है नदी मालिनी[2] (1) तट मे॥
विन देखे नृप धरत न धीरहि। आयो नदी मालिनी[3] तीरहि॥
फूले कमल मोर जह बालत। सीतल पवन[4] मद तह[5] डोलत॥
हरपि मोर पिक करत पुकारे। झुकि झुकि परी[6] सघन तर डारे॥
सीतल घन छाया तह छाई[7]। कमल दलन[8] की सेज विछाई॥

१ यहि (AB) २ मालिनि (A) मालनी (B) ३ मालिनि (A) मालनी(B) ४ पौन (AB)
५ जहँ (AB) ६ रहीं (AB) ७ सीतल छाह सघन जँह छाई (AB) ८ दलनि (A)

को राक्षस बनाने की चेष्टा करत थे। रावण की आज्ञा युद्ध करने की न थी। इसी कारण यद्यपि यहाँ खर–दूषण चौदह हजार राक्षसा के साथ रहत थे, परन्तु वह लाग लडने–भिडने न थे। केवल ऋषिया क यज्ञा म आकर बलि माँस बलात् डालते उन्हे पकड ले जात उनकी बलि दन तथा नर मास खात थ।''

(वय रक्षाम भाग १ ले० चतुरसेन शास्त्री, पृ० १५७)

इस प्रकार सिद्ध है कि दण्डकारण्य की जो अवस्था राम के काल में हो गई थी उससे कमावश दुष्यन्त क समय म भी अवश्य रही होगी। राक्षसा का निवास स्थान यह तब भी होगा और वे अवश्य ही यज्ञा म विघ्न डालते रहत होगे उपद्रव करते होंगे। कण्व एक महिमावान और प्रतापी ऋषि थे। इस दुर्गम अचल म उनका सर्वाधिक प्रभाव था। उनका उपनिवेश समर्थ और शक्तिशाली था अत उनकी उपस्थिति म राक्षस इधर आने का यत्न यक साहस नहीं करत थे। उनकी अनुपस्थिति म राक्षसा की यज्ञ विध्वसक हिंसक और अवैदिक क्रियाएँ स्वभावत हा बढ गई हागी इसीलिए ऋषिया को राजा दुष्यन्त के समक्ष रक्षा की प्राथना लेकर उपस्थित हाना पडा हागा।

१इसका दूसरा नाम मन्दाकिनी नदी है यह घाघरा की सहायक नदिया म से एक है। महाभारत वनपर्व के ८५ वें अध्याय मे इसे सब पापा का नाश करन वाली कहा है। इसी के तट पर अनुसूया का निवास स्थान था। इस नदी की उत्पत्ति क सम्बन्ध मे बाल्मीकीय रामायण म अत्रिऋषि न भगवान राम से कहा है 'हे रामचन्द्र। इस धर्मचारिणी तापसी अनुसूया न उग्रतप और नियमा के बल से १० वर्ष की अनावृष्टि म ऋषिया के भोजन के लिए फल-फूल उत्पन्न किए और स्नान क लिए मन्दाकिनी नदी को यहा बहाया।' [भरत कूप में तीर्थों का जल छोडन और इस कूप को अत्रि के शिष्या द्वारा खोद जान की कथा तुलसीकृत रामचरितमानस मे भी है]। सम्भवत जिन दिना विश्वामित्र सत्यव्रत त्रिशकु के साथ वनवास कर रहे थे, तभी इस नदी को इस प्रकार लाया गया हागा और महर्षि ने अपन आश्रम की स्थापना की हागी।

चौपाई–सकुंतला तिय पौढी तामें। अति ही व्याकुल विरह विथा मे[1] ॥
घसि उसीर चदन उर लावै[2]। सखी कमल दल पवन[3] डुलावै (1) ॥६७॥

दोहा– जारत[4] विरह महीप को ताही[5] कहत लजात[6]।
करत[7] बहानो[8] सखिन सो सकुंतला यहि भांति ॥ ६८॥

चौपाई–ग्रीषम तरनि तेज तपि आया। त्येंयांहि[9] तन म दाह बढायो ॥
उर मे दाह कहा लौ सैहौ। तब कल पैहौ जब मरि जैहौ[10] (2)॥
सकुंतला निदरत[11] इमि प्रानन[12]। भनक परी राजा के कानन[13] ॥६९॥

---

१ अति ही सीतलता है जामे (B) २ लाव (B) ३ पौन (A) ४ जारतु (B)
५ ताहि (AB) ६ सरमाति (AB) ७ करति (AB) ८ बहाने (B) ९ तेहि तिय (AB)
१० जब मरि जहौं तब कल पहौं (AB) ११ निदरति (AB) १२ प्राननि (AB) १३ काननि

1–अभिज्ञान शाकुंतल के तृतीय अंक के छठे श्लोक म कवि कालिदास ने शकुंतला की स्थिति का जो चित्र दिया है लगभग वैसा ही इन पंक्तियों मे है। वहाँ राजा दुष्यन्त उसकी कृशता और व्याकुलता देखकर अनुमान लगाता है कि यह निश्चय ही काम से सन्तप्त है। यहाँ कवि नेवाज स्वयं ही अति ही व्याकुल विरह विथा मे कह कर शंका निवारण कर देते हैं। नेवाज की नायिका यद्यपि काम सन्तप्त है तथापि तत्कालीन अन्य नायिकाओं की भाँति उपहास की सामग्री नही बन गई है। बिहारी की नायिका की भाति न तो उसके पास गीले कपडे पहन कर जाने की आवश्यकता है और न गुलाब जल की शीशी उसके पास जाते जाते ही सूखना है —

आडे दे आले बसन जाडे हूँ की राति।
साहस करै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति ॥
औंधाई सीसी सुलखि विरह बरति बिललात।
बिचही सूखि गुलाब गो छीटौ छुयो न गात ॥

तात्पर्य यह कि नेवाज का विरह वर्णन रीतियुगीन अन्य कवियों की भाति ऊहात्मक नहीं है उसमे यथार्थता और मार्मिकता है। हां परम्परा का आश्रय वे भी लिए रहे हैं। उसीर चन्दन और कमल आदि परम्परागत उपकरण हैं। बिहारी ने भी इनका प्रयोग नायिका के वर्णन म किया हैं —

जिहि निदाघ दुपहर रहै, भई माघ की राति।
तिहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥

2–नायिका भेद की दृष्टि से इस स्थल पर शकुंतला की स्थिति परकीयान्तर्गत लक्षिता की है। शकुन्तला यद्यपि कन्या है, तो भी परकीया है। साहित्यदर्पणकार ने ऐसी कन्या नायिका को भी परकीया ही माना है।

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
यात्राद्विनिरतान्योढा कुलटा गलितत्रपा ॥ साहित्य दर्पण ३।६६ ॥

रहीम ने भी परकीया नायिका को दो रूपों में स्वीकृत किया है—ऊढ़ा और अनूढ़ा। अविवाहिता कन्या, जो पर पुरुष में अभिलाष रखती हो अनूढ़ा कहलाती है —

मोहि वर जोग कन्हैया, लागौ पाय।
तुहु कुल पूज देवतवा, होहु सहाय॥
(रहिमन विलास, बरवै, नायिका भेद—१७)

भाषाभूषण के रचयिता राजा जसवन्तसिंह ने केवल परवाम ही को परकीया माना है।

सुकिया ब्याही नायका परकाया परवाम।
सा सामान्या नायका जाके धन सों काम॥भा०भू०(हस्त०)पृ०१ १०

वस्तुतः परकीया नायिका वह है जो स्वाधीन न होकर भी अन्य पुरुष में अनुरक्ति रखती है अब चाहे वह विवाहिता हो और चाहे अविवाहिता। विवाहिता स्त्री पति के अधीन रहती है, तो कन्या, माता पिता, भाई बन्धु के—कैं नाना ही पराधीन। अतः यह सिद्ध है कि शकुन्तला अज्ञातविवाहा होते हुए भी परकीया नायिका है और अनूढ़ा है।

परकीया के विदग्धा लक्षिता गुप्ता, कुलटा, मुदिता, अनुशयना आदि कई भेद हैं अविवाहिता—अनूढ़ा—नायिका, जिसका नया—नया नेह हो अपनी बात किसी से कहना नहीं जानती। विरह का ताप मौन रह कर स्वयं ही सहती है किन्तु—'खैर, प्रीति खासी खुसी—क्या छिपाये से छिपती हैं? नायिकागत हाव—भाव से देखने वाले तुरन्त पहचान जाते हैं और फिर सखी तो कला-कौशल सम्पन्ना होती है। शकुन्तला यहां अपनी आकुल-व्याकुल दशा से लक्षित है एतदर्थ वह परकीया—लक्षिता नायिका है —

क्रिया वचन सों चातुरी यहै विदग्धा रीति।
बहुत दुराये हू सखी लखी लक्षिता प्रीति॥ भा० भू० हस्त० पृ० १—१२॥

गुप्ता नायिका जहां सुरति को वचन—चातुरी से गोपन रखने का प्रयत्न करती है वहां शकुन्तला अपने पूर्वानुराग को छिपाने की कोशिश कर रही है। विरह जनित ताप में दग्ध होने पर वह अत्यन्त व्याकुल है तथापि सखियों से ग्रीष्माधिक्य से पीडित होने का बहाना करती है। वस्तुतः वह इतनी दुखी है कि मरण का वरण किया चाहती है। पूर्वानुराग की शास्त्रोक्त अंतिम दशा 'मरण' तक बात पहुँच गई है। बिहारी के शब्दों में —

कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जरिबौ लखैं, मरिबौ भयौ असीस॥

'रसनिधि' की नायिका भी वियोग की ज्वाला से पीडित होकर कुछ इसी प्रकार कह उठती है —

नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहा लौं हियें विरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्राननि को कलपैये॥ आदि॥

उर्दू गजल के आधुनिक इमाम 'जिगर मुरादाबादी' तो इस कदर बेकल और बेबस हैं कि बस क्या कहिए—

क्या जानिए कब तक मुझे फुर्कत में कल आए।
दिल का अभी रोना था कि आँसू निकल आए॥

दाहा– चल्या नृपनि तिल ही जिते सुने दीन ये बैन ।
बिरहिनि महा सकुंतला देगी तव[1] भरि नैन ॥ ७०॥
मन[2] मलीन तन[3] छीन अति पियराने सब अंग ।
दुपित भयो नृप देखि कै सकुंतला का रग ॥ ७१॥ (1)

१ तिय (B) २ मनु (AB) ३ तनु (AB)

पूर्वराग का ऐसी विषम स्थिति ही म करुण विप्रलम्भ की उत्पत्ति हाती है कादम्बरी म पुण्डरीक और महाश्वेता का वृत्तान्त भी करुण विप्रलम्भ ही का निदर्शन है। जहाँ विमनत्व, शोकोत्पन्न व्याकुलता एव विलाप आदि क द्वारा पाठक या प्रेक्षक के हृदय मे सहानुभूति उत्पन्न हो, उसके मन म करुणा का उद्रेक हान लगे, वहाँ करुण विप्रलम्भ होता ह —

यूनारेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तर पुनर्लभ्ये ।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्य ॥ (साहित्य-दर्पण ३–२०६)

1–महाकवि कालिदास न शृङ्गार के विप्रलम्भ को जितना अधिक सरस बना कर पाठकों के हृदय का द्रवीभूत किया ह सम्भवतया अन्य कवि वैसा नही कर सके है । कालिदास द्वारा चित्रित शकुन्तला का निम्नचित्र कितना अधिक पूर्ण और विरह की समस्त भगिमाओं का प्रकाशक ह —

क्षामक्षामकपोलमाननमुर काठिन्यमुक्तस्तन ।
मध्यक्लान्ततर प्रकामविनतावसौ छवि पाण्डुरा ॥
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते ।
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥ ३।७॥

इसका अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह न इस प्रकार किया है —

गाता छीन कपोल भया ह । उर न उरोज कठोर रह्यो है ॥
दुबर लक अधिक दुबराई । भुज दोउ मुखपै पियराई ॥
यहरी जाग दरसन अति प्यारी । मदन बिथित दीखति यह नारी ॥
जस माधवी लता सताई । पात सोख मारुत दुखदाई ॥ श० ना० ६३॥

डा० मैथिलीशरण गुप्त न भी सम्भवत नेवाज ही की भाति इस रमणीय स्थल का विशेष महत्व नहीं दिया और केवल इतना ही कह कर आगे बढ गए —

एक मनोहर ठौर पड़ा पल्लव-शय्या पर
क्षीण कलाधर रेखा सदृश था अति सुन्दर ।
लगे देखने नृपति उसे तब बड़े प्यार से
दुखित कहीं हुए बड़े ना ना प्रकार से ॥ शकुन्तला पृ० १४

चौपाई– तबहिं[1] नपति[2] मन[3] यह आई। अबहिं[4] न दीजै इनहिं[5] देखाई॥
रह्यो दुराय द्रुमन म गातहिं[6]। सुनत श्रवन दै इनकी बातहिं[7] ॥७१॥
दोहा– यह[8] कहि वन म दुरि रह्यौ नपति द्रुमन की ओट।
सकुंतला नहिं[9] सखिन सो कहत विरह की चोट ॥७२॥
अनसूया तब कह उठी प्रियवदा के कान।
सखि यावे यहि विरह को मय जान्यो[11] अनुमान[12] ॥७३[13]॥
चौपाई– जा दिन ते वह वन रखवारो। दरसन दै के फेरि[14] सिधारो॥
वा[15] दिन ते बिसरी मुखहासी। रहनि गहे दिन राति[16] उदासी॥
जरी जात विरहा के जारे। कहत नही लाजन के मारे ॥७४॥
दोहा– अनसूया के वचन सुनि प्रियवदा करि खेद।
परगट[17] ह्वै पूछन लगी सकुंतला को भेद[18] ॥७५॥
चौपाई– सुनहु सखी ह्यां[19] और न काऊ। कै तै पास[20] सखी हम दोऊ॥
तै हमसो अब कहा दुरावति। पीर हिये की क्यो न बतावति॥
दिन दिन देह जात दुबरानी। पियराई सब अंग निसानी[21]॥

---

१ तब (AB) २ नृप के (AB) मन म (AB) ४ अब (AB) ५ इन्हैं (AB)
६ रहे दुराइ द्रुमनि गातनि (AB) ७ बातनि (AB) ८ यो (AB) ९ ओट (B)
१० न (AB) ११ जानत (A) १२ उन्मान (A) १३ यह दोहा प्रति (B) म नहीं है
१४ करि फिरिन (A) व फिरिन (B) १५ ता (AB) १६ रति (B) १७ परघट
१८ भेट (AB) १९ ह्याव (AB) २० क त थव (AB)
२० अग अग की छवि पियरानी (A)

समुच्चयालंकार का निर्वाह सा दनाते हुए विरहजन्य- यथा का ऐसा स्वाभाविक वणन करना कविराट ही का काय हो सकता है। दुःख मे मुख और कपोलो का सकुचित होना विरह जनित ताप के कारण स्तनो म पहले जैसा काठिन्य और उत्सेध न रहना (जिसके कारण कवि को स्तनांशुक शिथिल कराने की आवश्यकता पडी था), स्वभावत क्लान्त कटि का क्लान्ततर हो जाना, स्वाभाविक स्थितियां है। इनके चित्रण मात्र से विरहज्वाल का प्रचण्डता का अनुमान हो जाता है।

नवाज आदि शाकुन्तलोपाख्यान रचयिताओ का इस महत्वपूर्ण स्थिति का विशद एवं मार्मिक चित्रण न करना कदापि प्रशसनीय नही कहा जा सकता। यद्यपि उन्होने विरहिणी चित्रण के परम्परित रग–मन की उदासी, वस्त्रादिकों का मैला होना शरीर दुबल हो जाना अंगो का पीला पड जाना आदि—को अपनाया है तथापि उनका यह इतिवृत्तात्मक सा वर्णन अपूर्ण है और वाछित प्रभाव उत्पन्न करने मे सवथा असमर्थ है।

चौपाई–दिन[1] दिन छिलनि अंग छिनाई[2]। घटनि अंग नीनो नाहि[3] जुनाई[4] (1)॥
देखि दुसह यह दसा निहारी। तिनिनि छनिया घटनि हमारी॥
दाह तिहार तन म जेता। तरनि तज त हात न[5] तेता॥
छाडो लाज कहो ही[6] माना। हमसा करनी[7] यहा नहानी॥
जिय को नाच[7] जानि जा लीजै। तो फिरि नगी जतन[8] करीजै (2)॥

१ छिन छिन (AB) २ नही (AB) ३ लोनाई (A) निकाई (B) ४ नानो नहि (AB)
५ यह (AB) ६ करति त (A) करनो (B) ७ रोग (AB) ८ जतननि कीज (AB)

1– अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुसार शकुन्तला का व्याधि अवस्था म भी उस प्राकर्षण और सुन्दर देख कर राजा विचार करता है कि सम्भवत यह प्राप्य पाडित नहा वरन् कामपीडित हैं। नेवाज के अनुसार दुष्यन्त उसकी ऐसी अवस्था देखकर दु ंखी होता है कोई अनुमान नही लगाता (द्वि० त० ७१ वां दोहा) प्रस्तुत स्थल पर भी यह सखी का वचन है। सखी मे सहजज्ञान प्रगल्भता और वचन चातुरी प्रभति गुणों का होना शास्त्रानुसार अपेक्षित है।

शास्त्रानु निष्ठा सहजश्च बोध प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोध प्रतिभानवत्मत गुणा कामदुधा क्रियासु॥

अत वह वचन चातुरी से यह भी सकत कर देता है कि तेरा व्याधि अंग जन्य नहा है वरन् कि मानस रोग के कारण तो शरीर क्षीण होने के साथ साथ कान्ति शून्य भी हो जाता है किन्तु तेरा गात यद्यपि दुबल तो हो रहा है तथापि उसका लावण्य नहीं घट रहा है घटे भी तो कैसे लावण्य का स्वामी हृदय में जो बैठा है। आगे की चौपाई 'दाह तिहार तन म जेता। तरणि तज ते होत न तेता' म भी इसी सकत की व्याख्या है।

एक बात और लोन पानी से गलता है ताप से नहीं। शकुंतला मकरध्वज के ताप मे सक्रमित है अत लावण्य के गलने का प्रश्न ही नही उठता। सम्भवत यही कारण है कि कवियो न वर्षा काल मे तो विरही जनो की कान्ति क्षीणता और लावण्य क्षय की चर्चा की है किन्तु ग्रीष्म ऋतु में तो प्राय शीतोपचार ही का वर्णन किया है। हेमचन्द्र की नायिका का सखा ता मेघ को इसलिए डॉटती है–

लोण विलिज्जइ पाणिएण अरि खलमेह म गज्जु।
बालिउ गलइ सुझुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु॥

अरे खल मेघ! मत गरज मत बरस नमक पानी से बिलाता घुल जाता है। तेरे बरसने से झोपडा गल रहा है और गोरी भीग रही हैं। (गोरी के भीगने से उसके लावण्य के गल जाने का डर स्पष्ट है।)

–सखियाँ, रूप,वय,गुण और जाति मे नायिका के अनुरूप और उदार चित्तवाली होती हैं। वे बुद्धिमती और नायिका का हित चाहने वाली होती है। वे नायिका के प्रेम का मर्म

चौपाई– यो मुनि डभकोलो[1] अखियन सा। बोली सकुंतला सखियन सा ॥
तुम हो सखि प्रानन ते प्यारी। दुख अरु सुख सो हौ[2] नहिं[3] न्यारी॥
बिथा बडी या तन लागि[4] मेरा। तुम सो छोडि कहौं का केरा॥
याते हौं न कहत हो अजहू। सुनत दुखी ह्वै जैहौ तुमहू (1)॥
जब तें वह बन को रखवारा। मनु हरि कै लय गया हमारा[5]॥
तब ही तें यह दसा हमारी। छिन भरि पीर टरत नहिं टारी॥
कै अब वाहि न पाव यरी। वै दै चुकहु तिलाजुलि मेरी[7]॥[8]
यतनो[9] कहत गरो भरिआयो। लगी लाज[10] नीचे सिर नायो (2)॥

१ उबकौनी (AR)   २ मे होहु (AB)   ३ न (AB)   ४ लगि (AB)
५ लख्यो जबहि तें द– रखवारो । मन हरि ल ध गयो हमारो ॥ (A)
लख्यो जबहि बन को रखवारो । तब हीं तें यह दसा हमारी ॥ (B) ६ प्यारी (A)
७ म्हारी (A) ८ करौ उपाय वेगि ही येरी । क द चुको तिलाजुलि मेरी । (B)
९ एतनी (A)   १० लाग (F)

करती है और यथा साध्य उसके प्रिय को उससे मिलाती है। सहजबोध सम्पन्न होने के कारण वह शीघ्र ही नायिका के मनोभाव को समझ जाती है यही कारण है कि प्रियम्वदा और अनुसूया भी शकुन्तला के दुष्यन्ताभिमुख अनुराग का आभास पा जाती हैं और उसमें उसके अनुमोदन की आशा भी रखती हैं।

कवि कालिदास ने भी यद्यपि इसी प्रकार सखियों द्वारा शकुन्तला के समक्ष ग[illegible] रि[illegible] उपस्थित कराई है वहाँ भी सखियाँ शकुन्तला की व्याधि को जानने की चेष्टा इसी प्रकार करती हैं तथापि वहाँ अनुसूया स्वयं को प्रेम-व्यापार से अनभिज्ञ बताकर सखी के लिए आत्म[illegible] एक गुण से वंचित हो जाती है। कालिदास की इस रीति से यद्यपि सखियों का भोलापन और तपोवन वासियों की स्वभाविक पावनता स्पष्ट है तथापि नेवाज के कथन से भी उनकी चंचलता या अपावनता प्रकट नहीं होती वरन् नेवाज ने तो एक ओर शास्त्रीय नियमों की रक्षा की है और दूसरी ओर सखियों की [illegible] पावनता पर भी आंच नहीं आने दी है।

1–कवि कालिदास के, सखि ! कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं ? आआसइत्तिआ दाणि वो भविस्सं का ही अनुवाद रूप यह पंक्तियाँ हैं। अन्तर केवल इतना है कि कालिदास शकुन्तला के द्वारा अपने कोई प्रेम भरे वचन न कहला कर एकदम यही कहलाते हैं साथ ही सखियों को इस कार्य में सहायता देने का आमन्त्रण भी दिलवाते हैं जबकि नेवाज की शकुन्तला अपनी 'डभकोली' आँखों से अपनी सखियों की सहानुभूति जाग्रत करके अपने प्रेमपूर्ण वचनों के द्वारा उनकी आत्मीयता को उभार कर अपनी व्यथा कहती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नेवाज ने जो पृष्ठभूमि बनाई है वह अधिक सगत और अवसरानुकूल है।

2–इसमें सन्देह नहीं कि इस समय राजा दुष्यन्त के हृदय की अवस्था अद्भुत होगी–सम्भवतः ठीक वैसी ही जैसी परीक्षार्थी की परीक्षाफल सुनने से पूर्व होती है। न जाने शकुन्तला

चौपाई—यह दुष जी की सपिन सुनाया । नृप श्रवनन[1] मनु[2] सुधा पियायो ।।
सकुंतला यो बालि चुरानी । कही सपिन[3] फिरि[4] मीठी बानी ।।
अब ही ह्वै है सब मन आयो । भले[5] ठौर तै मन अटकायो ।।
आयो रहै वन रपनारो । राजा है वह प्रान पियारो ।।
रक्षा को सब ऋषिन बोलाया । फेरि तपोवन ही में आया ।।
दरयो हम अति ही दुबरानो । अंग अंग का रंग[6] पियरानो ।।
कहत न कछू रहत मन मारे । भयो विकल मन[7] विरह तिहारे ।।
लिपी येक पत्री पुनि वाको[8] । परगट ह्वै निज विरह विथा को ।।
दसा तिहारी जा सुनि पै है । तुरत तिहारे ढिग वह[9] अैह ।।७६।।

---

[1] स्रवननि (A) श्रोननि (B) [2] मे (AB) [3] सपी (A)
[4] यह (A) [5] भले (A) [6] रगु (A) [7] मनु (AB)
[8] पत्रि एक लिपि पठवहु वाको (A) । लिप्यो येक लिपि पठवहु वाको (B) ।
[9] करि (A) [10] चलि (AB)

का क्या कारण बताये ? फिर भी इस स्थल पर कवि कालिदास का राजा की मनोदशा का चित्रण करना रस मे आघात उत्पन्न करता है—घटना के प्रवाह मे बाधक बनता है। तुलसी के Hero राम थे — वे उन्हे विष्णु का अवतार मानते थे लीला मात्र के लिए मानव रूप मे आये हैं ऐसा उनका विश्वास था—यही कारण है कि लक्ष्मण के शक्ति लगने पर विलाप करते समय भी वे राम के सम्बन्ध मे 'उमा एक अखंड रघुराई । नर गति भगत कृपाल देखाई' कह उठते हैं यद्यपि इस कथन मे करुण रस की निष्पत्ति और प्रवाह मे बाधा उपस्थित हुई है । ठीक इसी प्रकार कालिदास का Hero भी दुष्यन्त बन गया है इसलिए वे प्रत्येक स्थल पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसे श्रेष्ठ प्रस्तुत कर रहे हैं । इस स्थल पर भी उनका निम्न श्लोक इसी प्रवृत्ति का परिणाम है ।

दृष्ट्वा जाने समद् समुखन बाला
नद न दम्पति मनानमाधिहतुम् ।
हृष्ट्वा निरत्य बहुना व्यनया सतृष्णा—
मनान्तर श्रवणकातरता गता सि ।।८१३।।

इसके अतिरिक्त नाटकीय दृष्टि से भी दुष्यन्त की मनोदशा का इस स्थल पर चित्रण अप्रासंगिक है ।

कवि नेवाज ने इस प्रसंग को प्रचलित हो छोड़ दिया है सम्भवतः इसका कारण उनका नाटक विषयक दृष्टिकोण है । प्रधानपात्रा शकुन्तला के माध्यम से निष्पन्न रस में दुष्यन्त का व्यवधान उन्हें सह्य नहीं । वे नहीं चाहते कि रस-प्रवाह में कोई बाधा बने ।

तिलाञ्जलि देना संस्कृत के तिलाञ्जलि सिचन ही का भावार्थ है । इसका अर्थ है मरा हुआ समझना । मृतक के लिए तर्पण करते समय तिल और पानी अंजलि

दोहा– कीजै यहै उपाय यो[1] कह्यो सखिन समुझाय।
बाली वहुरि सकुंतला सखियन सो सरमाय[2] ॥७७॥
चौपाई– यह उपाय तो है अति नीको। या म[3] यह डर मिटत न जी को॥
परगट ह्वै यो छोडत लाजहि। लिपो लिपो पहुचाउव राजहि[4]॥
निरपि नृपति जु निरादर ठानै। हमको तजै वनै फिरि प्रानै (1)॥

१ अब (AB) २ बोली वहुरि सखिन सो सकुंतला सरमाइ (AB) ३ तें (A)
३ यातें यह डर मिटि है जिको (B) ४ योलि योलि लिपि पठवहु राजहि (A)
४ लिपी लियो लिपि पठवहु राजहि (B)

में भर कर आज भी दिया जाता है। कवि कालिदास ने भी इसी प्रसग म शकुंतला स 'अण्णाहा अवस्स सिज्ज म तिलाञ्जलि' कहलवाया है। राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका ठीक अनुवाद 'नहा तो मुझे तिलाञ्जली दो' लिखकर किया है। वस्तुत इस मुहावर का प्रयोग कवि नवाज न परम्परित रूप मे ही किया है।

सखियो म प्रियमिलन के अवसर को जुटान की प्रार्थना करना भी इस अद्भुत जगत मे नई बात नहीं है। प्राय प्रत्येक नायिका ने इस प्रकार की चष्टा का है किसी न दूती क आश्रय स तो किसी न सखी के माध्यम स। रहीम की नायिका भी अपनी सखी स ऐसी ही अनुनय करती है –

मन मोहन बिन दव, दिन न सुहाय।
गुन न भूलि हौं सजनी तनक मिलाय॥ रहि० वि०,वरवै १६॥
विरह विथा तें लखियत, मरिबौ भूरि।
जो नहि मिलिहै मोहन जीवन मूरि॥ वही ३८॥

1–नारी स्वभावत लज्जालु और भीरु होती है, वह गाढतम राग का भी छिपाए रखता है जबान पर नहीं लाती–फिर शकुंतला तो परकीया मुग्धा नायिका है। रतिपति के राज्य म उसका यह पहला कदम है यदि हिचक, भय और आशकाएँ प्रतिभासित होती हैं तो अस्वाभाविक क्या। कालिदास की शकुंतला के हृदय मे भी इसी प्रकार की शंका जन्म लेता है "हला। चिनमि यह। अवहारणभीरुअ पुणो वेवइ दे हिअअ" राजा लक्ष्मणसिंह जो ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है "छन्द तो बना दूगा परन्तु मेरा हृदय कापता है कि कहीं वह पत्र को लौटाकर मेरा अपमान न कर दे। राजा साहब का यह पत्र का लौटान वाला आशय स्वय की सूझ है कालिदास की नहीं।

'हमको तजै वनै फिरि प्रानै' पद–योजना नवाज का उद्भावना है–भाव परम्परित है। यह पद शकुंतला के राग की दृढता के साथ साथ शास्त्रोक्त पूर्वरागान्तर्गत 'मरण' का भी द्योतक है। लाज को छोड कर बचारी स्वय प्रणय निवेदन भी करे और फिर तिरस्कृत हो तो मर जाने के अलावा और चारा भी क्या है? ऐसी परिस्थिति मे आपन मुग्धा-नायिका की मनोदशा का यह यथार्थ अकन है अन्तिम पद न सच्चाई का और अधिक जामगा दिया है। डा० मैथिलीशरण गुप्त ने इस स्थिति का चित्रण अपने काव्य 'शकुन्तला' मे नहीं किया है।

चौपाई– सकुंतला यह डर मन कीन्हो। अनसूया फिरि उत्तर दीन्हा॥
सकुंतला तैं क्या बौरानी। अनमिल कहन[1] कहा है बानी॥
देखि आपने घर धन[2] आवत। कोऊ कहूं कपाट[3] देवावत॥
सीतल किरिनि चंद[4] की लागें[5]। कौन ओट दय राखत आगें॥
जतनी कामें[6] सूरगता है। तै ज्यहि चहै सो ताहि न चाहै॥(1)
लानि तिहारी जो नृप जानै। धन्य भाग[7] अपना[8] करि मानै॥
कागद कलम दुवा इतित है नहिं[9]। सुनो श्रवण दै मेरे वयनहिं[10]॥
भली भली करि मन मे बातनि। नृप सो लिखौ कमल के पातनि॥७८॥

दोहा– सुनि मै बैन सकुंतला सुधि जिय म ठहराइ।
पाती पंकज पात की नृप सो लिखी बनाइ॥ ७९॥
पाती लिखि फिरि सखिन सो सकुंतला मुख[11] चाहि।
कहन लगी तुम सुनहु यह लिखत बनी की नाहि॥ ८०॥

१ कहति (AB)　२ धनु (AB)　३ केवार (AB)　४ चौन (A)
५ के लागे (AB)　६ इती कौन मे (AB)　७ भाग्य (B)
८ अपने (AB)　९ दुवालिहु नाहीं (AB)　१० मेरी बाहौ (AB) ११ मुखु (A)

1–ये तीना ही चौपाइया अभिज्ञान शाकुंतल के निम्न अंशा का रूपांतर है —
लभेत वा प्रार्थयिता न नवा श्रियं,
श्रिया दुराप कथमीप्सितो भवेत्? ॥३।११॥

सख्यौ–अत्तगुणावमाणिणि। को दाणिं सरीरणिव्वावत्तिअं सारन्ति जासिणि पडतेण वारेदि?

अंतर केवल इतना है कि "लक्ष्मी चाहने वाले को भले ही लक्ष्मी मिले या न मिले, परन्तु जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह उसे न मिले यह कैसे हो सकता है' वाला प्रथम अंश कवि कालिदास ने जहाँ दुष्यंत के हृदय में उठती हुई भाव तरंगा के रूप म चित्रित किया है वहाँ नेवाज ने सखिया के द्वारा स्पष्ट कहलवा दिया है। सखियो द्वारा प्रस्तुत यह कथन शकुंतला को उसकी प्रेम और रूप शक्ति का भी स्मरण दिलाता है। प्रच्छन्न रूप से सखिया उसकी प्रशसा भी करती है। सखीकर्म मण्डन' भी हैं उसी के अंतर्गत प्रियम्वदा और अनुसूया का यह कार्य शुद्ध है। मनोवैज्ञानिक और नाटकीय दृष्टि से भी कालिदास की अपेक्षा नेवाज की यह स्पष्ट अभिव्यंजना अधिक प्रभावशाली है।

दूसरा अंश दोनो ही ने सखियो से कहलवाया है। नवाज की तृतीय चौपाई अत्यंत प्रचलित वाक्यावलि का काव्य रूप है।

चौपाई–सपी सुनत लागी दय कानन। सकुंतला फिरि बोली[1] आनन ॥८१॥
सोरठा– कीजै कौन उपाय दया तिहारे है नहीं।
मनु[2] लै गये[3] चुराय[4] फेरि देखाई देत नहीं ॥ ८२ ॥
कोमल सब अंग अंग रचे[5] विरंचि विचारि कै।
निरदय निपट कठोर मनु काहे ते व्है गयो ॥ ८३ ॥ (1)

१ तब बोल्यो (AB) २ मन (B) ३ गयो (A) गयौ (B) ४ चोराय (B) चुराइ (A)
५ रच (A) —इसी स्थल पर A प्रति म एक सोरठा और है —
लखे तिहारे अंग, जा दिन तें हम नजर भरि।
निस दिन हम अनग, ता दिन तें दाहत रहत ॥

1–महाभारत और पद्मपुराण मे वर्णित शाकुन्तलोपाख्यान मे यह मन्न–लेख का प्रसग नही है। महाभारतीय शाकुन्तलोपाख्यान तथ्यो की सुदृढ आधार शिला पर अधिष्ठित है उसम यथार्थ का अश बहुल और कल्पना का पुट कम है। यही कारण है कि उसम शकुन्तला और दुष्यन्त का जो चरित्र चित्रित है वह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का सही रूप प्रस्तुत करता है। अभिज्ञान–शाकुन्तल के प्रणेता कविराट कालिदास ने इस उपाख्यान–कलेवर को कल्पना के अंगराग से मण्डित किया। नवीन प्रसगो की अवतारणा की, नवीन–चरित्रो और नवीन वातावरण का सृजन किया। कालिदासोत्तर शाकुन्तलोपाख्यानकार महाकवि म इतने अधिक प्रभावित रहे कि उनके प्रसगो को बिना किसी नु–नच के ज्यो का त्यो अपनाते रहें यहा तक कि उनकी मनोवैज्ञानिक और सामयिक परीक्षा भी न की। प्रस्तुत प्रसग इसी परम्परा का प्रतीक है।

यो तो सृष्टि के आदि मे नारी सकोचशीला और लज्जाविमण्डिता है तथापि सभ्यता के विकास के साथ–साथ उसमे इन प्रवृत्तियो का विकास तीव्रगति से हुआ है हाँ, अग्रज चष्टाओ के द्वारा भले ही मनोगत भावनाओ को अभिव्यक्त करने की कला मे वह और अधिक पटु हो गई है। नारीरिक (Biological), सामाजिक, धार्मिक, सभी दृष्टियो से नारी प्रणय–व्यापार म निष्क्रिय (Passive) रहती है। सदैव पुरुष ही को पहल (initiative) करनी होती है। फ्रास की सुप्रसिद्ध मनोविज्ञान वेत्ता श्रीमती सिमौन डी बोवायर (Simone de Beauvoir) ने इस शाश्वत सत्य की ओर अपनी पुस्तक Second Sex मे स्पष्ट संकेत किया है —

Feminine sex desire is the soft throbbing of a mollusc Where as man is impetuous woman is only impatient, her expectaion can become ardent without ceasing to be passive man dives upon his prey like the eagle and the hawk, woman lies in wait like a carnivorous plant, the bog, in which insects and children are swallowed up She is absorption,

चौपाई– सकुंतला यह सपिन सुनाया। राजा निकसि द्रुमन ते आयो॥
निकसि द्रुमन ते दरसन दीन्हा। सकुंतला सो ऊतर कीन्हो ॥८४॥

suction, humus, pitch and glue, a passive influx, insinuating and viscous, thus, at last, she vaguely feels herself to be Hence it is that there is in her not only resistance to the subjugating intentions of the male, but also conflict within herself To the taboos and inhibitions contributed by her education and by society are added feelings of disgust and denial coming from the erotic experience itself

नारी प्रणय–रति म सत्व ही कर्म (object) रही है उस कर्ता (Subject) बनने का अवसर कभी नहीं मिला है–या कामशास्त्र के रचयिताओं ने भले ही नायक को नायिका और नायिका को नायक चित्रित कर दिया हो। साहित्यकार भी नारी की इस कर्म–प्रधान अवस्था से अनभिज्ञ नहीं है। रतिभीता, मुग्धा आदि नायिकाएं और कुट्टमित आदि भाव इसी तत्व के द्योतक है। नायिका की 'नाही–नाही' तो काव्या–गराग मे प्रमाणित भी होती रही है–अस्तु। कवि कालिदास का मात्र दुष्यन्त के चरित्र को निष्कलक बनाने या नाटक मे रमणीयता उत्पन्न करने के उद्देश्य से इस प्रसग की इस प्रकार अवतारणा करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समीचीन नहीं है। शकुंतला कण्व ऋषि के आश्रम के पुनीत निष्कलक वातावरण म पली एक तापस–बाला है वह मुग्धा है तथापि प्रणय–जगत के नियमो से सर्वथा अनभिज्ञ है। भला, एक प्रौढा नायिका की भांति प्रणय निवेदन का साहस कैसे कर सकती है ? इसके अतिरिक्त शकुंतला का यह प्रणय निवेदन उसके सात्विक चरित्र को भी कलकित करता है। ऐसा कथन वे ही नायिकाएँ कर सकती है। जो कामज्वर से ग्रस्त हो मर्यादा और शील का भी उल्लघन करने का साहस रखती हो मदन दाह स तापित हो उत्कट रत्यभिलाप से प्रेरित हो नारी–सुलभ लज्जा और सकोच का भी हनन करने का साहस रखती हो। शकुंतला का चित्रित चरित्र किसी भी प्रकार उस ऐसी दुःसाहसी और लज्जा विहीना सिद्ध नहीं करता। अत कालिदास की एतद् प्रसग अवतारणा सर्वथा असगत और मनोविज्ञान के प्रतिकूल है। आश्चर्य है कि उनके बाद के शकुंतला की कहानी के रचयिताओं न कैसे इस प्रसग को अपना लिया। कवि नवाज न भी महाकवि कालिदास का इस प्रसग की अवतारणा में अनुकरण किया है।

अद्यावधि प्राप्त शाकुंतलोपाख्यान के आधार पर लिखे गए काव्यों म उपलब्ध 'मदन लेख' अवलोकनार्थ यहा अवतरित है —

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवावि रत्तिम्मि।
णिग्घिण ! तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं ॥३।१३॥ अभि० शाकु०

सोरठा– निसि दिन रहत अचेन घर जैबो भारु भयो।
　　येरु तिहारे हेत हमहू बनवासी ह्वै ॥८५॥ (1)

दोहा–तो मन की जानति नहीं यहां मोत वे पीर।
　　पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर॥

सोरठा–लाग्यो तोसों नेह रैन दिना कल ना परे।
　　काम तपावत देह अभिलाषा तुहि मिलन की॥ श० ना०, पृ० ५३॥

कालिदास ग्रंथावली के विद्वमण्डल ने इस आर्या का पद्यानुवाद इस प्रकार किया है —

　　हे निर्दय! मैं नहीं जानती, तेरे मन की माया॥
　　पर तेरे ही प्रेम-पाश में पड़ कर यह फल पाया॥
　　कामदेव दिन रात तपाता मेरी कोमल काया॥ पृ० ४६॥

डा० मैथिलीशरण गुप्त ने इस पद्य का प्रारूप यों रखा है —

　　प्रियवर! मैं तव हृदय की नहीं जानती बात।
　　सन्तापित करता मुझे कुसुमायुध दिन रात॥
　　　　कुसुमायुध दिन-रात ध्यान करता रहता है।
　　　　तव मिलनातुर देह दाह दुस्सह सहता है॥
　　विधु-वियोग में विमुद कुमुदिनी होती सत्वर,
　　पर विधु-मन की कौन जान सकता है प्रियवर॥ शकु० पृ० १८॥

कवि नेवाज का यह पद्य उक्त सभी पद्यों से भिन्न है। प्रसंग एक है किन्तु भाव भिन्न हैं। कालिदास प्रभृति अन्य कविगण जहां शकुन्तला के द्वारा उसके स्वगत सन्ताप और मदन-दाह की अभिव्यक्ति को प्राधान्य देते हैं और इस प्रकार दुष्यन्त के हृदय में करुणोत्पादन की चेष्टा करते प्रतीत होते हैं वहाँ नेवाज नायिका के द्वारा उपालम्भ दिलवाते हैं मानो शकुन्तला दुष्यन्त के अनुराग को समझ कर उस पर अपना अधिकार सा अनुभव करने लगी है और इसीलिए उसकी निष्ठुरता पर यह उपालम्भ करती है। अप्रत्यक्ष रूप से दुष्यन्त की दैहिक सुन्दरता की ओर भी संकेत है साथ ही स्वमनोराग की भी अभिव्यक्ति है। व्यंजना के लिए उत्कट 'ललक' भी अभिव्यंजित है। भाव और प्रभावशालीनता की दृष्टि से कवि नेवाज का यह उपालम्भवेष्ठित पद्य श्रेष्ठ है। भाषा का प्रभावत्व भी दृष्टव्य है। घनानंद में भी लगभग ऐसी ही भावाभिव्यंजना उपलब्ध है। राधा के मान के सम्बन्ध में उनकी यह उक्ति देखिए–

　　"मोहन तें मन कावरो है यह बात न जानति कैसे कठोर है"

–नेवाज की शकुन्तला के 'मदन-पत्र' में उपालम्भ विशेष है जबकि कालिदास प्रभृति कवियों द्वारा प्रस्तुत पत्र में शकुन्तलागत काम-ताप की अभिव्यक्ति प्रधान है अतः नाटकीय सम्वाद की दृष्टि से दुष्यन्त का अपने मन की भावुकता प्रेमातिशयता आदि मनोविकारों का व्यक्त करना ही संगत है इसीलिए सम्भवतः नेवाज ने कालिदास के कथन का अनुकरण नहीं किया है। उनका कथन स्वतन्त्र है, यद्यपि कालिदास का एतत्सम्बन्धी श्लोक अत्यन्त भावपूर्ण और सप्रयोजन है तथापि पूर्वप्रसंग भिन्न होने के

चौपाई- यो कहि नृपति निकट चलि आयो । देषि सषिन अति ही सुष पायो ॥८६॥
दोहा- लागन उठी सकु तला आदर[1] करिवे काज ।
छीन अ ग अति देषि कै यो वोल्यो महराज ॥८७॥

चपौाई- अति ही दुरबल[2] देह तिहारी । माफ तुम्हैं ताजीम (1) हमारी ॥
देषि दुसह यह दाह[3] तिहारो । मन मलीन व्है गयो हमारो ॥
बैठी[4] रहौ गहै हम नारी । करै उतायल जतन तिहारी ॥
हियो गयो भरि आनद अति सो । प्रियवदा वोली छितिपति सो ॥
भले आजु तुम औसर आये । जिय के सब दुष[5] आनि मिटाये ॥
तुम से वैद पवरि अब लै ह[7] । सकु तला को दाहु न रैहै ॥

१ आदर (AB) २ दुबल (A) ३ दसा (A) दु प (B) ४ पौढ़ि (AB) ५ औसर (B)
६ तुम सिगरे दुप (AB) ७ तुम सों दुष वेगि बिलहै (A) तुम सों व दुप वेगि बिलहै (B)

कारण वह नवाज को ग्रहणीय नही रहा । कालिदास क श्लोक तथा अय कायकारो क पदो से प्रस्तुत ाहे की तुलना कीजिए —

तपति तनुगात्रि । मदनस्त्वामनिश मा पुनदहत्येद ।
ग्लपयति यथा शशाङ्क न तथा हि कुमुद्वती दिवस ॥३।१४॥ अ० शा०॥
केवल तोहि तपावहि मदन अहो सुकुमारि ।
भसम करत पै मो हियो तू चित दखि विचारि ॥ शकु०ना०पृ० ५३॥

सारठा

भानु मद कर दत केवल गधि कमानिनिहि ।
प शशिमडल स्वत होत प्रात कै दरस तें ॥ शकु० ना० पृ० ५४।७०॥
देता है कृशतनु ! तुझ ताप मात्र ही काम ।
किन्तु भसम करता मुझ निशिदिन आठो याम ॥
निशिदिन आठो याम काम है मुझे जलाता,
दहन दु ख अनुभवी तदपि वह दया न लाता ।
कुमुद्वती का दिवस हास्य ही हर लेता है ।
पर विधु को वह नाम शेष-सा कर देता है ॥ शकु० पृ० १६॥

वस्तुत कविराट कालिदास क श्लोक म साहित्यिकता और काव्य-रस विशेष है । कुमुदिनी और चन्द्रमा के उदाहरण देकर ताप की तीव्रता का बोध भी सुदरता से कराया है । नेवाज के दाहे म काव्यात्मकता आर रस का अभाव है हाँ प्रसादत्व और व्यावहारिकता मुखर है । सरलतम शैली म, स्वाभाविक रीति से दुष्यन्त की सतत अवस्था स्पष्ट की गई है ।

1-अरबी का शब्द है अर्थ होता है-आदर, सत्कार, सम्मान, इज्जत, प्रणाम, तस्लीम ।
—उर्दू-हिन्दी शब्द कोष, पृ० २६३ ।

चौपाई– बैठो निकट गहो अब नारी। लपै वैदई[1] आजु तिहारी ॥८८॥ (1)

दोहा– यो सुनि तव मुसकाय नृप, बैठ्यो वाही ठौर।
रही लजाय सकुतला ऽ, निरषि[2] सषिन की ओर॥ ८९॥

चौपाई–प्रीति समान दुहुन की तौली। अनसूया फिरि नप सन[3] बोली॥
येक बात ते है हम डरती। ताते यह अब विनती करती॥
राजा के होती वहु नारी। जरै सौति दारहु[4] की जारी॥
तुम सो कछू[5] निरादर व्है हैं। सकुतला तुरतहि ज्यो र्व्यहै[6]॥
अनसूया कहि वचन चुपानी। कही महीपति फिरि यह बानी॥
तुम हू अवलगि मोहि न जायो। मय वनाय या[7] हाथ बिका यो॥
जे घर मे तिय[8] है बहुतेरी। कनु सुता[9] की ते सब चेरी॥
कनु सुता[10] यह सपी तिहारी। मोहि लगत[11] प्रानन ते प्यारी॥
जब ते यहि भरि दृष्टि[12] निहारी। तब ते सुधि बुधि सबै बिसारी॥
मोहि कछू अब घर जु सुहानो। मय का अब लगि घरे न जानो[13]॥
मुनि की सुता[14] मोहि नहि वरि है। अपनो मोहि दास तो करि है॥
सकुतला बिन घरे न जैहौ। सकुतला को दास कहै हौ॥ (2)
कही बात राजा प्रति नीकी। निसा भई सपियन के जी की॥९०॥

---

१ वदको (A) २ लपति (B) ३ सा ४ सौतियाडाह (A) सौतियादाह (B) इसके बाद एक चौपाई प्रति AB मे और है—माइ न बाप कुटुम्ब न भाई। सकुतला विधि दुषिन वाई॥ ५ जु (AB) ६ सकुतला फिरि नियति न रहे (A) सकुतला तव जियत न रहै (B) ७ सकुतला के (A) ८ ते (B) ९ सकुतला (AB) १० सकुतला (AB) ११ लगति (AB) १२ डीठि (B) १३ मोहि न कछु घर लगे सुहानों। मैं अबलों कछु घर न जानो॥ (AB) १४ सकुतला जो (AB)।

1–यद्यपि इस चौंपाई मे भी शकुन्तला के काम–सताप की व्यजना और उसके शमनार्थ राजा से प्रार्थना है तथापि कालिदास के शाकुतल में यह सर्वथा प्रणयामन्त्रण बन गई है। सखियाँ स्पष्ट ही राजा से शकुन्तला की कामातुरता की शान्ति के लिए याचना करती है। यथा —

प्रियवदा–तेण हि इम णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इम अवत्थतर भअवता मअणेण आरोविदा। ता अरहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदु [अभि० शाकु० पृ० २३४]

प्रियम्वदा–हमारी इस प्यारी सखी को कदर्प बली ने तुम्हारी लगन मे इस दशा को पहुँचा दिया, अब तुम्ही इस योग्य हो कि कृपा करके इसके प्राण रक्खो। [शकु०ना० पृ० ५५]

नेवाज की इस चौपाई मे 'नारी' और 'वैदई' शब्दो की श्लेषात्मकता भी द्रष्टव्य है। वैद्य पक्ष मे–बैठ कर, नाडी पकडकर बीमारी देखो–अर्थ होगा और नायक–नायिका प्रणय पक्ष मे, अब बैठो और स्त्री को ग्रहण करो–देखें तुम कितने जानकार हो–ऐसा अर्थ होगा।

2–अभिज्ञान–शाकुतल और शकुन्तला नाटक के रचयिताओ ने इस स्थल पर भी दुष्यन्त

दोहा–विहसि सखिन[१] की ओर लखि सकुंतला को गात ।
अनसूया सो कहि उठी प्रियवदा यह बात ।। ६१।।

प्रति A मे एक दोहा और है — धक धक डर तन कटाक्ति, जड सब अग सुभाउ ।
सकुतला को बास मैं, उपजो स्वाति को माउ ।।

१ नृपति(AB)

का राजोचित–गौरव से आवृत हो रखा है । बली वर्दई के साम्राज्य मे पहुँच कर वह दीन नहा बनना । सम्भवत कालिदास नही चाहते थे कि उनका नायक किसी अन्य पात्र के समक्ष नत हो–यह भी हो सकता है कि तत्कालीन राजन्य एव इतना अधिक उन्नत हो कि यकायक कोई भी उसके विनत होने की कल्पना न सकता हो । नेवाज का नायक यद्यपि परम्परित शाकुन्तलोपाख्यान का दुष्यन्त है त उसमे राजत्व नही प्रत्युत् सामान्य नागरिकत्व विशेषतया मुखर है उसका आच प्रागानुरागी सामान्य प्रेमी की भाति है । कविराट के कथन से तुलना करने पर धारणा और अधिक स्पष्ट हो जायेगी —

राजा—भद्रे । कि बहुना—
परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररसना चार्वी सखी च युवयारियम् ।। ३।१७।।
दुष्यन्त—हे सुन्दरी, अधिक क्या कहूँ —
दोहा—हाय बडे रनवास मम द्वै कुलभूषन नारि ।
सागर रसना बसुमती अरु यह सखी तुम्हारि ।। शकु० ना० ७३।।

कालिदास का नायक भी शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि नेवाज के नायक ही भाँति दक्षिण–अनुकूल है तथापि उसमे गौरव और बडप्पन का प्राचुर्य होने के कार अनुकूलत्व प्रच्छन्न हो गया है । दुष्यन्त के कई रानियाँ थीं जैसा कि उसने स्वय माना और वह उन सभी से समान–प्रीति करता था वह वचन–क्रिया मे चतुर भी था शुद्ध दक्षिण नायक है । भिखारीदास जी के शृगार–निर्णय मे दक्षिण–नायक का लक्ष इस प्रकार दिया हुआ है —बहु नारिन को रसिक प सब सा प्रीति समान ।
वचन क्रिया मे अति चतुर दक्षिन लच्छन जान ।।१६।६

किन्तु इस स्थल पर वह की ओर न जा कर 'एक' पर आ टिका है । बच चातुरी से शकुतला और उसकी सखियाँ का भी स्वानुरक्ति और निष्ठा का विश्व दिलाना चाहता है ठीक उसी प्रकार जैसे शृगार–निर्णय का अनुकूल–नायक —

तो बिन राग औ रग वृथा तुव अग अनग की फौजन की सो ।
आनन आनँदखानि की सौं मुसुकानि सुधारस भौजन की सौं ।
दास के प्रान की प्यारी तू यहि तेरे करेरे उरोजन की सौं ।
ना बिन जीवो न जीवो प्रिया यहि तेरे ही नैन–सरोजन की सौं ।।१५।६१।।

इतना ही नहीं यहाँ तो शकुतला के बिना घर न जाने का सकल्प और उसके द्वार पर रहने का निश्चय भी कर लिया गया है । अत अनुकूल नायकत्व स्पष्ट है

सोरठा–भूखो यह मृगबाल ढूढत है निज माय को।
चलहु सखी उठि हाल दीजै वाहि[1] मिलाय सव[2] ॥६२॥ (1)

चौपाई–चली सखी दोऊ छल [3]करि कै। सकुंतला बोली तव[4] डरि कै॥

१ तिनहि (AB) २ अब (AB) ३ छलु (B) ४ इमि (B)

1–यायावरीय मतानुसार लौकिक अर्थ दो प्रकार के होते हैं—प्राकृत और व्युत्पन्न—लौकिकस्तु द्विधा प्राकृता व्युत्पन्नश्च। व्युत्पन्न अर्थ भी दो प्रकार का होता है। समस्त-जन-जन्य और कतिपय-जन-जन्य। द्वितीय के अन्तर्गत किसी देशनिवासी समस्त पुरुषों के साधारण व्यवहार और उनकी प्रतिभा से निष्पन्न तात्कालिक व्यवहार माने है। प्रस्तुत स्थल पर इसी कतिपय जन-जन्य अर्थ का आश्रय लिया गया है। राजशेखर ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है —

मिथ्यामीलन्नयनपक्ष्मणि वनस्यन्त कुरङ्गीदृशो
दीर्घापाङ्गसरित्तरङ्गतरले तल्पामुखं चक्षुषि।
पत्यु कलिमत कथा विरमयन्त्यो यत्कण्डूयनात्
कोऽप्य व्याहरतीत्युदीर्य निरगात्स्याजमालीजन ॥

—काव्य मीमासा पृ०९७॥

यहा कतिपय सखियां द्वारा सामयिक अर्थ का उद्भावन किया गया है। सखियां, यह देखकर कि नायिका पलकों के झूठे निमीलन के द्वारा नींद का बहाना करके बार–बार पलंग की ओर देख रही है, परस्पर इंगित करती हैं और 'देखो, कोई बुला रहा है'—ऐसा कह कर चली जाती हैं।

कविसम्राट कालिदास ने भी इस स्थल पर ऐसे ही सामयिक लौकिक अर्थ की उद्भावना की है और सखियां के द्वारा हरिण शावक का उसकी माँ से मिलाने का झूठा बहाना करवाया है। यथा —

प्रियंवदा—(सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए! जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि संजोएम णं।

प्रियंवदा—(अनसूया की ओर देखकर)–हे अनसूया, देख, इधर दीठि किए हुए हरिणी का बच्चा कैसा अपनी मा को ढूँढता फिरता है चलो, उसे मिला दें। —शकु० ना०, पृ० ५६ ॥

नवाज ने भी यद्यपि इसी प्रकार सामयिक लौकिक अर्थ का आश्रय लिया है तथापि 'भूखो यह मृग बाल' कहकर अप्रत्यक्ष रूप से दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रीति-क्षुधा और तत्शमनार्थ सुअवसर की ओर भी संकेत कर दिया है।

चौपाई–दैयहु[1] को तुम नाहि डराती। मोहि कहा तुम छाडे जाती॥
घरिकु[2] रहौ पिय पास अकेली। यो कहि कै टरि गई सहेली॥
सकुंतला तब उठी अकम[3] कै। राजा[4] गही बाह तब हसि कै॥
दिन दुपहर यह तपत अनैसो। दाह[5] तिहारे तन[6] मे अैसो॥
अैसो ठौर कहू न पै हो। सीतल छाह छोडि कित[7] जैहौ॥
मोसे सेवक निकट तिहारे। कहा सपिन के होत सिधारे॥
सपियन की अब सुध मति लीजे। जो कछु कहौ टहल सो कीजै॥
कहौ अगर चदन घसि लावा[8]। कहौ जु सीतल पौन[9] डुलावौं[10]॥
यो कहि नरपति करी ढिठाई। कर गहि सकुंतला बैठाई॥
धक धक छतिया लागी डोलन। सकुंतला फिरि लागी बालन॥
महाराज यह उचित नही है। कहा हमारी[11] बाह गही है॥
अब लौ तुम हमसो नहि ब्याहे। हम कलक लगावत काहे[12] (1)।
सकुंतला या भाति[13] डेरानी। बाल्या फेरि महीपति बानी॥९३॥

---

१ दयहु (AB) २ घरिक (A) ३ अकसि (AB) ४ राज (B)
५ दाहु (AB) ६ उर (B) ७ कँह (AB)

——इससे अगली चौपाई के बाद प्रति AB मे एक चौपाई और है —

तुम कहँ ये कहँ सौंपि सिधारी। ये दोऊ प्रिय सखी तिहारी॥

८ ल्याउँ (A) लाव (B) ९ बाउ (B) १० डोलाऊ (A) डोलाव (B)
११ हमारो (A) १२ अब तो तुम हम सो नहि ब्याहे। हँम कलक चढावत काहे (B)
——ऊपर की चौपाइ और इस चौपाई के बीच म प्रति B म तीन चौपाइयां और हैं –

आपु हमारो है घर नाहीं। अरु अबलों हम हैं बिनु ब्याही॥
और ब्याह हम नहि अभिलाष्यो। हम तुम कों मन म धरि राष्यो॥
आपु हमारो जब घर ए हैं। तुमको हमैं ब्याहि तब दहै॥

१३ एहि भांति (A) क्यों (B)

1–महाभारतीय उपाख्यान म शकुन्तला एक अभीता प्रगल्भा–नारी क रूप म चित्रित की गई है। दुष्यन्त का विवाह प्रस्ताव सुन कर प्रथम तो वह भी पिता कण्व क लौट आन तक प्रतीक्षा करन को कहती है किन्तु अन्त म गान्धर्व विवाह क लिए तैयार हो जाती है और शर्त रखती है कि —

सत्य मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः।
मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरम्।
युवराजो महाराज! सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यद्येतदेवं दुष्यन्त! अस्तु मे सङ्गमस्त्वया॥

दाहा– कत्रारो केना नृप सुना करि गवर्व[1] (1) विवाह ।
गई न्याहि वन्ध पाई कै तिनको हान सराह ।।६४।।
गहा वाह ग्रब ग्राजु तै तुम प्यारो हम नाह ।
हमै तुम्है या ठार ग्रब[2] भा गवर्व[3] विवाह ।। ६५।।

चापाई–मुनि का डरु न कछू मन ग्रानो । वह मुनिवर है बडो[4] सयानो ।।
तारथ न्हाय जबै वह[5] ग्रैहै । यह सुनि कै वहुतै सुख पै है ।।
जब लगि बात कहो नृप ग्रैतो । करो काम केनो[6] कमनैती [7] ।।
सकुन्तला लाज[8] भरि ग्राई । गहि कर नृपवर गरे लगाई ।।

१ गधरव (AB) २ मे (A) मैं (B) ३ गधरप (AB) ४ निपट (AB)
५ घर (A) मुनि (B) ६ केतीक (A) ७ मनैती (AB) ८ लाजहि (AB)

कालिदास की शकुन्तला गुरुजन–भीता है । उसके हृदय म प्रिय–सगम की चाह ता है किन्तु गुरुजनाधान हान क कारण उसका पूर्ति के लिए स्वतन्त्र नही है । उसके वचन स्वत हा प्रमाण हैं —

शकुन्तला—पौरव । रक्ख ग्रविगुप्र । मग्रणसतताबि ण हु ग्रत्तणो पहवामि ।
शकुन्तला—हे पुरुवशी नोति का पालन करो । मदन को सताई हुई भी मैं स्वतन्त्र नहा हू । —शकु० ना०, पृ० ५७ ।

भिखारीदास के ग्रनुसार गुरुजन–भाता नायिका का लक्षण इस प्रकार है —

वमत–नयन–पुतरीन मे मोहन–बदन–मयक ।
उर दुरजन ह्वै ग्रडि रहा गुर गुरजन का सक ।।६३।।
—रस साराश पृ० १२ ।

नवाज का शकुतला गुरुजन भीता ता है ही, साथ हा धर्म ग्रौर समाज के नियमा से भी भयभात है । वह जानती है कि दुरा का इस प्रकार पर पुरुष स मिलन कलङ्क का जनक हाता है । इसके ग्रतिरिक्त 'धक धक छतिया लागी डोलन' काव्याश उसके ग्रनूढात्व की ग्रार भा सकेत करता है वह मुग्धा ह–रतिभीता । रस–साराश ही म दिए गए एतद्सम्बन्धी उदाहरण का भी देखिए —

स्याम–सक पकज मुखी चकै निरखि निसि–रग ।
चौंकि भजे निज छाह तकि तज न गुरुजन सग ।।३४।७।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की नायिका 'सकुन्तला' इस समय तक गुरुजन–भीता, धर्म–समाज सभीता, रति–भीता ग्रौर ग्रनूढा है ।

1–शुद्ध रूप 'गान्धर्व'–शास्त्रानुसार ग्राठ प्रकार के विवाह होते हैं ब्राह्मण, दैव, ग्रार्ष, प्राजापत्य ग्रसुर, गान्धर्व, राक्षस ग्रौर पैशाच । गान्धर्व विवाह का लक्षण है—
'सकामाया सकामेन निमन्त्रो रहसि स्मृत सरस्पर्शस्तु गान्धर्व ''

चौपाई–करसो गहि नृप छतिया मसकी । सकुंतला¹ लीन्ही तब ससकी ॥ (1)

१ सकुंतल (B)

1–रत्न दीपिका मे 'सीत्कृत' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है —

यूनो प्रहणनाज्जात पीडा व्यतिकृते भवत् ।
गलादिजातो य शब्द विशेषरतद्धि सीत्कृतम् ॥

सुरत–क्रीडा म इस 'ससकी' का महत्व यथेष्ट है । कामशास्त्रियो न तो इसके भेदोपभेद भी बताए हैं । यथा —

अथ सीत्कृत भेदास्तु पचवक्ष्यमनोज्ञवे
हिंकृत स्तनितं सीत्कृतं हूत्कृतं फूत्कृतं तथा ।४४॥
उच्चारो मुखनाशाभ्यां हिंकृतस्माभिजायते
स्तनित मघगभीरघोषवत्स्यात्तत स्मृत । ।४५॥
सीत्कृततत्तुभुजगोच्छ्वासवत्स्यान्यात्कृत
वेणुविस्फोटनारा च तुल्यस्यान्यफूत्कृत ।४६॥
मेघ विद्युद्यथातोयेनिपतेत्तद्वाकृति
सीत्कृतस्येति पचय क्रमाद्भेदासमीरिता ।४७॥

—अनग–रग की हस्तलिखित प्रति स उद्धृत ।

इस प्रकार सुरतयोगोत्पन्न पच ध्वनियाँ ये है—हिंकृत, स्तनित सीत्कृत हूत्कृत और फूत्कृत । इन मे 'सीत्कृत' की महिमा अधिक है । रीतिकालीन कवियो ने भी इस ध्वनि का रसोत्कर्ष करने का अधिकाधिक यत्न किया है । बिहारी का नायक तो 'ककरीली' गल पर चलता ही इसलिए है कि नायिका 'सीबा' करती है और वह उस म सुरत–योगोत्पन्नवत् ध्वनि का आनन्द पाता है । यथा —

नाक चढे साबी करे जिते छबीली छैल ।
फिरि फिरि भूल उहै गहै पिय ककरीली गैल ॥

काम–शास्त्रियो के अनुसार भोग–काल म हिंकृतादि ध्वनियो का उद्भावन होता है । सीत्कृत ध्वनि विशेषत निम्न अवस्थाओ मे उत्पन्न होती है —

सुरतेऽशनेच्छदयदाप्रमन्या परिखड्यतभृश दयिते–
नद ददातिरागकृक्रियते सीत्कृतमजसातया ॥ अ ० र० ४६॥

अत प्रणय भीता व्रीडिता, कोमल–कान्ता मन्मथ–पीडिता शकुन्तला का राजा के द्वारा बाहुपाश मे आबद्ध किए जाने पर नाही–नाही' करना तथा उसके द्वारा आक्रान्त होने पर व्यथित–हर्षित होकर 'ससका' लेना स्वाभाविक है ।

चौपाई–चुम्बन कियो नृपति मन भायो। सकुन्तला मुत्र झझकि छुडायो[1] ॥
सीतल पवन मद वहि आयो। सघन छाह मे सुरत मचायो॥
राजा लग्यो अधर रस चुहके। सकु तला मोवल[2] सी[3] कुहके॥
दुपहर मे यो सुरति मचाई। बातै करत माझ ह्वै आई[4] ॥ (1)

१ छोडायो (A) २ कोयल (AB) ३ मम (B)
४ भरि दुपहरि यों सुरति मचायो। बातें करत साझ ह्व आयो॥

1–महाभारत और पद्मपुराण के शाकुन्तलापाख्याना मे इस प्रसग का सरस वर्णन नहा है—यद्यपि नायक और नायिका दाना ही के जावन का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण एव आकर्षक प्रसग है। कवि कालिदास ने भी केवल एक हा श्लाक दिया है वह भा चुम्बनादि की याचना म युक्त। महाकवि ने सम्भवत इस प्रसग के चित्रण मे अनुदारता इसलिए दिखाई है, कि वे दृश्य-काव्य लिख रहे थे और रग मच पर ऐसे दृश्या का अभिनय वर्ज्य है। नेवाज का प्रस्तुत ग्रन्थ यद्यपि 'नाटक' सज्ञक है तथापि वह पाठ्य काव्य है दृश्य काव्य नहीं। इसीलिए इस स्थल पर कालिदास की अपेक्षा नेवाज का वर्णन अधिक पूर्ण और सरस है। कालिदास का एतद् सम्बन्धी श्लाक इस प्रकार है —

> अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
> अधरस्य पिपासता मया ते सदय सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥३।२१॥

दोहा–ज्यो कोमल सद फूलतें मधुकर अवसर पाय।
मन्द मन्द मधु लेत है मन की तपति बुझाय ॥७६॥
तैस ही करिहैं जब मैं प्यारा सुखदान।
तेरे अधर अदून को सहज सहज रम पान ॥७७॥ शकु० ना० ॥

डॉ० मैथिलीशरण गुप्त ने ता दुष्यन्त के कई दिन तक शकु तला के साथ विहार करन की कल्पना की है, यथा "सुख और शान्ति के श्रेष्ठ भाव मिल मिल कर करते थे नित्य नवीन खेल मिल खिल कर॥ तथापि सुरत का वर्णन नहा किया है। बात यह है कि काव्य मे एस अश्लील चित्रो का अंकन करना समाज-कल्याणादि की दृष्टि मे कुछ लोगा की राय मे ठीक नहीं है उनका कथन है— *असभ्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेश्यव्य काव्यम्'* डा० साहब भी सम्भवत इसी विचार धारा के पोषक हैं।

रीतिकाल शृ गारपरक काव्य रचना क लिए प्रसिद्ध है। रीतिबद्ध कवि हो या रीतिमुक्त-उसे जहाँ कही शृ गारिक रचना का अवसर मिलता है वह चूकना नही चाहता। वैसे शृ गार का शाब्दिक अर्थ भी काम-वृद्धि की प्राप्ति है। शृङ्ग–कामार्द्रक और आर—गति (इस शब्द की व्युत्पत्ति ऋ धातु से है जिसका अर्थ है गमन) यहाँ प्राप्ति के अर्थ मे गृहीत है अत अर्थ होगा काम को प्रबुद्ध करने वाला बढ़ाने वाला।

चौपाई– दपि गौतमी को उठि धाई। दोऊ सपी[1] यहत[2] यह[3] धाई ॥
पिय की हरवर करी विदाई। पुफ गौतमी निकटहि[4] आई ॥
सकुंतला सुनि निपटि[5] डेरानी। पिय मा बात उठी यह बानी[6] ॥

१ सपिन (A) २ कहन (B) ३ यां (AB)
४ पहुंची (A) ५ चितहि (AB) ६ बोलि उठी नृप सा यों बानी (AB)

इतना ही नहीं शृंगार' रस राज भी है। महाराज भाज, कवि विद्याराम प्रभृति अनेक आचार्यों ने इसे समस्त रसों का मूल माना है। यथा —

अभिचार्यान्सिमान्यान्द्र गारइति गायते,
तद्भेदा काममितरे हास्याद्या अप्यनेकश: ।
—अग्निपुराण अ० ३४६।४,५ ॥

शृंगार रस के प्रधान दो भेद हैं—सम्भोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार। संयोग के बाद ही वियोग आता है अथवा यों कहें संयोगापरान्त ही वियोगशृंगार मे तीव्रता उत्पन्न होती है। संयोग से पूर्व जो अभिलाष प्राप्ति रहती है वह वस्तुत अयोगावस्था है वियोग नहीं। अत संयोगशृंगार भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना वियोग भले ही संयोग चित्रण में तथाकथित अश्लीलता आ जाय तो भी आवश्यक स्थलों पर उसका चित्रण अनुचित नहीं है जैसा कि राजशेखर का मत है —

प्रक्रमापन्नो निबन्धनीय एवायमर्थ इतना ही नहीं उसके अनुसार ऐसे अश्लील अर्थों का उल्लेख वेद और शास्त्रों में भी पाया जाता है। वस्तुत शुद्ध संयोग शृंगार का वर्णन तो बिना इस स्थिति के हो ही नहीं सकता। संयोग का अर्थ नायक नायिका की एकत्र स्थिति मात्र ही नहीं है क्योंकि समीप रहने पर भी मान आदि की अवस्था मे वियोग ही है। कवि विद्याराम के अनुसार सम्भोग शृंगार का लक्षण इस प्रकार है —

पादेन पादं च कर करेण संयोज्य कायेन मिथश्च कायम् ।
निपीडयन्तौ स्वतन्त्र युवानौ कुर्वात आत्मैक्यमिवैकचित्तौ ॥
—रसदीर्घिका द्वि० सो० । ७ ॥

अत नेवाज का यह सम्भोग-शृंगार का चित्र भले ही आदर्शवादियों द्वारा तिरस्कृत हो तथापि शास्त्र सम्मत और पूर्ण है। हां एक शंका है। दिवसकाल और उसमें भी दोपहर सुरत के लिए सामान्यत प्रचलित विश्वास के अनुसार सर्वथा वर्जित है। वैज्ञानिक और आयुर्वेद शास्त्री भी यत्र तत्र इसी विश्वास का प्रतिपादन करते हुए देखे जाते है। नेवाज ने यह 'सुरत रंग दुपहर में घटित कराया है कालिदास भी इसी वर्ग में है यथा दुपहर में या सुरत मचाई। बातें करत सांझ ह्वै आई' क्या कालिदास से प्रभावित होकर नेवाज ने यह अनुचित समय चुन लिया ? बात ऐसी नहीं है। कामशास्त्र के अनुसार नारियां चार प्रकार की होती हैं — पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी। प्रत्येक प्रकार की नारी के लिए 'अनंग रंग' रचयिता ने परम्परित

चौपाई– दुरहु द्रुमन मे प्रान पियारे। हम सो फेरि भय[1] तुम न्यारे॥
फुफ गौतमी अब इत ऐहै। कर गहि कुटी मोहि लै जैहै॥
इलते कहौ कहा तुम जैहौ। हमहि फेरि कब दरसन देहौ॥
हम कौ तौ तुम जियन न पैहो। हमै छाडि पाछे पछितैहौ[2]॥
ऐसी कछू निसानी दीजै। जाहि देपि मन धीरज कीजै॥
सकुतला यह वचन[3] सुनाये। नृप के नयन सजल व्है आये॥
तब नप पोलि[4] अगूठी दा ही[5]। मगु राना कर मो गहि लो ही[6]॥

---

१ भयो (B) २ नहीं बेगि जो दरसनु दहौ। हमे फरि तुम जियत न पहो॥ (AB)
३ बन (AB) ४ खालि (B) ५ लीनी (AB) ६ सकुतला के कर सों दीनी (AB)

सुरत तिथियो का निर्देश किया है। पद्मिनी नायिका व साथ सुरत का समय तदनुसार रात्रि नहा दिन है। यथा —

रजनीसुरतपु पद्मिनी न सुखयातिनिसगत क्वचित्
दिवसपिनिशो समागमाविकसत्यम्बुजिनी यथारव ॥ अ० र० १६॥

शकुतला नि सदेह पद्मिनी नारी रही होगी सम्भवत यही कारण है कि उसक सम्बन्ध मे कमल प्रसून का जिक्र बहुत अधिक आया है। अत नेवाज का यह समय-चयन दूषित नही है।

शकुन्तला मुग्धा-नवोढा है। नन्दास के अनुसार तो "जा पारन कहुँ कर थिर कर। सो नवाढ वाला उर धरै॥' यहा तो केवल झमकि और कायन सी कुहुक ही है। वास्तव मे रीतिकालीन कवियो का एतद्विषयक विश्वास भिखारीदास जी स मिलता हुआ प्रतीत होता है। वे तो नायिका की इन समस्त क्रियाओ का अर्थ हा उल्टा लेत हैं —

रूखी ह्वै जैवो पियूष वगारिबो बक बिलोकिबो आदरिबो है।
सोहैं दिआइबो गारी सुनाइबो प्रेम प्रससनि उच्चरिबो है।
लातनि मारिबो भारिबो बाह निसक ह्वै अकन को भरिबो है।
'दास नवेला की केलि मर्मे मे नहा नही कीबो हैंहाँ करिबो है॥
—शृ गार निर्णय २६८।१४८॥

इसके अतिरिक्त रसशास्त्रियो ने नारी क स्वभावज अलकारो के अतगत कुट्टमित' भाव को भी इसी ग्रथ मे माना है। साहित्य दर्पणकार ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है —

केशस्तनाधरादीना ग्रहे हर्षेऽपि सम्भ्रमात्।
आहु कुट्टमित नाम शिर करविधूननम् ॥१०३॥

इस प्रकार इस स्थल पर शकुन्तला के मुग्धा अनूढात्व का जहाँ प्रकाशन प्राप्त हुआ है वही 'शास्त्रोक्त कुट्टमित' भाव भी स्पष्ट हो गया है। वस्तुत यह चित्र परम्परा, नीति शास्त्र और रीति रिवाज इत्यादि की विभिन्न दृष्टियो से ठीक है।

चौपाई–आर यान नप बहुत न पाई। निपटहि निराट[1] गौतमी आई॥
चलत गौतमी का पग वाग्या। मुनि नृप दुरया द्रुमनि म भाग्या॥
सकुन्तला फिरि दुख भरि आई। पौढि रही जह सेज बिछाई॥
पूछन लगी गौतमी बानति। अब कछु घट्या दाह तुव गातनि॥
सकुन्तला यह बचन कह्यौ तब। कछुक बिसेष भया तब ते[2] अब॥
तब गहि सकुन्तला के कर का। ल्या ते चली गौतमी घर को॥
सकुन्तला निज आश्रम आई। नृप दुख सागर थाह न पाई॥
सकुन्तला सग जह सुख पाया। वाही ठौर फरि नृप आया॥
सूनी सेज कमल दल वारा। निरखि[3] भया नप क दुख भारी॥
विरह ताप चढ़ि आई[4] तन म। नप या सोचन लाग्या मन मे॥
कहा जाउ कैसे फल पाऊं। यह दुख कापे जाय[5] सुनाऊं[6]॥
अब धा कब फिरि दरसन पैहो। तब लौ यह दुख कैसे सैहो॥ (1)

---

१ निपट नजीक (AB)   –प्रति B और A मे यह चौपाई और है –
जब लौं तहाँ गौतमी आई। सकुन्तला गहि गरे लगाई॥
२ तो है (AB)   ३ देखि (B)   ४ आयो (AB)
५ जाहो काहि (B) ६ सुनावौं (B)—यह चौपाई AB प्रति मे और है –
ज्यो ज्यो लख सेज वह सूनी। त्यों त्यों बढ़ति पीर तन दूनी॥

1–मिलन क बाद ही पुन वियाग का आरम्भ हाता है। यथा —
मिलन होत कबहूँक छिनक बिछुरन होत सदाहि।
तिहि अंतर न दुखन का, विरह गुनो मन माहि॥२६३॥ —शृ० नि०॥

वियाग की स्थिति मे वे समस्त पदार्थ और व्यापार, जिनका सम्बन्ध किसी भी रूप मे प्रिया स रहा है याद आते हैं और यदि व सब पदार्थ सामने आ जावें तो उनके प्रति भी एक प्रकार का ममत्व उत्पन्न हो जाता है। कवि कालिदास ने इस मन स्थिति का चित्रण अत्यत सुन्दरता से किया है। राजा दुष्यन्त की हृदयगत परितप्त-व्यथा की व्यजना भली प्रकार हुई है।

तस्या पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामिय
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पित।
हस्ताद्भ्रष्टमिद बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तु सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि॥३।२३॥

सच ही है जब प्रियाउपभुक्त वस्तुओं को ही नहीं छोडा जा सकता तो फिर प्रिया का छोड कर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। राजा साहब का अनुवाद भी सुन्दर बन पड़ा है —

यह प्यारी की है सिल सय्या। गातन अंकित फूलन सय्या॥
प्रेमपत्र है यह कुम्हिलाना। नखतें लिख्यो कमल के पाता॥

मन मे यह नप सोच[1] बढायो। मुनिन महा वन सोर मचायो ॥
महाराज क्यो सुधि बिसराई। जित तित दानव देत देषाई ॥
देषत दानव[2] की परछाही। हमसो जज्ञ सकत ह्वै नाही[3] ॥
ऋषिन दीन यो[4] वचन सुनायो। तुरत वियोगी नृप उठि धायो ॥
हिय मे भयो विरह दुष[5] भारी। फेरि करन लाग्यो रषवारी ॥६६॥

॥इति श्री सुधा तरगिया सकुतला नाटक कथाया द्वितीय तरग[6] ॥

---

१ सोक (AB)   २ लषत दानवन (AB)
३ हम सो जज्ञ सब रहि जाहीं (B)   ४ यह (A) ये (B)   ५ अति (B)

६ इति श्री सुधा तरग सकुतला नाटक कथायां द्वितीयस्तरग समाप्त (A)

६ इति श्री सकुतला नाटक कथाया द्वितीयस्तरग (B)

यह मृनाल ककन है सोई। गिरयो प्रिया के कर तें जाई ॥
इनहि लखत मैं सकत न त्यागी। सूनिह्नु बेत कुज दुरभागी ॥७६॥

नेवाज का यह वर्णन कवि कालिदास ही की अनुकृति है उनके श्लोक और एतद्विषयक गद्याश ही के भाव यहा काव्य में निबद्ध हैं। प्रेम की व्याकुलता में प्राण उद्विग्न हो ही जाता है, उसे विश्व का वैभव तुच्छ और प्राकृतिक सौंदर्य निकृष्ट लगता ही हैं। वह कही भी चैन नही पाता, सोचता है कहा जाऊँ, क्या करूँ। जिगर मुरादाबादी ने इस स्थिति को बहुत अच्छी तरह व्यक्त किया है —

हाय वो आलम न पूछो इज्तिराबे-इश्क का।
यक ब-यक जिस वक्त कुछ-कुछ होश सा आ जाये है।
किस तरफ जाऊँ ? किधर देखूँ ? किसे आवाज दूँ ?
ऐ हुजूमे-नामुरादी ! जी बहुत घबराये है॥

तृतीय तरंग

चौपाई—पकरि गौनमो आश्रम लाई[१]। सकुन्तला सुधि बुधि बिसराई[२] ॥
सग[३] सपीनहु[४] को नहि भावे[५]। नैठि यकात[६] दृगनि[७] बरसावे ॥
विन देवे कल नेकु न पावे। घरी घरी ज्यों वरसि[८] वितावे ॥
सूनो सो सिगरो जग लेपन[९]। घरे ध्यान[१०] पिय मूरत[११] लेपत[१२] ॥ ९७॥

कवित्त[१३]—आई सुधि प्रीतम[१४] की भूली सुधि और[१५] सबै[१६]
कौन समुझावे न सहेली कोऊ साथ में[१७]।
अति ही दुपित[१८] शिरु[१९] नाय[२०] बैठो सूने गेह[२१]
नेह बस[२२] घरिके बदन बाये हाथ में ॥
चित्र कैसी[२३] लिपी नेकु डोलनि न बोलति न
विरह मोट घरि कै दीन्ही[२४] विधि माथ में।
सुनत[२५] न बात सूने ह्वै गए सकल गात
बैठी ध्यान कीन्हे मनु दीन्हे[२६] प्राननाथ में ॥ (1) ९८॥

---

१ आई (AB) २ पिया विरह की सही न जाई (AB)
—प्रथम और द्वितीय चौपाईयों के बीच मे AB प्रति में यह पक्ति और है —
'सकु तला सुधि बुधि बिसराई। कर उपास अन नहि पाई ॥'
३ सगु (B) ४ सपीजन (AB) ५ माव (AB) ६ इकत (A) वन्यिकल (B) ७ द्रगन (B)
८ वरस (A) बरसु (B) ९ लेपति (AB) १० ध्यान घरे (A) ११ मूरति (B)
१२ लेपति (AB)—इसके बाद A और B प्रति मे निम्न चौपाई और है —
आई सुधि पीतम की रति की। तब अंगुठी लपी नृपति की।
१३ घनाक्षरी (AB) १४ पीतम (B) १५ और (B) १६ सब (AB) १७ मे (AB)
१८ दुचित (AB) १९ सिर (AB) २० नाये (B) २१ सूने सदन मे (AB)
२२ बठी प्यारी (AB) २३ के सो (A) २४ दुपन की मोट धरो दीनि (AB)
२५ सुनति (AB) २६ दीन्हे (A) दीने (B)

1—महाराज दुष्यन्त के वियोग म नत संतप्त शकुन्तला का यह रूप चित्र कवि नेवाज ही ने अंकित किया है। कवि कालिदास न दुर्वासा के शाप के बाद सखिया द्वारा इस रूप की तनिक झलक मात्र दिखाई है। कविवर मैथिलीशरणजी ने यद्यपि इस रूप को चित्रित करने का यत्न किया है तथापि उनका मन तत्कालीन शाकुन्तल सौन्दर्य और चतुर्दिक व्याप्त प्राकृतिक वातावरण के चित्रण में इतना अधिक उलझ गया है कि वे शकुन्तला की

दुष्यन्त के ध्यान में अपनी अवस्था का सम्यक चित्राकन नहीं कर सके हैं यद्यपि यह चित्रण ही उनका प्रधान इष्ट था। इस सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ कही हैं —

शांति स्थान महान कण्व मुनि के पुण्याश्रमाद्यान म
बाह्यज्ञान विहीन, लीन अति ही दुष्यन्त के ध्यान में
बैठा मौन शकुन्तला सहज थी सौंदर्य स साहती
माना हो कर चित्र मे खचित-सी थी चित्र को मोहती॥

×   ×   ×

थे सर्वत्र विशाल नेत्र उसके दुष्यन्तका देखते
पाण्डुग्रस्त समस्तवस्तु जग मे ज्यो पात ही लेखते॥ —शकु० पृ० १९॥

महाकवि कालिदास भी इस सम्बन्ध मे केवल इतना ही कह कर मौन हो गए हैं —

प्रियम्वदा—(विलोक्य) अणसूए ! पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं पि एसा विभावेदि । किं उण आग्रतुअ ?   —अभि० शा०, ४।२९९॥

कवि नवाज द्वारा चित्रित एतद्सम्बन्धी चित्र उत्कृष्ट एव पूर्ण है। उसमे शास्त्रोक्त चितानुभाव भी स्पष्टत व्यजित है [हस्ते कपाल मालोल पथि चक्षुर्मनस्त्वयि] और शकुन्तला की हृदयगत तद्वत्ता भी मुखरित है। अद्वैत' तादात्म्य' या तथता' का कैसा अपूर्व दृष्टान्त है। सूर और विद्यापति की राधा कृष्ण के चिंतन मे कृष्णवत् हो कर राधा-राधा चिल्लाती है- अद्वैत नहीं होता दूसरे का ध्यान रहता ही है सम्भवत भक्ति मे द्वैत की भावना आवश्यक है। नेवाज की शकुन्तला इस चिंतन से भी ऊपर उठती है उसे सिवाय दुष्यन्त के और किसी का ध्यान नहीं, यहा तक कि अपना भी नहीं—भला दुर्वासा के आने की बात उसे क्या कर पता चलती। मनावैज्ञानिक रस दृष्टि भी शकुन्तला की इस स्थिति का अनुमोदन करती है। चिन्ता ही का उत्कृष्ट रूप जडता है—चिन्तानुभाव जब तीव्रतम हो जाता है तो जडता की स्थिति आ जाती है। भिखारी दास ने इस स्थिति का लक्षण इस प्रकार दिया है —

जडता मे सब आचरन, भूलि जात अनयास ।
तिमि निद्रा बातनि हँसनि भूख प्यास रस त्रास॥ शृं० नि०१६१।३२६॥

स्मृति' के बाद चिन्ता और 'चिन्ता के बाद विप्रलम्भ शृङ्गार मे 'जडता की स्थिति है। अत जहाँ आचरण का विस्मरण सहज है वहाँ शकुन्तला का दुर्वासा को आसनादि न देना क्षम्य ही होना चाहिए।

'निरु नाय बैठी' और 'विरह मोट धरि दीन्ही विधि माथ मैं' की सङ्गति भी द्रष्टव्य है। विधाता ने विरह की बोझिल गठरी बेचारी के मत्थे पर रख दी है कोमल-गाता, कबु ग्रीवा, शकुन्तला भला उसका बोझ कैसे सहे अत सिर झुक गया है। दूसरी ओर वियोगिनी के लिए अपेक्षित अनुभाव भी चित्रित हो गए हैं, छन्द की गति और शब्द-चयन भी प्रशस्य है।

चौपाई–सकु‍नला[1] यो मन अटकायो। मुनि[2] दुर्वासा (1) आश्रम आयो ॥ ९९॥

सवैया

पिय ध्यान मे बैठी सकुतला ही रिषि आय गयो अनचाहयो[2] चहयो[3]।
नही सासन बूझी न आसन दीन्यो न आदर मै कछु बोल कहयो[4]।
तब या दुरवासा[5] रिसाय कहयो जेहि को यहि भाति ते[6] ध्यान गहयो।
सुधि तेरो न सो करिहै कबहू यह साप[7] (2) सिताब (3) दे जात[8] रहयो॥१००॥

---

१ सकुतल (B) २ सुनि (A)
३ रिषि आइ क आपनो मान चहयो (A) रिषि आइ क आपनो प्रान चहयो (B)
४ नहि आसन बुझि क आसन दीनो, न आदर सा कछु बन कहयो (AB)
५ दुरवास (B) ६ तू (AB) ७ सापु (AB) ८ जातु (AB)

1–यह अत्रि–ऋषि के पुत्र और दत्तात्रेय के अनुज कहे जाते हैं। शिवाश से इनकी उत्पत्ति हुई थी ऐसा भी विश्वास किया जाता है। विष्णु-पुराण मे इन्ही के सम्बन्ध मे राजा अम्बरीष वाला उपाख्यान आता है जो इस प्रकार है—एक बार जबकि राजा अम्बरीष द्वादशी को व्रत का पारण करने वाला था दुर्वासा ऋषि आए। राजा ने उनका आदर सत्कार किया और भोजन के लिए आमन्त्रण दिया। ऋषि ने बात मान ली और स्नानादि से निवृत्त होने के लिए नदी तट पर चल गए–वहा उन्हे कुछ देर हो गई। इधर पारण का समय समाप्त होते देख कर राजा अम्बरीष ने जलमात्र से उपवास समाप्त कर लिया। वापस आने पर यह जानकर दुर्वासा बहुत अधिक क्रोधित हुए और उन्होने राजा के जला डालने के लिए एक ज्वाला प्रस्फुटित की कि तु विष्णुचक्र न उसे शात कर दिया और स्वय दुर्वासा की ओर मुडा। दुर्वासा भागे और ब्रह्मा, विष्णु महेश सभी से शरण मागी किन्तु सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। अन्तत भगवान् हरि ने उन्हे राय दी कि राजा अम्बरीष हो से क्षमा याचना करो तभी इस चक्र से मुक्ति सम्भव है अन्यथा नही। ऐसा करने हो पर इन्हे शाति मिली।

इसी प्रकार पृथा को देवता आह्वान के मन्त्रादि सिखाने की, दुर्योधन द्वारा इनके सहयोग से पाण्डवो का विनाश करने की योजना बनाने की व अन्य अनेको कहानिया इनके सम्बन्ध मे प्रचलित है। किन्तु सभी स्थलो पर यह महाक्रोधी ही चित्रित किये गये हैं अत दुर्वासा शब्द ही महाक्रोधी का प्रतीक बन गया है–और क्रोधी भी वह, जो अकारण ही क्रोध करे।

इनके अतिरिक्त दुर्वासा नाम के दो ऋषियो का उल्लेख, श्री रामचन्द्र दीक्षितार ने अपने पुराण इन्डेक्स के द्वितीय भाग के पृष्ठ १०५ पर, और किया है जिनमे एक को सिद्ध बतलाया है और दूसरे की गणना उन ऋषियो मे की है जो पिण्डारक तीर्थ की यात्रार्थ निकले थे।

2–तपोनिधि दुर्वासा के शाप का यह प्रसग महाभारतीय उपाख्यान में नही है वहा तो दुष्यन्त एक स्वेच्छाचारी–स्वैरी राजा के रूप में चित्रित है जो शिकार के लिए जगल मे जाता है और वहा एक अनुपम रूपवती युवती को देख कर उस पर मोहित हो जाता

चौपाई– मुनि सराप[1] सपिया उठि धाई। हरवर दुरवासा ढिग आई ॥
भयो सपिन[2] के जिय दुप[3] गाढो। पायन परि कीन्हचो ऋषि[4] ठाढो ॥
सकुन्तला के नेह निहोरे। विनती करन लागी कर जोरे ॥
क्रोध[5] इतो न तिहारे लायक। यह अपराध छमो[6] मुनिनायक ॥
करुणा सिन्धु कृपा मन ल्यावहु[7]। करहु छमा[8] यह श्राप[9] मिटावहु ॥

१, सरापु (B) २ सपिन (A) ३ दुपु (B) ४ पायन पकरि कियो मुनि (A) पांइ पकरि कीनो मुनि (B) ५ क्रोधु (AB) ६ क्षमो (A) ७ लयावहु (A) ८ कृपा (A) ९ सापु (A) साप (B)

य एव चिन्तयसे बाले ! मनसाऽनन्यवृत्तिना।
विस्मरिष्यति स त्वा वै, प्रतिथौ मौनशालिनीम् ॥ —पद्मपुराण ॥

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधन वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वा न स बोधितोऽपि सन्कथा प्रमत्त प्रथम कृतामिव ॥अ०शा०,४।१॥

दुर्वासा के इस शाप प्रसग ने दुष्यन्त के चरित्र का प्रक्षालन कर दिया है क्योंकि इसके द्वारा शकुन्तला की उपेक्षा का जो महान् दोष महाभारतीय दुष्यन्त के चरित्र पर था धुल जाता है। दोष गुणों को आकर्षक एव प्रभावशाली ढग मे प्रस्तुत करना सरल ही था। अत मात्र इस प्रसग से कालिदास ने दुष्यन्त को उदात्त और महान बना दिया।

इसके अतिरिक्त इस प्रसग की अवतारणा का प्रयोजन भौतिक प्रेम को देवी बनाना भी है। डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों मे "The Drama was meant for translating the whole subject from one world to another to elevate love from the sphere of physical beauty to the eternal heaven of moral beauty भौतिक प्रेम अथवा सौन्दर्य का शाश्वत देवी प्रेमी मे परिणत करने के लिए कठिन तपस्या अनिवार्य है। कविराट ने दुर्वासा के शाप के रूप मे इसके हेतु अवसर प्रस्तुत करा दिया। वास्तव मे यह शाप शकुन्तला के भौतिक प्रेम का दण्ड है। शकुन्तला इतनी अधिक स्वकेन्द्रित एव आत्मनिष्ठ हो जाती है कि अपने प्रिय के अतिरिक्त उस किसी का ध्यान तक नही रहता। समाज परिवार और राष्ट्र की तो बात क्या, निकट आए हुए तपोनिधि महात्मा दुर्वासा तक की उपेक्षा करती है। इतना अधिक स्वार्थमय एव भौतिक पदार्थों मे हो लीन रह कर जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर नही है। अत दुर्वासा के रूप म जो दण्ड दिया गया है वह किसी बदले की भावना से नही प्रत्युत सुधार के लिए है। इस शाप ही का यह परिणाम हुआ कि दुष्यन्त और शकुन्तला के हृदय मे धू धू करके जलती हुई वासना की अग्नि तपस्या, वियोग एव सेवा के जल से शमित हो गई और उनका शारीरिक प्रेम अन्तत परम पवित्र एव दवी बन गया।

3–इसका शुद्ध रूप 'शिताब' है, फारसी का विशेषण शब्द है—अर्थ है शीघ्र जल्दी, तीव्र, तेज। —उ० हिं० को०, पृ० ६४२ ॥

चौपाई– यह विननी मन धरहु हमारी। कनु सुना त्या[1] सुना तिहारी॥
दोऊ सपी[2] कही यह बानी। सुनि मुनि कृपा कछुक मन[3] आनी॥
राजा गया अँगूठी देहै। वाहि लपत ही फिरि सुधि ऐहै[4]।
या[5] विधि छूट्या[6] साप[7] हमारो। यह कहिके[8] मुनि फेरि[9] मिधारो॥
छुट्या, साप आयो सुप गातनि। दोऊ सखी नगी फिरि[10] वातनि॥
जो मुनि कहयो[11] सो है नही झूँठी। शकुंतला सो अहै[12] अँगूठी॥
जो नृप का वैसुधि के पैवो[13]। वहै अँगूठी ताहि देपैवा[14] ॥१०२॥

१ ज्यौं (B) २ सखिन (AB) ३ उर (A) ४ ऐहै (AB) ५ एहि (A) ६ छूटो (AB) ७ साप (A) स्नापु (P) ८ के (A) ९ हरपि भो (AB) १० फिर (A) ११ कहि (A) कहे (B) १२ प है व (AB) १३ जब नृप को वे सुधिहि करवो (AB) १४ देखवो (A)

1–कट्ठहारि जातक म इसी प्रकार की एक कहानी उपलध है, जिसमे अँगूठा का प्रयोग अभिधान के रूप मे किया गया है। कट्ठहारि जातक की कहानी का नायक अभिधान रूप अँगूठी देख कर भी अपनी पत्नी और पुत्र का पहचानने स इनकार कर देता है जब कि पद्मपुराण और अभिज्ञान शाकुंतल क दुष्यन्त को मुद्रिका देख कर शकुंतला विषयक समस्त वृत्तांत याद आ जाता है। वस्तुत कालिदास ने इस प्रसग मे अनेक परिवतन किए है। कट्ठहारि जातक की कथा सक्षेप मे इस प्रकार है —

एक बार बनारस का राजा ब्रह्मदत्त जगल मे फल फूला का तलाश मे घूम रहा था कि उसन एक सुन्दरी का देखा जो गाते हुए लकडिया चुन रही था। राजा उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हा गया और उसके साथ सहवास किया। लडकी गभवती हा गई और उसे गभ का भार अनुभव हान लगा क्याकि स्वय बोधि-सत्व ही उसक गभ में थे। यह जानकर राजा न उस सुन्दरी का एक अँगूठी दी और कहा कि यदि कन्या हो ता इस बेंचकर उसका पालन करना और यदि पुत्र हा तो उसे मेरे दरबार मे ले आना। कुछ समय उपरा त उस सुन्दरी ने बाधिसत्व को जन्म दिया। वह बालक मातृगृह हा म पलने लगा। एक बार उसक साथिया ने उसके पिता का पता न हाने का व्यग किया। बालक ने माता से पूछा। माता उसे दरबार मे ल गई और उसन राजा का वह अँगूठी दिखाई। राजा न यद्यपि उस अभिधान, सुन्दरी और बालक का पहचान लिया तथापि लाक-लाज के कारण पहचानन से इनकार कर दिया। तब सुन्दरी ने कहा– यदि यह बालक तुम्हारा है ता यह वायु मे बिना किसी सहार के टिका रहेगा अन्यथा गिरकर मर जायगा।' ऐसा कह कर उसने लडक को वायु में फेंक दिया। बाधिसत्व पद्मासन मे वायु क बीच बेठ गए और अपने को राज पुत्र घोषित करने लगे। यह सुनकर ब्रह्मदत्त ने अपनी बाहे फला दा और बालक उनकी गोद में आ कर बैठ गया। राजा ने उसे युवराज और सुन्दरी को पटटमहिषी घोषित किया। ब्रह्मदत्त की मृत्यु क बाद यही बालक काठवाहन के नाम स राजा हुआ।" [The Abhijnana Sakuntala and the Katthahari Jataka–Translated by Prof N K Bhagwat PP xxvii to xxix के आधार पर]

इस जातकीय कथा में एक ओर ता बोधिसत्व का अलौकिक चमत्कार जन साधारण का चमत्कृत करता है दूसरी ओर इस कथा से यह शिक्षा भी मिलती है कि

कामासक्त व्यक्ति को उचितानुचित की पहचान नहीं रहती । उस समय तो वह हर प्रकार की शर्तें स्वीकार कर लेता है—राजा ब्रह्मदत्त अभिधान रूप में अंगूठी देता है और दुष्यन्त अंगूठी तो देता ही है, साथ ही महाभारत के अनुसार शैव्यन्ति को युवराज बनाने की शर्त भी मानता है—किन्तु जब उसका पूर्व प्रभाव धीमा पड़ता है तब उसे अपने किए पर लज्जा का अनुभव होने लगता है ।

अभिज्ञान शाकुन्तल और कट्ठहारि जातक में अंगूठी का प्रयोग भिन्न रीतियों से हुआ है । सुन्दरियों को अंगूठी दिए जाने के उद्देश्य भी भिन्न हैं किन्तु दोनों ही कथाओं में अंगूठी अभिधान अवश्य रही है । शाकुन्तल में तो दुर्वासा शाप ने इस मुद्रिका को बहुत ही अधिक महिमाशाली बना दिया है । सम्भव है कालिदास ने यह प्रसंग इस जातक से ही ले लिया हो और फिर अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर नए रूप में वर्णित कर लिया हो । प्रोफेसर एन० के० भागवत के विचार भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं— Thus, though Kalidas may have derived the original idea of the ring from the Katthahari Jataka, the way in which he has used that idea in his drama is all his own Never the less our poets indebtedness to the Jataka to that extent must be acknowledged ' (वही पृ०, xxx)

अभिज्ञान शाकुन्तल में दुर्वासा शाप निवारण की बात कहते समय स्पष्टतः मुद्रिकालंकार ही का नाम नहीं लेते वरन् किसी भी अभिज्ञानालंकार के दिखाने की बात कह देते हैं किंत्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यते अर्थात् अभिज्ञान आभरण के दिखाने पर इस शाप की निवृत्ति हो जायेगी । राजा लक्ष्मण सिंह ने इस 'अभिज्ञानाभरण' का अनुवाद 'मुद्रा दिखाने वाली सुन्दरी' किया है जो स्पष्ट ही उनके अवचेतन में स्थित दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को प्रदत्त मुद्रिका के प्रसंग के कारण है अन्यथा इन शब्दों से मुद्रिका का अर्थ कदापि नहीं निकलता । नवाज ने प्रस्तुत स्थल पर दुर्वासा से अंगूठी ही का जिक्र कराया है यथा— राजा गया अंगूठी दे है । वाहि लखत हीं फिरि सुधि ऐहै ॥' नवाज की यह स्पष्टोक्ति साधु-सन्तों के प्रति जन साधारण के विश्वास की ओर भी संकेत करता है । जैसे आज ज्योतिषी जी हमारी गतायु की घटनाएं बता कर हमारे हृदय पर अपने पाण्डित्य का सिक्का जमा लेते हैं और हम उनकी भविष्य वाणियों पर एक बारगी विश्वास कर लेते हैं सम्भवतः वैसी ही अवस्था मुगल संस्कृति से आपन्न भारतीय-समाज की नवाज के काल में भी रही होगी । तभी तो सखियां परस्पर-' जो मुनि कह्यो सो है नहीं झूठी । सकुन्तला पा अहै अंगूठी ॥ '—कह कर दुर्वासा की शाप मुक्ति वाली बात पर विश्वास करती हैं । जो बात महाभारत में नहीं पद्मपुराण में नहीं, अभिज्ञान शाकुन्तल में नहीं वह नवाज में कैसे आई—क्या तो कवि के काव्य-कौशल के कारण या फिर सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से । इस प्रसंग में काव्य कौशल तो विशेष दिखाई नहीं देता अतः निश्चय ही सामाजिक मनोस्थिति का प्रभाव है । साधुसन्तों पर जनता का विश्वास लड़खड़ा रहा था, वह अविश्वास भी न करती थी-क्योंकि उनके क्रोध का भय था और विश्वास के लिए उस चमत्कार या सिद्धि का प्रदर्शन अपेक्षित था ।

दोहा– ब्याही नृप दुष्यन्त सों[1], करि गन्धर्व[2] विवाह ।
शकुन्तला निज गर्भ[3] सों, भला भया मुनि नाह ॥१०८॥
चौपाई– कहिय[4] अगिनि ते जब[5] यह जानो । मुनि करि[6] मुनिवर आनद[7] ठानो ॥
घरी होन तिहि मुनि मन भाई । सकुन्तला फिरि निकट[8] बुलाई[9] ॥
लाजहि नव सिर सों[10] लपटायो[11]। आय सकुन्तला मुनि सिर नायो[12]॥
सकुन्तला ढिग मैं बैठाइ । वरन लग्यो मुनि बहुत बड़ाई ॥
बड़ो माहि यह सुख तैं दीन्हों[13] । अति ही मोहि सुखित तै कीन्हों ॥

१ को (A) कों (B) २ गधरप (A) गधरब (B) ३ गरभ (A) ४ कही (AB) ५ तब (B)
६ AB प्रति म नहीं है ७ आनन्दरासि (AB) ८ तुरत (AB) ९ बोलाई (AB)
१० सों (A) सों (B) ११ लपिटाये (A) १२ आई सकुन्तला सिर नाये (AB)
१३ बड़ो मोंहि यह सुख त दीनो (A) बड़ो मोहि त यह सुखु दीनो (B)

A B Gajendragadkar ने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका के पृ०२२ पर इस ओर स्पष्ट सकेत किया है –

"To Kalidasa the possibility of Sakuntala herself revealing her alliance to the king does not simply strike at all That would be highly incongruous with her sense of decorum and her maiden modesty

असल बात यह है कि कोई भी कवि चाहे वह पुरातन परम्पराओं या आख्यानों का आश्रय ले अथवा स्वय अपनी सजनात्मक कल्पना का, अन्तत अपने पात्र व रगमच पर उन्हीं प्राणियों को उपस्थित करेगा और उनकी पृष्ठ भूमि उन्हीं वस्तुओं और सस्थाओं से निर्मित होगी जो उसके निकटवर्ती ससार की उपज हैं । उसकी रचनाओं मे, जाने अनजाने उसके अपने युग के रीति रिवाज बहुत कुछ सचाई और विस्तार के साथ प्रतिबिम्बित हो जायेंगे [नगेन्द्रनाथ घोष कृत रामायण एण्ड महाभारत पृ० ३६१] अत शकुन्तला का स्वय ही अपने प्रणय व्यापार का उद्घाटन करना आज की परिस्थितियों में रख कर नहीं आका जा सकता वरन् वस्तु स्थिति को समझने के लिए हमे अपने मन को उसी युग मे ले जाना होगा जहा शर्मिष्ठा नागकन्या और हिडिम्बा स्वत प्रणय-याचना करने म भी नहीं झिझकती—प्रणय सम्बन्ध के उद्घाटन की तो बात ही क्या ! इसके अतिरिक्त शकुन्तला पूर्वकालीन उपाख्यानों के माध्यम से यह भी जानती थी कि कण्व भी अन्य पिताओं की तरह उसके इस गान्धर्व विवाह का अनुमोदन ही करेंगे । अत उनसे स्पष्टत सब कुछ कह देना तत्कालीन सामाजिक वातावरण मे अस्वाभाविक नहीं है ।

कालिदास के काल तक आते आते नारी की स्वतन्त्रता प्राय सर्वथा लुप्त हो गई थी वह मात्र उपभोग की वस्तु रह गई थी–सम्भवतया गान्धर्व विवाह समाप्त हो गए थे, केवल प्राजापत्य पद्धति ही का बोलबाला था । इतना ही नहीं नारी के विभिन्न

चौपाई– चहत हुतो जिन[1] मय[2]वर दी हो। तिन[3] गन्धर्व ब्याह करि लीन्हो॥
अब ता अकेलाई वन रहो[4]। भोर तोहि समुरारि पठै हों (1)॥ १०६॥

१ जिह (B) २ म (A) मैं (B) ३ तित (A) तिहि (B) ४ त ब्याहु गधरप कीनो (A) गधर्व ब्याहु त कीनो (B) ५ म अब अकेलो वन रहों (A) म व अकेलोई बन रहों (B)

हावभाव, आकर्षण और कामोद्दीपन के साधना के रूप में चित्रित किए जाने लगे थे–अस्तु। नारी की मनःस्थिति पर भी सामाजिक नियमों और वैवाहिक सम्बन्धों का प्रभाव पड़ा था उसमें मुखरता और स्पष्टाभिव्यक्ति का वह साहस न रह गया था जो ऋग्वेदकालीन और महाभारतीय नारी में प्राप्त होता है। रसिकजनों ने उसकी इसी विवशता में सम्भवतया तथाकथित लज्जा और शालीनता के अंकुर पाए और उसकी इस प्रवृत्ति की संस्तुति की। कालिदास ने इसी हेतु दैवी अशरीरिणी वाक्‌शक्ति के द्वारा इस रहस्य का उद्घाटन कराया और शकुंतला को लज्जा विमण्डिता संकोचशीला एवं सुशीला चित्रित किया। उसकी सखियाँ प्रियम्वदा और अनसूया भी अविवाहिता-नारी होने के कारण इन्हीं तथाकथित गुणों में अवगुण्ठित हैं अतः कण्व ऋषि के सामने शकुंतला के इस सम्बन्ध का रहस्य उद्घाटित नहीं कर सकती मानो शकुंतला ने ऐसा करके कोई अक्षम्य अपराध कर दिया है–जिसे सुनते ही कण्व के कुपित होने का भय है।

महाभारतीय उपाख्यान में भी कण्व ऋषि प्रथमतः अपनी योग शक्ति से शकुंतला के इस गान्धर्व विवाह की बात जान लेते हैं तत्पश्चात ही शकुंतला यह कहती है कि 'मया पतिवृतो योऽसौ दुष्यन्तः पुरुषोत्तम। तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि।' सम्भवतः यह योग शक्ति वाली बात ब्राह्मणों और ऋषियों की अलौकिक शक्ति का परिचय देने के लिए जोड़ी गई है। ऐसी योग दृष्टि सम्पन्नता रामायण कालीन वसिष्ठ को भी प्राप्त थी जैसा कि कालिदास ने रघुवंश में लिखा है —

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति॥ (रघुवंश, ८–७८)

सम्भवतः ऐसे ही भूत भविष्य को देख लेने वाले निष्प्रतिघ चक्षु महर्षि कण्व को भी प्राप्त थे।

1–शृङ्गार रस का स्थायी भाव रति है किन्तु वह रति नहीं जिसे मनोवैज्ञानिक 'The feeling of Sexual Love' कहते हैं। 'रति' स्थायी भाव के अन्तर्गत काम वात्सल्य सामाजिक स्थिति आत्मरक्षा संघर्ष और आत्मसमर्पण के मनोवेग साधारण रूप से तथा अन्य मनोवेग विशेष परिस्थितियों में आ जाते हैं। पात्र भेद के कारण 'रति' भी तीन प्रकार की होती है –

[क] छोटों के प्रति। [ख] बड़ों के प्रति। [ग] बराबर वालों के प्रति।

प्रथम और द्वितीय में मुख्यतया वात्सल्य देश और आत्म समर्पण के भाव सन्निविष्ट रहते हैं। तृतीय भेद का मूल दाम्पत्य भाव है। नायक नायिका का पारस्परिक आकर्षण ही इसे तरंगित करता है –

पति और पतिगृह का प्रतिष्ठा की स्थापना के साथ साथ इन काला म नारी का व्यक्तिगत महत्व भी नन नन कम न रहा था। पुरुष का सम्पत्ति के अधिकार प्राप्त थे किन्तु नारी की आज्ञाभिन्ता का मापदण्ड पतिनिष्ठ पातिव्रत का स्वीकृत था। इनका हास होने से नारी की प्रतिष्ठा आशक्ति युक्त समझी जाने लगी थी। ही पुत्र की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गई थी उसे वंश का मंगल और वृद्धिकर्ता समझा जाता था। गृह्य सूत्रो म यह स्थिति स्पष्ट परिलक्षित है

"Woman was gradually losing her high position in this period Male progeny was definitely preferred to female one The Aitareya Brahmana declares that a daughter is a source of misery and that a son is a saviour of the family The Atharva Veda deplores the birth of daughter and according to Macdonell, the Yajurveda speaks of the practice of exposing girls when born [Social and religious life in the Grihya Sutras by V M Apte, p p 19]

दुष्यन्त की राज सभा (महाभारत) म शकुन्तला का सम्पूर्ण वक्तव्य पुत्र की महिमा ही का उद्घाटन है। वह स्वयं के लिए अधिक चिन्तित और यत्नशील नहीं है अपितु पुत्र को पिता के आश्रय म छोड देना चाहती है और राजा को धर्म का भय दिखाती है —

स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं यो न मन्यते ।
तस्य देवा निघ्नन्ति च लोकाननुयास्नुते ॥
कुलवंशप्रतिष्ठा हि पितर पुत्रमब्रुवन् ।
उत्तम सर्वधर्माणां तस्मात् पुत्रं न सन्त्यजेत् ।
धर्मकीर्त्यर्थकामानाम् मन सम्प्रीतिवर्द्धना ।
त्रायन्ते नरकाज्जाता पुत्रा धर्मप्लवा पितॄन् ॥ —महाभारत ॥

पुत्र की इस महिमाविमण्डित स्थिति से कण्व भी अपरिचित न थे। अत गान्धर्व विवाह के उपरान्त कई वर्ष तक दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के न बुलाए जाने पर उनकी दूरदर्शी दृष्टि ने काल की चाल अवश्य देख लिया होगा। वे अवश्य ही समझ गए होंगे कि दुष्यन्त अपने वचन का पालन करना नहीं चाह रहा है — शकुन्तला तनय को अपने विस्तृत साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करना उसे जँच नहीं रहा है और सम्भवत इसी लिए वह शकुन्तला को बुला नहीं रहा है। यदि शकुन्तला जाए भी तो सम्भवत वह उसे ग्रहण नहीं करेगा और दुश्चरित्रादि कह कर प्रताड़ित करेगा। अतएव उन्होंने महर्षि, अमोघ अस्त्र की उत्पत्ति तक प्रतीक्षा करना श्रेयस्कर

समझा। नारी की अवहेलना कोई भले ही कर दे पुत्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो धर्म का प्रश्रय प्राप्त है। इतना ही नहीं कण्व ने उस समय तक शकुन्तला न न्दन का समुचित लालन पालन भी किया जब तक वह युवराज्याभिषेक के योग्य आयु को प्राप्त नहीं हो गया। इस प्रकार कण्व ऋषि ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार जिस बुद्धिमत्ता एव नार व्यवहार कुशलता की आवश्यकता थी, उसका परिचय शकुन्तला का गान्धर्व विवाह के उपरान्त भी नव वर्ष तक रोक कर दिया है।

पद्मपुराण की रचनान्तर्गत शाकुन्तलोपाख्यान के काल तक नारी की स्थिति और अधिक गिर गई थी। पुत्र को तो स्वीकृत किया जा सकता था किन्तु नारी यदि किसी भी प्रकार दूषित है तो त्याज्य और तिरस्कृत ही थी। मतलब यह कि उसका तनयाश्रय भी छिन गया था। बौद्ध सम्प्रदाय ने भी इस दृष्टि को अपनाया। प्रसेनजित जब यह जान पाता है कि उसकी रानी वस्तुत दासी है, तो बहुत अधिक दुःखी होता है और महात्मा बुद्ध से कहता है। बुद्ध उसे सान्त्वना देते हुए कहते हैं, 'प्राचीन ऋषियों ने कहा है कि मातृजन्म म क्या होता है ? पिता का जन्म वंश के लिए मापदण्ड होता है।" इतना ही नहीं विवाहिता नारी पितृगृह में रह कर लोकापवाद की भी शिकार होने लगी थी। अत सात मास में जबकि गर्भ के लक्षण शकुन्तला-तन पर स्पष्ट हो गए होंगे कण्व को उसे पतिगृह भेजने की चिन्ता करना स्वाभाविक ही था—लोकापवाद का जो बडा भारी भय था। उनका यह भय उन्हीं के शब्दों मे इस प्रकार मुखर है —

कन्या पितृगृहे नैव सुचिर वासमर्हति।
लोकापवाद सुमहान जायते पितृवेश्मनि॥

सात मास ही क्या ? आठ छ या पाच क्या नहीं, प्रश्न किया जा सकता है। मैं समझता हू—उस समय भी गर्भवती का कोई संस्कार सातवें महीने मे पितृगृह म इसी प्रकार किया जाता होगा जैसे कि आज भी सतमासा माता के घर पूजा जाता है सम्भवत इसीलिए सात मास के बाद कण्व शकुन्तला को पतिगृह भेजते हैं।

कालिदास के काल तक आते आते दाम्पत्य भावना प्रबल हो गई थी। यद्यपि नारी का व्यक्तिगत महत्व बहुत कम था जो था भी वह केवल उसके रूप, लावण्य एव यौवन के कारण—तथापि पुरुष के ससर्ग मे वह भी महत्वाधिकारिणी थी। पति और पत्नी अकारण ही दाम्पत्य विषयक रति-सुख से वचित रहना पसन्द न करते थे यही कारण है कि कण्व, शकुन्तला के विवाह की बात जानते ही उसे पतिगृह भेजने की व्यवस्था करने लगते हैं। वस्तुत इस काल तक पतिगृह और पति ही नारी का एक मात्र आश्रय रह गया था। पति ही उसका देवता और प्रभु था। नेवान के समय म भी विवाहिता नारी का उचित स्थान पतिगृह ही था अत उन्होंने भी कवि कालिदास इस दिशा म अनुसरण किया और कण्व से कहलवाया—"भरि ताहि ससुरारि पठै

चौपाई सकुंतला मुनि के[1] ससुरारी। भई सखिन जित बहुत उदारी[2] ॥
निरखि सखिन के मुख[3] मुरझाय। सकुंतला के दृग भरि आय ॥
भया भार रवि दियो[4] दयाई। शिर[5] ते सकुंतला अन्हवाई ॥
बिदा समै मुनि बन्नु बोलाई। सब ऋषि[6] बधू मिलन का आइ ॥
मुनि ससुरारिहिं दत पठाय। सकुंतला तानि[7] शिर नाय ॥
बैठी घेरि सकल रिषि[8] नारी। लगी असीस दन पिय प्यारी[9] ॥
प्रान समान होहु पति प्यारी। लखि लखि सौतैं जरे[10]तिहारी ॥ } (1)
पूत सपूत होहिं घर जातहिं। सुख सागर म रहो समातहि[12] ॥ }

---

१ को मुनि (AB) २ भई उदासी सखियन सारी (AB) ३ मुख (AB) ४ दई (AB) ५ सिर (AB) ६ रिषि (AB) ७ सुत्रुकति (AB) ८ सिर (A) सिर (B) ६ मुनि (B) १० असीस देन पियारी (AB) ११ मर (B) १२ समानहिं (A)

---

1 सामान्यतया पुरुष की एषणाएँ तीन हैं लोकैषणा दारैषणा तथा पुत्रैषणा। स्त्री पक्ष म यही लाकषणा पति एषणा तथा पुत्रैषणा के रूप म रहती है। ऋषि नारियों द्वारा दिए जाने वाले इस आशीर्वाद में प्रान समान होहु पति प्यारी तो पति एषणा की समधिक पूर्ति है पूत सपूत होहिं घर जातहिं पुत्रैषणा की शान्ति करता है और सुख सागर म रहो समातहि का सम्बंध लोकैषणा से हैं। इस प्रकार इस आशीर्वचन म जीवन की सभी अभिलाषाओं का पूर्ति की कामना है। किन्तु 'लखि लखि सौत जर तिहारी' पद की संगति चिन्त्य है।

पति पुत्र और लोक की महत्ता तो ऋग्वेद के समय से निरंतर बनी हुई है। विवाह के समय दिए जाने वाले आशीर्वादों मे जो भाव वहा उपलब्ध है लगभग वही आज भी कविताओं और लोकगीतों मे मिलते है। ऋग्वेद के १०।८५।४५ वें मंत्र म इन्द्र से प्रार्थना की गई है

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥

अर्थात् इन्द्र इस नारी को उत्तम पुत्रवाली और सौभाग्यवती करो। इसके गर्भ मे दस पुत्र स्थापित करो पति को लेकर इसे ग्यारह मनुष्यों वाली बनाओ।"

यह तो रही पुत्रैषणा की पूर्ति की बात। लोकैषणा का रूप भी देखिए। पत्नि का लोक पतिगृह है यदि उस घर की वह सच्चे अर्थों म स्वामिनी बन सके तो अवश्य ही लोकैषणा की पूर्ति होगा। अत ऋग्वेद का ऋषि १०।८५।४६ वें श्लोक मे आशीर्वाद देता है —

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

चौपाई –या[1] बातै कहि कहि हितकारी । घर अपने मुनि बधू सिधारी ॥
सकु तला ढिग श्रौर न[2] कोऊ । कै गौतमी कि सखी या[3] दोऊ ॥
सकु तला असुवनि[4] भरि आई । गहि गौतमी गोद बैठाई ॥
बडे बेर लौ गूधि[5] बजाई । फलमाल[6] सखियन पहिराई ॥११०॥

१ ये (A)　　२ मै नहि (B)　　३ की सखिया (A) क सखिया (B)
४ असुआ (A)　　५ गू दि (AB)　　६ फूलन माल (A)

अर्थात् 'हे वधू, तुम सास ससुर, नन्द और न्वरा की महारानी बना सबके ऊपर प्रभुत्व करो।'

तात्पर्य यह है कि भारतीय परम्परा श्रौर सस्कृति के अनुकूल किसी की शुभ कामना करना तो है किन्तु शुभ के माध्यम से किसी अन्य का अशुभ चिंतन मान्य नही है। 'लखि लखि सौतै जरै तिहारी' इस अर्धाली मे जहा शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त के असीम प्रेम की कामना है वहा उसकी सपत्नियो के लिए डाह और द्वेष के उत्पन्न होने का कारण भी ध्वनित है। शकुन्तला के लिए यदि यह आशीर्वचन शुभ है तो उसकी सपत्नियो के लिए अशुभ है। महाभारत और पद्मपुराण मे तो ऋषि पत्नियो द्वारा आशीर्वाद दिए जाने की चर्चा ही नही है हा, कविराट कालिदास ने तीन तापसियो द्वारा यह काय अवश्य कराया है —

तापसीनामन्यतमा— (शकुन्तला प्रति) जादे। भत्तुणो बहुमाणसूत्रम महा देइसद्द लहेहि।
द्वितीया– वच्छे! वीरप्पसविणी होहि।
तृतीया– वच्छे! भत्तुणो बहुमदा होहि।

राजा लक्ष्मणसिंह जी ने इसी का अनुवाद इस प्रकार कर दिया है —

एक तपस्वनी– (शकुन्तला की ओर देखकर) हे बेटी, तू पति से मान पाकर महारानी हो।
दूसरी– तू सूरबीर की माता हो।
तीसरी– तू पति की प्यारी हो।　　—श० ना०, पृ० ६८ ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'लखि लखि सौतै जरै तिहारी' वाला आशीर्वचन नेवाज ही का है श्रौर कही इसका प्रयोग नहा मिलता। वस्तुत इस अर्धाली का सन्निवेश नेवाज कालीन मुगल हर्म्यों की एतद् सम्बन्धी अवस्था की ओर सकेत करता है। नवाज दरबारी कवि थे। राज महलो की चार-दीवारी मे रहने वाली तथाकथित बेगमो के वृत्तान्त उन तक अवश्य पहुँचते होगे। मुगल बादशाहो के यहा उनके सरदारो और अमीरो के हर्म्यों मे भी अनेक बेगमे रहती थी। उनमे ईर्ष्या और द्वेष की कसा सदा चलती थी यह कदाचित उनसे छिपा न रहा होगा। पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष ने मुगल रनवासो मे क्या कुछ नहा किया इतिहास के विद्यार्थी इससे अनभिज्ञ नही है। नेवाज ने इसी कारण, स्वाभाविक रीति से इस भाव का समावेश इस स्थल पर किया है। भला वह अनुराग ही क्या हुआ जिसके प्रति सपत्नियो मे डाह न पैदा हो।

चौपाई कहिए कहा कहा सो ल्यावै[1]। गहनो नही कहा[2] पहिरावै[3] ॥
भरि भरि द्रुह जल[4] मोचै। दोऊ सखी दपित ह्वै[5] सोचै ॥
भूषन बसन करन म[6] ल्याये[7]। द्वै मुनि बाल कहत यो आये ॥
गहने[8] का मति सोचु बढावहु। लेहु ललित गहना पहिरावहु ॥
गहनो देषि सखिन सुप[9] पायो। कहन लगी कितते यह[11] आयो ॥१११॥

दाहा– दपि अचम्भौ सखिन[12] को दोउ तव मुनि बाल।
कहन लगे यहि भाति है यह गहन को[13] हाल ॥११२॥

कवि]‌[14]– कनु गुरु हमको पठायो की[15] सकु तला को
फूल तारे ल्याया[16] फलमाल पहिरावो आनि।
हम गय फल तोरै और गति भई तहा
सिद्धि ह गुरु की । हम का परति ानि ॥
कहू[17] पाया काजर[18] महाउर[19] ललित कहू[20]
कहू पाया पान[21]कहू[22]सेंदुर सुहाग[23] पानि।
रूपन[24] के भीतर ते हाथनि निकासि गहि
भूषन वसन दीह ्मै देवतानि आनि[25] (1) ॥११३॥

---

१ काग्नों कहूँ कहाँ त ल्याव (A B) २ कहा (A) ३ पहिराव ४ द्रहूँ दृगनि जल (A B)
५ यों (A) यों (B) ६ सव हम (A B) ७ लाये (B) ८ गहनो (A) गहिने (B)
९ सोच (A) १० सुपु (B) ११ यह ि तत (B) १२ अचभित सबनि (A B)
१३ गहने को यह (B) १४ घनाक्षरी (A B) १५ क (A B) १६ ल्यावो (A B)
१७ कहूँ (A B) १८ काजरु (A B) १९ महावर (AB) २० कहूँ (A) काहू (B)
२१ पानु (B) २२ कहूँ (A B) २३ सोहाग (B) २४ रूपनि (A)
२५ भूषन वसन हम दीहै बन देवतानि (A B)

1–प्राचीन काल म एक प्रथा चली आ रही है कि विवाह क समय वधू का सजाया जाता है किन्तु आश्चर्य है कि महाभारतकार न वधू जीवन म इस महत्वपूर्ण स्थल का अचित्रित ही छोड दिया। पद्मपुराण म इसका इतिवृत्त मक मा वर्णन प्राप्त है —

नि नर्वैरप्माभरगा वनाधपनानिभिस्तथा।
गात्राद्वर्तनसमादि – हरिद्रातैनसङ्कृते ॥
भूषयामासुरन्यग्रा मुनिपत्नय शकुन्तलाम्।
शुभे सा महाभागा विश्वामित्र सुता सती ॥

मुनिपत्नियो क द्वारा शकुन्तला सजाई गई–भूषयामासु। देवताओ ने आभूषण दिए, वस्त्र दिए काजर–महावर दिया आदि का सकेत यहाँ नही है प्रत्युत इनी और तल क मिश्रण म बन उबटन स गात्र क मलने और विचित्र प्रकार से कन्दमूलादि का जिक्र है। सम्भवतया पुराण काल में शृंगार—नारी शृंगार—की

शैलियों का इतना अधिक प्रचार न रहा होगा जितना कालिदासकालीन भारत में था। अभिज्ञान शाकुन्तल ही के अनुसार विवाह के समय वधू का माङ्गलिक-अलङ्करण एवं प्रसाधन किया जाता था। गोरोचन, तीर्थस्थानों की पवित्र मृत्तिका और दूर्वाङ्कुर का प्रयोग किया जाता था। चन्द्रज्योत्स्ना के समान शुभ्र कौशेय वस्त्र उसे पहनाया जाता था, चरणों में अलक्तक लगाया जाता तथा अन्यान्य प्रकार के आभूषणों से अलङ्कृत किया जाता था। इसके अतिरिक्त रेशम का एक वस्त्र उस और दिया जाता था जो उसके गात के ऊपरी और नीचे के भागों को ढक लेता था। सम्भवतः इसी वस्त्र को कालिदास ने 'क्षामयुगल' (क्षौमयुगलम्) कहा है।

शकुन्तला पतिगृह जा रही है उसे भी इन माङ्गलिक-अलङ्कारों से प्रसाधित करना तात्कालिक न्याय से आवश्यक है किन्तु कण्व ऋषि के आश्रम में वे सब उपलब्ध कैसे हों ? समस्या तो यह है। कविराट ने मानसी सृष्टि की—देवताओं द्वारा वस्त्राभूषणों के प्रदत्त किए जाने की अलौकिक घटना घटित करा दी। इस घटना में शकुन्तला के माङ्गलिक - प्रसाधनार्थ उपकरण तो उपलब्ध हो ही गए साथ ही नायिका शकुन्तला का दाम्पत्य-जीवन मङ्गलमय और देवतानुकम्पायुक्त रहेगा ऐसा भी आभासित हो गया।

ऋषियों, तपस्वियों, सिद्धों और सन्तों की ऐसी अलौकिक शक्तियों एवं सिद्धियों में भारत की अधिकांश जनता का प्राचीन काल से विश्वास रहा है किन्तु आज का, भौतिकपदार्थों के जाल में निबद्ध मानव, इन्हें असम्भव और काल्पनिक कहता है इसीलिए उस के समस्त काव्य, नाटक लेख, कहानी किंबहुना वह सम्पूर्ण वाङ्मय जिसमें इस प्रकार की घटनाओं का सन्निवेश होता है प्रभावित करने में सक्षम नहीं है। मैं समझता हूँ — कालिदास ने भी अभिज्ञान शाकुन्तल में ऐसी अतिभौतिक और अलौकिक सिद्धियों का प्रयोग, महाभारत और पद्मपुराण की अपेक्षा कम ही किया है। श्री गजेन्द्र गाडकर का निम्न कथन एतदर्थ चिन्त्य है। योग दृष्टि द्वारा शकुन्तला के विवाह की बात जान लेने के प्रसङ्ग पर श्री गाडकर ने यह कहा है —Kalidasa's Kasyapa is perfectly human He creats for him no necessity of using his divine vision At least the audience does not know of any such occassion till the end of the seventh act The result is that the humen intrest in the play never flags (P P XXII)

कवि कालिदास ने केवल क्षौमयुगल, लाक्षारस और अन्यान्य आभूषणों को प्राप्त करने की बात कही है। सम्भवतः तत्कालीन माङ्गलिक प्रसाधन के लिए आवश्यक उपकरणों का पूर्ण परिचय देना उन्होंने आवश्यक न समझा होगा। उनका निम्न श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है —

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥४।४॥

चौपाई मुनि गौतमी सगुन ठहरायो। सकुन्तलहि[1] गहना पहिरायो ॥
सेंदुर मधियन माग[2] रचायो। काजर नयननि माह लगायो ॥
जावक रंग[3] पगनि लगवायो। चुनि[4] चटकीलो पट पहिरायो ॥
सखियन बिरी बनाय खवाई। सकुन्तला दुलहिनि बनि आई ॥ (1
जब लौं यह सिंगार[5] बनायो। तब लौं न्हाय कनु मुनि आयो ॥
सकुन्तला को दुख जिय जाग्यो। मुनिवर[7] माह कहना यो लाग्यो ॥११४

कवित्त[8] धरतु न धीर गरो भरि भरि आवत[9] है
निकसि निकसि नीर आवत दृगनि[10] मे ।
हरष[11] हिरानो[12] जात कछु वै साहात नहिं[13]
मनु अकुलान यो रह्यो न जात बन मे ॥
आजु ससुरारि को सकुन्तला सिधारैगी सो[14]
याही सोच सकत सम्भार ह्वे न तन मे[15] ।
मेरे बन वासी[16] के भयो है दुख यतो
दुख केतनो होत व्है है गृहस्तन के मन मे[17] ॥११५॥ (2

---

१ सकुंतल (AB) २ माग (A) मांग (B) ३ रगु (AB) ४ चूनरि (A) ५ सिंगारु(AB)
६ इमि (AB) ७ मुनि मन (AB) ८ घनाक्षरी (B) ९ आवतु (AB) १० द्रगन (B)
११ हरषु (AB) १२ हरानो (AB) १३ नाहीं (AB) १४ A प्रति मे नहीं है १५ याही
सोच सकति न ह्व सम्हार तन म (AB) १६ बनवासिन (A) १७ केतो होत ह्व है घरवा
सिन के मन मे (A) दुखु कतो होत है है घरवासिन क मन मे ।

नवाज ने भी यद्यपि स्वकालीन प्रचलित समस्त प्रसाधन–सामग्री का निर्देश नहीं किया है तथापि सेंदुर, 'महावर' और 'काजर' आदि सौभाग्य के चिह्नों का जिक्र अवश्य कर दिया है। अपने समाज में प्रचलित 'पान' को भी वे नहीं भूले हैं।

1–न केवल भारतीय समाज ही में अपितु अन्यान्य जातियों में भी विवाह को एक माङ्गलिक पर्व माना जाता है इसलिए वधू को अच्छी तरह सजाते हैं। भारतीय परिसर में परम्परागत १६ शृंगार और १२ आभूषण हैं। मलिक मुहम्मद जायसी प्रभृति कवियों ने भी उनका यथास्थान उल्लेख किया है [देखिए पृ १६ १७] जायसी के अनुसार बारह आभूषणों की गणना यों है —१–मज्जन २–चंदन चीरू ३–सेंदुर ४–तिलक ५–अंजन ६–कुण्डल ७–नासिका फूल ८–तमोरा ९–हार १० कंगन ११–कटि क्षुद्रावलि १२–पायल।
नवाज ने यद्यपि सं० ६ ७ ९ १०, ११ व १२ के आभूषणों का स्वतन्त्र नाम नहीं लिया है तथापि उनका अन्तर्भाव 'मुनि गौतमी सगुन ठहरायो। सकुन्तलहि गहनो पहिरायो ॥' में हो गया है। 'मज्जन' का नामोल्लेख तो नहीं–प्रयोग भी चित्रित है। 'अभ्यङ्गस्नान' की चर्चा 'भयो भोर रवि दियो देखाई। शिर ते सकुन्तला अन्हवाई ॥' में हो ही चुकी है सेंदुर, काजर 'जावक रंग' 'चटकीलो पट' बिरी आदि यहाँ उपस्थित हैं। तात्पर्य यह कि नेवाज की सकुन्तला का शृंगार सर्वथा पूर्ण और सस्कृत्यनुकूल है।

2–यों तो महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण कविता अपनी प्रभावशालीनता महत्ता और लालित्य

मे अनुपम है— तभी तो सम्भवत कवि बाण ने कहा है —

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

किंतु अभिज्ञान-शाकुन्तल न केवल उन्ही की रचनाओं मे बल्कि समस्त संस्कृत नाट्य-साहित्य में श्रेष्ठ माना गया है। जर्मन विद्वान गेटे तो 'शकुन्तला' की छटा से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि गा उठा —

'Wouldst thou the young year's blossoms,
and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed,
enraptured feasted, fed ?
Wouldst thou the earth and heaven itself,
in one soul name combine ?
I name thee, O Shakuntala ! and all
at once is said

यदि यौवन-वसन्त का पुष्प सौरभ और प्रौढत्व, ग्रीष्म का मधुर फल-परिपाक एकत्र देखना चाहते हो और आत्मा को सुधासिक्त एव मुग्ध करने वाली वस्तु का अवलोकन कराना चाहते हो। यदि तुम स्वर्गीय-सुषमा और पार्थिव सौन्दर्य का अभूतपूर्व सम्मिलन देखना चाहते हो तो मैं कहूगा वह केवल अभिज्ञान-शाकुन्तल मे मिलेगा उसी का अनुशीलन करो।

प्रस्तुत स्थल पर कवि सम्राट कालिदास ने महर्षि कण्व की मानसिक अवस्था का जो मार्मिक एव स्वाभाविक चित्रण किया है वह अप्रतिम है। उनका एतद्भावानुवर्त्ति श्लोक अभिज्ञान-शाकुन्तल मे सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। अवलोकनार्थ प्रस्तुत है —

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठ स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकस
पीड्यन्ते गृहिण कथ न तनयाविश्लेषदु खनवै ॥४।६॥

[आज शकुन्तला जाएगी इस विचार मात्र ने हृदय को संस्पृष्ट कर दिया है। आँसू रोकना हूँ लेकिन वह गले की आवाज को कलुषित कर देता है और चिन्ता के कारण दृष्टि शक्ति भी कुण्ठित हो गई है। मैं वनवासी हूँ तब भी मात्र स्नेहवश पाली हुई शकुन्तला के प्रति स्नेह के कारण मुझे इतनी अधिक विह्वलता है तो फिर गृहस्थ लोग कन्या के नए वियोग से क्या न दु खी होते होगें।]

संस्पृष्टमुत्कण्ठया स्नेहात्' और 'दु खनवैः' पदो का प्रयोग इस श्लोक में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। महर्षि कण्व का हृदय अभी पूर्णतया उत्कण्ठा मे आक्रान्त नहीं है अपितु केवल संस्पृष्ट है अर्थात शकुन्तला जायेगी, यह सोचने मात्र से

उनकी यह अवस्था होगई है । इसी प्रकार 'स्नेहात्' पद भी साभिप्राय है । भय है दैववश उस पालित [न की औरस] कन्या पर जब एक अरण्यवासी का इतना स्नेह हो सकता है तो औरस कन्या पर कितना न होगा । 'दुःखैर्नवै' पद भी विशेष अर्थ से संश्लिष्ट है । नव से तात्पर्य है प्रथम बार का कन्या वियोग जन्य दुःख । अभ्यस्त हो जाने पर बार बार इतना दुःख नहीं होता ।

हिन्दी साहित्य में अभिज्ञान शाकुन्तल के जो अनुवाद प्राप्त हैं उनमें इसका जो रूपान्तर दिया गया है मेरी दृष्टि में वह कालिदास के भावों को पूर्णतया अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है । यही कारण है कि हिन्दी-प्रेमी कालिदास के इस अपूर्व रचना की महिमा से इतने अधिक प्रभावित न हो सके । नेवाज भी अन्य रूपान्तरकारों की भाँति इस स्थल पर असफल से ही रहे हैं । राजा साहब ने यदि 'दुःखैर्नवै' पद को अपने अनुवाद में समाविष्ट कर लिया है तो संस्पृष्टमुत्कण्ठया और स्नेहात् जैसे महत्त्वपूर्ण पदों को छोड़ गए हैं । डा० मथिलीशरण ने इस पद के भाव का उल्लेख नहीं किया है । कवि नेवाज ने तो 'मेरे वनवासी के भया है दुख ये तो, दुख कतनो होत ह्वै है गृहस्तन के मन में' के अतिरिक्त अन्य किसी भी कालिदासोक्त भाव को आश्रय नहीं दिया है । उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह है तो यद्यपि वियोग जन्य ताप ही का निदर्शन तथापि कालिदास से कियदंश में भिन्न है ।

राजा लक्ष्मण सिंह और कवि नेवाज के अतिरिक्त शकुन्तला का एक नव प्रकाशित अनुवाद श्री वागीश्वर विद्यालंकार द्वारा अनूदित और द्रष्टव्य है इसमें कविराज के भावों की रक्षा तो की गई है तथापि भाषा की चलताऊ प्रवृत्ति के कारण श्लोक के भावों की गुरुता हल्की हो गई है । राजा साहब और वागीश्वर जी के अनुवाद क्रमशः अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं —

दोहा—आज शकुन्तला जायगी मन मेरो अकुलात ।
रुकि आँसू गद्गद गिरा आँखिन कछु न लखात ॥
मोसे बनवासीन जो इतौ सतावत मोह ।
तौ गेही कैसे सहैं दुहिता प्रथम बिछोह ॥ —श० ना० ८।८३ ॥

कण्व—जा रही शकुन्तला है आज यह सोच-सोच-
मन मेरा हो रहा है अनमना बार-बार
रुध-रुध जाता यह गला और भर-भर-
आते दृग चिन्ताजड सकता नहीं निहार
मुझ वनवासी का भी हृदय विकल यह—
हो रहा स्नेह वश ऐसा जब बेक़रार
कैसे सह सकते, तो होंगे भला माता पिता—
तनया वियोग का वे अभिनव दुःख भार ॥ —पृ० ६२।८ ॥

चापाई– यो मुनि मन में साच[1] बढायो । सकुन्तला के ढिग तव आयो ॥
बापहि देपि मया[2] सो पागी । सकुन्तला रोवन तव लागी ॥
दृपते नीर रह्यो भरि नयन[8] । बोल्यो फिर मुनि गद्गद् वयननि ॥
मंगल पिय घर ही को जैबो[3] । अव यह मर्म उचित नहि[4] रैबो ॥
क्यो गौतमी न ते समुझावति[5] । सकुन्तला क्यो रोवन पावति ॥
है सुभ घरी निलम्ब न लावहु । अब ही ह्या ते विदा करावहु[6] ॥
या कहि द्वै[7] मुनि सिप्य बुलाय[8] । सकुन्तला सग को ठहराय ॥
गहि बहिया गौतमी उठाई । सकुन्तला समुरारि पठाइ ॥ ११६ ॥

दोहा– पोछत दृग ससक्त[1] चली, सकुतला ससुरारि ।
तव सिगरे वन द्रुमन सो, मुनि यो कह्यो पुकारि ॥ ११७ ॥

---

१ मोह (AB) २ प्रेम (AB) ३ मगल है पिय के घर जबो (A) मगल है पिय घर को जबो (B) ४ 'नहि' और 'रबो' के बीच म A प्रति मे 'है' और है । ५ क्यों न गौतमी ते समुझावती (A) क्यों गौतमी त न समुझावती (B) ६ अब हीं ह्यांते याहि पठावहु (A) ६ अब ही ह्याते याहि चलावहु (B) ७ AB प्रति म मुनि के बाद है । ८ बोलाये (AB) ६ चलाई (B) १० सुमुक्त (AB) ११ यों (B)

1–कन्या की विदाई का दृश्य कितना ममस्पर्शी और करुणाजनक होता है यह किसी सवेदनशील व्यक्ति को बताने की आवश्यकता नही है । माता का मातृत्व अपने चिरपालित वात्सल्य से एक प्रकार वियुक्त होता है पिता के 'हृदय की कोर उससे छिटक जाती है । डा० चिन्तामणि के शब्दो मे भाव-साम्य की दृष्टि से कालिदास के युग में और आज के मानव-हृदय की चिरपोषित भावना में कोई अन्तर नही आया है । बेटी ससुराल जा रही है आत्मजा पराई हो गई है कुछ क्षण हो सही उसे रोक लेने की इच्छा होती है । विवाह के महोत्सव की सम्पूर्ण मिठास कन्या के लिए भी माता की गोद का अन्तिम आश्रय छूटते समय जहर के समान कडवी बन जाती है । मागलिक वेश भूषा धारण किए हुए आभूषणो से विभूषित कन्या का श्रीमुख घूँघट म प्रेमाश्रुओ से धुलकर भावना को अवश्य निखार देता है ।' (मालवी लोक गीत एक विवेचनात्मक अध्ययन, पाण्डुलिपि पृ० १५५) अत शकुन्तला का पिता को देखकर फफक फफक कर रो उठना और महर्षि कण्व का नयन भर कर गद्गद् वाणी मे गौतमी से शकुन्तला को चुपाने के लिए कहना अत्यन्त ही स्वाभाविक है ।

महाभारत और पद्मपुराण मे शकुन्तला की विदाई का यह प्रसग अत्यन्त ही इतिवृत्तात्मक तरीके से चित्रित है । कण्व या शकुन्तला की विह्वलता का परिचय वहाँ नही मिलता । कालिदास ने इस प्रसङ्ग का चित्रण अत्यन्त मार्मिक और भावपूर्ण किया है । वस्तुत अभिज्ञान-शाकुन्तल का यही स्थल सर्वश्रेष्ठ है और इसमे भी महर्षि कण्व की विह्वलता का प्रकाशक यह चतुर्थ श्लोक—

कालिदासस्य सर्वस्वभिज्ञान शकुन्तलम् ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्रश्लोक चतुष्टयम् ॥

इसी प्रसगान्तर्गत कालिदास ने एक संस्कार की चर्चा की है। उन्होंने विश न पूर्व यात्रा काल म शकुन्तला के अभ्युदय के लिए विशेष रूप से किए गए हवन की प्रदक्षिणा उससे कराई है। इस प्रकार के संस्कार की चर्चा अन्य किसी भी शकुन्तला पाख्यान म प्राप्त नहीं है। परिक्रमा के उपरान्त कण्व ऋषि ऋग्वेद के मन्त्र से शकुन्तला को आशीर्वाद भी देते हैं यथा —

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥ —अभि शाकु ४।७॥

राजा साहब ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है —

निवाजकृत— चहू धा वेदी के विधिवत् रची है अगिनि ये।
बिछा दर्भ तेर अग्र प्रदुत सोहैं समिध स ॥
नसावैं पाना क अघ हविगधी धुवन सैं ।
यही ज्वाला तेर दुरित सब के परिहरैं ॥ ८। ८८॥

ऋग्वेद काल मे केवल पाँच संस्कारों म विवाह सम्पन्न हो जाता था जिनका परिचय ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ८५ वें सूक्त (सूर्या और सूर्य के विवाह प्रकरण) से मिलता है। ये पाँचों संस्कार इस प्रकार है —

१ वर यात्रा २ कन्या का शृगार ३ प्रीतिभोज
४ अग्नि प्रदक्षिणा ५ वर का श्वसुर प्रस्थान एवं आशीर्वचन।

कवित्त—फ़ूलति[1] तुम्है निहारि अमे[2] यह फलति है[3]
सुत के भय ते जैसे फ़ूल होत[4] नारि को।
-क्यारी आल वालन जो[5] बनावते रहत याही
काम म वितवत[6] हुतो[7] जाम चारि को।
जब लौ तुम्है न पहिले ही सोचि नेत हुता[8]
तरनो न केहू जो पियत हुतो वारि को।
सेवा यहि भानिन[9] जो करत[10] निहारी सोई (1)
ललित[11] सकुतला सिधारी समुरारि को ॥११८॥

१ फूलत (AB) २ ऐसों (A) ३ उर फूलति हौ (AB) ४ सुष होति जसे (A)
४ सुख होत जसे (B) ५ AB प्रति मे नहीं है ६ वितावति (A) वितावति (B)
७ 'हुतो' और 'जाम' के बीच मे A प्रति मे 'जे' और B प्रति मे 'जो' है ८ A प्रति मे नहीं है
६ भाति (AB) १० करति हो (AB) ११ सुनिये (AB)।

दता है कि यह अग्नि तरी रक्षा करे। इस सम्भावना मे केवल एक ही बाधा है वह यह कि शास्त्रानुसार गार्हपत्य अग्नि का केवल गृहस्थ ही जाग्रत कर सकता है और कण्व ऋषि गहस्थ थे, ऐसा कोई प्रमाण प्राप्त नही है। अत बधू कल्याण के लिए, गहस्थ जीवन की समृद्धि क लिए क्या श्रौत और स्मार्ताग्नियो ही से काय चला लिया गया ?

महाभारतीय शकुतलोपाख्यान मे शकुन्तला किन किन के साथ दुष्यत के दरबार मे जाती है यह स्पष्ट नही है। पद्मपुराण के अनुसार शकुतला के साथ मुनि शाङ्ग रव, शारद्वत और गौतमी तथा प्रियम्वदा जाते हैं। कालिदास ने प्रियम्वदा के प्रति रिक्त अ्रय का इस काय में प्रवृत्त रखा है। सम्भवत उनके युग मे अविवाहिता युवती कन्याओ का राज-सभा आदि मे जाने की प्रथा न रही होगी। नेवाज ने भी इसी परम्परा को बनाए रखा है और केवल शिष्या तथा गौतमी को ही शकुतला के साथ राज सभा म भेजा है। उसकी सखिया प्रियम्वदा और अनुसूया तपोवन ही मे रह जाती है और शकुतला का वियोग ताप सहती हैं।

1—मूलत मानव हृदय के दो भाव है—सुखात्मक और दु खात्मक। सुखात्मक भाव ता स्वकेद्रित सकीर्ण और सीमित होते हैं किन्तु दु खात्मक भावा की स्थिति इसके सर्वथा विपरीत हैं विरह का दु खात्मक भाव मानव मात्र ही को नहीं वरन् प्रत्येक सहृदय प्राणी की स्थायी निधि है। इसके द्वारा मन सवेदनशील बन जाता है विरही का दृष्ट-मित्र-वृत्त बढ जाता है वह जड-चेतन सभी का अपने दु ख मे दु खी पाता है। वह कितना ही विवेकशील क्या न हो, विरह की तीव्रता मे विवेक भस्म हो जाता है। तभी तो राम जैसा मधावी व्यक्ति भी वन लताओ स पूछने लगा—सीता का पता—'हे खग मृग, हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृगनयनी ॥'

महर्षि काव्य का मन भी शकुतलागमन की व्यथा से आकुलित है अत उसमे सम्बधित सभी वस्तुए तथा काय करुणा का उद्रेक कर रहे हैं। डॉ० चितामणि के

शा ो म 'कालिदास के ग्तद् विषयक चिरंतन भाव मानवा की नारियों के लोकगीतों मे आज भी गत-शत युगो के व्यवधान को पार कर प्रकाशित हो रहे हैं

बनडी त्हारा काराजी बाग लगाया रे
बनडी त्हारा चीराजी बाग लगायो रे
बनडी त्हारा बिन सिचगा कूण ?
म्हारा हरिया बन का कागलड़ा
बनडी मेरी खाज ी नाबू तूगजे
बनडी सीताफल को घणा र मवा
म्हारा हरिया बन की कायलड़ी
त्हारा बिन सूना रैगा या बाग

—मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)पृ० १५७॥

लगभग यें ही भाव कविराट कालिदास म भी है देखिए —

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वसिक्तेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये व कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सव
सय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ४ । ११ ॥

राजा लक्ष्मण सिंह जी न इसका अनुवाद इस प्रकार किया है —

पीछे पीवति नीर जो पहल तुमको प्याय ।
फूल पात तोरति नहीं गहने हू के चाय ॥
जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुख दान ।
फूली अग समाति नहा उत्सव करति महान ॥
सो यह जाति शकुन्तला आज पिया के गेह ।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह ॥ ८९ । ७२ ॥

वस्तुत ममता का यह भाव शाश्वत और चिरंतन है । शकुन्तला की बिदाई क समय महर्षि कण्व का हृदय भावनाओं के सयम की सीमा को तोडकर वात्सल्य के कारणिक अनन्त म जिस प्रकार लहरा उठा था वसी ही नेवाज के समय म भी माता पिता की हृदयस्थिति होती थी और आज भी विरहात्बोधित ममत्व माता के हृदय को नव शून्य हान की स्थिति तक पहुँचाने लगता है तो पुरुष हृदय परपो की आँखें भी सजल हो जाती है । इसी प्रकार के करुणा पूर्ण प्रसग विश्व साहित्य के महत्वपूर्ण स्थलो के प्रेरणा स्रोत माने जाते हैं ।

नेवाज के प्रस्तुत कवित्त मे यद्यपि वन लताओ और वृक्षा से आज्ञा तो नही मागी गई है तथापि शकुन्तला की हृदयगत उस ममत्व और सामीप्य भावना का प्रस्फुटन अवश्य हुआ है जो निरन्तर दीर्घकाल तक साथ-साथ रहने के कारण सजीव और निर्जीव सभी वस्तुओं के प्रति जन मन म उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त नेवाज क कवित्त म लोक भावना का पुट कवि कालिदास की अपेक्षा अधिक है । डा० मैथिली शरण गुप्त का एतद् विषयक वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक है—देखिए शकुन्तला पृ० २५–२६ ।

चौपाई– मुनिवर यो वन द्रुमनि सुनायो। पिकनि[1] द्रुमनि[2] चढि सोर[3] मचायो ॥
कोयल कुहुकि उठी[4] चढि डारन[5]। मनु द्रुम रोवत करत[6] पुकारन[7]॥(1)

---

१ पिकनि (AB) २ द्रुमन ३ सोरु (AB) ४ उठ (B)
५ डारनि (B) डौरन(A) ६ करति (A) ७ पुकारनि (AB)

1–महाभारतीय शाकुन्तलोपाख्यान में शकुन्तला की विदाई का कारुणिक चित्र सर्वथा अचित्रित है वहाँ न तो कण्व की मनगत व्यथा व्यक्त है और न शकुन्तला या उसकी सहचरियों की आकुलता-व्याकुलता अभिव्यञ्जित की गई है 'शकुन्तला पुरस्कृत्य सपुत्रा गजसाह्वयम्' कहकर ही महाभारतकार ने कथानक को आगे बढ़ा दिया है। पद्मपुराणकार ने भी यद्यपि प्रस्तुत प्रकरण की कारुणिकता को उद्दीप्त नहीं किया है तथापि शकुन्तला के विदा होते ही जो शकुनापशकुन होने उनकी ओर यत्किञ्चित संकेत किया है। शकुन्तला पर क्या बीती ? हम सब जानते हैं लेकिन पद्मपुराणकार इस 'बीतने' से पूर्व ही इसका आभास पा जाता है और अपशकुन के रूप में कह देता है। शकुन्तला का हृदय भी उद्विग्न हो गया था। यथा -

अथ दक्षिणस्तस्या शिवा घोर ववाशिरे।
मृगाश्च चञ्चु सव्येन वामावर्ति रम धूपरा ॥
तन्नाश्रय समुद्विग्ना पथि याता शकुन्तला।
निगम्बिनी गभसत्वा न नैव चलितु द्रुतम् ॥

कालिदास शकुन्तला के हित चिंतन में इतने अधिक तल्लीन रहे हैं कि उन्हें सर्वत्र ही शकुन परिलक्षित हुए हैं। उनके अनुसार देवताओं ने भी शकुन्तला की सुखद यात्रा के लिए आशीर्वाद दिया है –

रम्यान्तर कमलिनीहरितैः सरोभि
छायाद्रुमैर्नियमितार्कमरीचितापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥४।१२॥

राजा साद्द्व ने इसी भाव को इस प्रकार लिखा है –

पथ होय यात्रा सुखकारी। पवन मंद अरु अभिमतचारी ॥
ठौर ठौर सरिता सर आवें। हरित कमलिनी छाय सुहावें ॥
तरवर शीतल छाँह घनेरे। मेटन हार ताप रवि केरे॥
मृदुल भूमि पग पग सुखदाई। मनहु कमल रज नेह बिछाई ॥४।६१॥

इतना ही नहीं अभिज्ञान-शाकुन्तल के अनुसार कोकिल-कूजन भी शकुन्तला के मार्ग में शिवत्व का प्रतीक है। शार्ङ्गरव, कण्व का ध्यान कोकिल की ओर उसका ध्यान दिला कर मुनि कश्यप से कहता है —

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः ॥४।१३॥

चापाई—देपि रही अपने द्रुम लाय। सकुतला के दृग भरि आये ॥
सकुतला यहि सोच समानी । सखियन सो बोली यह बानी ॥
लगो तऊ[1] नृप नेह निगोडो । मा पै यह वन जात न छोडो ॥११६॥ (1)

---

१ जऊ (A) जाहु (B)

अर्थात् तपोवन म शकुतला के बन्धुस्वरूप इस वृक्ष समूह न भी उस जाने की आज्ञा द दी, क्योकि उन्होने अव्यक्त तथा मीठ कोकिल नाद स आप लोगो का प्रत्युतर तर दिया है ।

नवाज न कवल पायल कूजा ही का नहा प्रत्युत पिकादि पक्षियो क कलरव को भी समाविष्ट किया है । वस्तुत नवाज क समक्ष न तो शुभाशुभ का विचार प्रतीत होता है और न अनुनादान का । उन्होने तो वन पक्षियो का भी शकुन्तला गमन क करुणात्मक प्रसग मे करुणा सवलित चित्रित कर दिया है । मनुज म रोवत करत पुकारन मे वृक्षादिको की अनुना नही प्रत्युत उनका शकुतलागमन जन्य दु ख अभिव्यञ्जित है । नेवाज की यह पक्तियाँ प्रकृति और शकुतला के महज स्वाभाविक घनिष्ट प्रम का प्रकाशिका ह अत श्लाध्य है ।

1–विवाह के आनन्दातसर की सम्पूर्ण मिठास कन्या के लिए भा स्वजन वर्ग का आश्रय छूटत समय जहर क समान कडवी हो जाती है । मागलिक परिधानावेष्ठित आभूषणो स विभूषित कन्या का श्रीमुख अवगुण्ठन ही मे प्रमानुचिन्तन हा कर उसके ममत्व को मुखर कर देता है । भले ही लोक-लज्जा वश उसकी भावना मौन रहकर जडवत् हो जावे । शकुतला भी इसका अपवाद नही है अत कालिदास से लेकर अद्यतन शाकुन्तलोपाख्यानकार भी इस स्थिति का चित्रण करना नही भूले है कवि कालिदास न यदि हला पिअ वदे । अज्जउत्तदसणोस्सुआए वि असमपद परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण चलणा मे पुरमुहाए णिवडन्ति" कहकर इस भावना को व्यजित किया है तो राजा लक्ष्मणसिह जी ने इस प्रकार इसे अनूदित किया है हे प्रियम्वदा । आर्यपुत्र से मिलने का तो मुझ बडा चाव है पर तु आश्रम को छोडते हुए दु ख क मारे पाव आगे नही पडते ।" डा० मथिली शरण गुप्त ने न कवल शकुतला की मन स्थिति ही स्पष्ट की है प्रत्युत् उसका कारण भी प्रस्तुत किया है —

प्रिय दशन का उन यद्यपि उत्साह बडा था ।
पर स्वजनो का विरह ताप भी बहुत कडा था ।

क्योकि—

भावी जीवन प्रेम-पूर्ण हो खिल सकता है
यह बिछुडा धन कि तु कहाँ फिर मिल सकता है ।

नवाज ने भी यद्यपि इन भावो का प्रस्फुटन इस पक्ति म किया है तथापि कन्या का नायक के प्रति अटूट प्रम भली प्रकार अभिव्यजित नही हो सका है । मालवणी कन्या यदि सयानी होने के कारण पिता के व्यथित हृदय को सान्त्वना दने के लिए कह दे कि—

चौपाई– मेरे[1] लाय[2] यह द्रुम पाती । देषिति[3] दुप[4] भरि ग्रावनि छाती ॥
अब मेवा नहि व्है है मोपै[5] । य द्रुम[6] जान[7] तुम्हे[8] मय[9] मौपै ॥
कहा सौपती[10] हो द्रुमपाती । हमें काहि सौपे तुम जाती ॥ (1)
यो कहि परम प्रेम सो पागी । मया सषिन की ग्रनि ही लागी[11] ॥
सकुलना रोवनि[12] है[13] ठाढी । मया सषिन की ग्रति ही वाढी[14] ॥
वडो वेर ला मुनि समुझाई । सकुतला ग्रागे चलि ग्राई ॥
सकुतला मा[15] फेरि सिधारी । मया मकन वन म[16] दुप[17] भारी ॥

---

१ मेरी (AB) २ लाई (AB) ३ देषत (B) ४ दुप (B) ५ मौं (A) ६ वन (B) ७ जाति (B) ८ तुम्हहि (A) ६ हौं (AB) प्रति सरया AB म इसके बाद एक चौपाई ग्रौर है —यह सुनि क भरि ग्राई ग्रँषिया । बोली उठीं तब शोक्र सखियां ॥
१० सौंपति (A) ११ सषो सोह करि रोवन लागी (AB) १२ रोवत (A) १३ ह्व (A)
१४ माया सषियन की ग्रति ही वाने । सकुतला ऊ रोवति ठाढी ॥ (B) १५ नर (B)
१६ को (AB) १७ दुपु (A)

'ये घर जाग्रो काका जी ग्रापणे
म्हे ता चाल्या परदेस
सम्पत होय ता लाव जा
नी तो भला परदेस'

ता भी पिता का हृदय कन्या की मनोदशा को समझ लेता है कि स्वप्न म भी वह मायके ग्राने के लिए खिन्न रहेगी तभी तो वह उसे ग्राश्वस्त कर देता है कि

'सम्पन थोडी ने वर्ष रिण घणो
वई न लावा वगा वा ।'

कण्वाश्रम छोडते समय प्रियगृहगमनात्सुका शकुतला की भी यही दशा थी तभी तो वह जाते जाते भी कण्व से पूछता है कि पिताजी, ग्रब मैं फिर कब यह तपोवन देखूँगी। नवाज न इन भावो की ग्रभिव्यञ्जना यथोचित रीति से नहा की है सच ता यह है कि कविराज न जिस कौशल ग्रौर दक्षता के साथ शकुतला की विदाई क ग्रवसर पर करुण रस सलिला प्रवाहित की है उन्होने जो ग्रपूर्व प्रभाव उत्पन्न किया है नेवाज या ग्रन्य कोई कवि उसको पासग भी नहा कर पाया है। कौन है ऐसा जो महाकवि के एतद् विषयक प्रसग को पढकर करुणा विगलित हो प्रेमाश्रु विमोचन न करने लगे।

1–यह चौपाई कवि कालिदास क निम्न ग्रश ही का छायानुवाद है –

ग्रम्म जणी वस्स हत्थे समप्पिदो।

दोनो सखी– (ग्रासू गिराती हैं) हम किसक हाथ सौंपती है। —शकु० ना० पृ०७४ ॥

नेवाज ने कालिदास क इस भाव का ग्राच्छादन हटा दिया है वहाँ भाव है कि हे शकुतला तुम नवमल्लिका या जो कि हमारी ग्रपेक्षा निम्न कोटि की है ता हमें सौंप रही हो किन्तु हमें किसके हाथ सौंपती हो। नवाज ने सखिया द्वारा इसी भाव को स्पष्ट कहला कर मानवीय हृदय की करुणा का उद्बुद्ध कर दिया है।

चौपाई– नाचनि मोरन हू बिसराई । उगिनत हरिन घास अधिपाई¹ ।।
रह्यो²चकित ह्वै पवन न डोलत³। दुचित भवर गु जरत⁴ न बोलत⁵ ।।(1)
जितने⁶ जतु हुते बनवासी । सबक मन मे भई उदासी⁷ ।।
सब बन म दुप यो मढि आयो⁸ । मुनि को यह गौतमी सुनायो ।।
देपहु बडी बर चढि आई । सकुन्तला की करहु निदाई ।।
सीप होहि सो याहि¹ सिपावहु । ठाढे होहु न आगे आवहु ।।
मन म भया महादुख गाढा । भयो सबन¹¹ की लय मुनि ठाढो ।।१२०।।
दोहा– सिष्यन सो मुनि कहि उठ्यो,¹² मन विचार¹³ ठहराइ ।
कहियो नृप दुष्यत सो यह सदस ¹⁴ समुझाइ ।।१२१।।

१ अधधाई (AB)   २ रहे (B)   ३ चल ही (B)   ४ गुजार (B)
५ कर ही (B)   ६ जेतना (A) जेतन (B)   ७ भई सपिन के चित्त उदासी (AB) ।
इसके बाद AB प्रति मे यह चौपाई और है —
सब मन मे भ दुचिताई । सकुतला बन तें कढ़ि आई ।।
८ देपहु अधिक दोस चढि आयो (AB)   ९ लगन सम वह जाति बिताई (AB)
१० आनि (A) ११ सबनि (AB)   १२ उठा (AB)   १३ विचारि (A) विचार (B)
१४ सदेस (AB) ।

1–महाभारत और पद्मपुराण म वर्णित शाकुन्तलापाख्यान म यद्यपि शकुन्तला की विदाई का प्रसग है तथापि वह मात्र इतिवृत्तात्मक है । प्रथमत कविराज कालिदास ही न इस चित्र म भावो क रग भर कर इसे प्रभाव सम्पन्न किया । कालिदास ने प्रकृति और वनगत प्रत्येक वस्तु को शकुन्तला गमन मे दु खाभिभूत चित्रित किया । मानवीकरण अलकार का जितना सुदर प्रयोग इस स्थल पर महाकवि ने किया है अन्यत्र दुर्लभ है ।
उग्गलि अदब्भकवला मिया परिच्चतणच्चणा मोरा ।
ओसरिअपडुपत्ता मुअति असू विअ लदाओ ।।४ । ११।।
राजा लक्ष्मण सिंह जी न इसका अनुवाद इस प्रकार किया है –
लेत न मुख म घास मृग मोर तजत नृत जात ।
आँसू जिमि डारत लता पीर पीर पात ।।६२।।   —श० ना० पृ० ७३।।

कवि नेवाज ने इस वर्णन म न लताओ के पीत-पत्र विमोचन की क्रिया को छोडकर और पवन की निष्कर्ष यदिमूढस्थिति तथा सतत गु जरणशील भ्रमरो की मौन स्थिति का उत्तलकर अचेतन जगत को भी शकुन्तला गमन क नाद स अभिभूत कर कवि प्रतिभा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । ऐसा लगता है कि कवि नेवाज को पीत-पत्र क्षरण की क्रिया अश्रु विमोचन क तुल्य लगी न हागी क्योकि पीत पत्र का झर जाना तो स्वाभाविक है वह तो झरता ही आज नहीं तो कल । फिर उनके झरने की बात कहकर करुण रस की प्रखर उद्दीप्ति क स हागी ?

चौपाई– हम है पूजा जोग तिहारे। तुम हौ सवक सदा हमारे ॥
सकुन्तला है सुता हमारी। याहि जानियो[1] जिय ते प्यारी ॥
हमै न आश्रम आवन दीन्हो। आपुहि ब्याह गाध्रवी कीन्हो[2]॥
सकु तला सुख मे जु[3]न रैहै। यह दुप मो पै[4] सह्यो न जैहै ॥१२२॥

दोहा– नृप के[5] हेत सदेस के, सिष्यन सो कहि बैन।
सकु तला को सौप तव,[6] लग्यो महामुनि देन ॥१२३॥

चौपाई–सासु ननद की सेवा करियो। पति[7] के प्यार भूलि मति परियो ॥ (1)
सौतिन हू म हिलिमिलि रहियो। अपनो[8] भेद न कबहू कहियो ॥
भागन को न गरब मन धरियो। पति की सासन ते नहि टरियो[9] ॥
या विधि जो पति के घर रैहो। सब घर म कुल[10] वधू कहै हौ ॥
यह सब सिप मन मे धरि लीजै। वन को मोहि विदा अब कीजै[11] ॥१२४॥

---

१ जानियेहु (B) २ आपुहि ब्याहि याहि तुम लीनो (AB) ३ जो (A) ४ सों (A)
५ मुनिवर (B) नृपति (A) ६ फिरि (A) ७ पिय (A) ८ आपनो (AB)
९ पति आज्ञा तें कबहुँ न टरियो (AB) १० कल (A) ११ दीज (A)।

1–विवाहोपरान्त कन्या की बिदाई के समय गुरुजनो द्वारा शुभ आर्शीवाद दिए जाने की रीति अत्यत प्राचीन है। प्रागैतिहासिक काल से किसी न किसी रूप मे किसी न किसी लोकाचार के माध्यम से इसका निर्वाह किया ही जाता है आज भी माता, काकी, बडी बहिन आदि उदारता पूर्वक कन्या को अखण्ड सुहाग की अमरता का वरदान दिया करती हैं। इतना ही नही अडास पडोस की स्त्रिया भी वधू को सीता-तुल्य मानकर कुछ उपदेशादि देती हैं यथा —

सजो जी सिंगार चतुर अलबेली
समझ समझ पग धरियो सीता
देस पराया ने लोग पराया
देवर पराया न देरानी पराई– आदि।

कवि कालिदास द्वारा प्रस्तुत यह आशीर्वचन वात्स्यायन के कामसूत्र से आपाततः प्रभावित हैं। उसके 'भार्याधिकरण' नामक अध्याय के श्लोक सख्या ४१, ३६ ४० के भाव ही समधिक यहाँ प्रस्फुटित हैं सच तो यह है कि कविराट ने उन श्लोका में कोई उल्लेखनीय उलटफेर भी नही किया है। कालीदास कालीन भारतीय सँस्कृति के नारी विषयक पहलू पर भी इन श्लोका से काफी प्रकाश पडता है अत इनका महत्व 'अभिज्ञान शाकु तल' मे इस दृष्टि से भी विशेष है। उन्होंने यो तो यत्र-तत्र आशीर्वचन कहलवाए हैं किन्तु मुख्यतया इन दो श्लोका मे ये भाव सीमित है —

शुश्रूषस्व गुरुन्, कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने,
भर्तु विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येव गृहिणीपद युवतयो वामा कुलस्याधय ॥४।२०॥

[निवाज कृत शकुन्तला नाटक

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से ! शुचं गणयिष्यसि ॥४।१९॥

राजा लक्ष्मणसिंह जी ने इन्ही के भावान्तरित इस प्रकार किया है । उन्होंने भावो की रक्षा की है—इसमे कोई सन्देह नही—

सुश्रूषा गुरुजन की कीजो । सखी भाव सौतिन में लीजो ।।
भरता यदपि करै अपमाना । कुपित होय नहिया जिन माना ।।
मिठ भाषिन दासिन संग रहिया । बड़े भागि पै गर्व न गहिया ।।
या विधि तिय गृहनि पद पावें । उलटी चलि कुलकाप कहावें ।।—शा०ना०७७।६८।।
जब वंश कुलीन बड़े धनवंत को जाय के नारि कहाय है तू ।
अति वैभव के नित कामन ते छिनहू अवकाश न पाय है तू ।।
दिशा पूरब ज्यों दिनेश जनै सुत उत्तम यों हि हो जाय है तू ।
तब मोते बिछोह भए को बिथा मन में नहिं नेकहू लाय है तू ।।—शा०ना०७८।६६।।

डा० मैथिलीशरणगुप्त ने इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है —

गुरुओं की सम्मान-सहित सुश्रूषा करियो
सखी भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो ।
करे यदपि अपमान, मान मत कीजो पति से
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥
परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो ।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी पद पाती हैं
उलटी चलकर वश व्याधियाँ कहलाती हैं ।। —शकु० पृ० २५ ।।
जब तू प्रिय के यहाँ सुगृहिणी पद पावेगी
गुरु कार्यों में लीन सदा सुख सरसावेगी ।
रवि को प्राची सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी
तब यह मेरा विरह दुःख सब बिसरावेगी ।। —शकु० पृ० २७।।

महाभारत और पद्मपुराण मे इस प्रकार के महनीय आशीर्वचन नहीं हैं वहाँ तो मात्र इतिवृत्तात्मक रीति से प्रसंग को आगे बढा दिया गया है । वास्तव मे महाभारत, पद्मपुराण और अभिज्ञान शाकुन्तल के रचना कालो की नारी विषयक मान्यताओ और धारणाओ मे महान् अन्तर है । कालिदास के काल मे 'दुःशीलोऽदुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यः' का प्रचार प्रसार हो रहा था । अतः प्रायः सभी क्षेत्रो मे नारी को पातिव्रत की तथाकथित सुधा पिलाई जा रही थी । कविराट ने भी अपने तीनो ही नाटको मे नारी को प्रमुख स्थान दिया है मालविकाग्निमित्रम् मे नारी

के 'भार्या' रूप को, 'विक्रमोर्वशीयम्' में 'पतिव्रता' को और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में 'गृहिणी' रूप को चित्रित किया है । श्री एस० रामचन्द्रराव का कथन इस सम्बन्ध मे अवलोकनीय है—In fact, it is this concept of a Grihini, or an ideal wife, that Kalidasa was trying to portray in the last and best of his dramas His treatment of 'Bharya' or a 'Pativrita' in the earlier dramas presents particular aspects of an ideal wife—a Grihini To the indian mind, the Grihini represents a 'Complete woman', a repository of all the qualities necessary to make a perfect woman And Shakuntla is this Grihini (The Heroins of the plays of Kalidasa, Transaction No 7 p 7)

यही कारण है कि कवि ने कण्व के मुख से इन आशीर्वचनों के रूप में तत्कालीन आदर्श नारी का रूपचित्र प्रस्तुत किया और गुरुजन सेवा, पतिनिष्ठा, सपत्नी प्रेम, पुत्र-जन्म प्राप्ति सभी आवश्यक गुणों के रंग मे उसे सुष्ठु बना दिया । शकुन्तला का जीवन वस्तुत मौन-यन्त्रणाओं की कहानी है । इसी सहिष्णुता के कारण वह कालिदास की पूर्व नायिकाओं 'धरिणी' और 'असिनारी से उत्कृष्ट हो जाती है । बेचारी पैदा होते ही पिता और माता द्वारा अरक्षित छोड दी गई यौवन की देहरी पर पैर रखा तो पति प्रेमी ने भरे दरबार निकाल दिया । विधाता भी विपरीत रहा अन्यथा अभिज्ञान मुद्रिका क्या खो जाती ! इतना होने पर भी वह सदैव पति के हित चिन्तन ही में लीन रहती है कभी भी उसे अपशब्द नही कहती । 'गृहिणी' पद के लिए परमावश्यक तत्व सहिष्णुता का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है । कण्व ऋषि यह जानकर कि शकुन्तला जन्म ही से आश्रम मे रही है और उसने सदैव ही वैभव शून्य जीवन व्यतीत किया है अत एक व एक सार्वभौम ऐश्वर्य प्राप्त होने पर उसमे गर्व और अभिमान आ जाना सम्भव है उसे उपदेश देते समय 'भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी' कहना भी नही भूलते ।

शाकुन्तलोपाख्यान का काव्यानुवाद करने वाले सभी विद्वानों ने कमोवेशी आशीर्वचनों की चर्चा अवश्य की है । महाभारत और पद्मपुराण को छोडकर शेष स्थलों पर 'गृहिणी' के भाव ही का नही प्रत्युत शब्द का भी समाविष्ट किया गया है । कवि नेवाज ने भी कालिदास ही के भावों को प्रस्तुत पंक्तियों में उतारने की चेष्टा की है किन्तु उन्होंने उसमें दो विशेष परिवर्तन कर दिए हैं । एक तो 'वामा कुलस्याधय'' का भयद कथन निकाल दिया है और दूसरे 'आपन भेद कबहुँ नहिं कहियो'' को जोड दिया है । शकुन्तला के समान सदाचारिणी, सच्चरित्रा और भोली भाली लडकी को उल्टी चाल चलने पर ''कुलस्याधय' ''कुलदाय' और 'वेश-व्याधियों' की बदनामी की बात बताना अधिक संगत नही है यों भी विदा के समय प्राय इस ढंग की सीख नही दी जाती । सर्जनात्मक उपदेश ही श्रेष्ठ है भयद विनाशक और नकारात्मक सीख

चौपाई बिदा सषिन हू की[1] अब कीजे। अपने सग गौतमी लीजे[2] ॥
सकुंतला जल भरि असुवनि को[3]। रोवन लगी गलो[4] गहि मुनि को ॥
मिलि कै मुनि करि[5] दई बिदाई। सकुंतला सखियन ढिग आई ॥
सषियन मिलि गहि[6] गरे लगाई। असुवन की तब[7] नदी बहाई ॥
बिछुरन के दुख माह समानी। बडी बेर लो रोई चुपानी ॥
जो सराप[8] दुरवासा[9] दीन्हो[10]। सो सषियन अपने मनऽ[11] कीन्हो ॥
अनसूया[12] तब करि चतुराई। सकुंतला सो[13] बात चलाई ॥

१ सषीनहूँ को (A) २ कीज (B) ३ सकुन्तला दृग भरि आँसुनि को (AB) ४ गरो (AB) ५ कर (A) ६ सषियन गहि क (B) ७ सब (AB) ८ सरापु (B) ९ दुरवास (B) १० दीनो (AB) ११ मन मे अब (AB) १२ अनस्वीयें (B) १३ को (A)।

नही। कण्व, स्वप्न मे भी यह आशा नही कर सकते थे कि शकुंतला उनके बताए मार्ग के विपरीत कभी भी चल सकेगी अत यह त्रासजनक शब्दावली व्यर्थ है।

दूसरे परिवर्तन के सम्बन्ध में कथन यह है कि मुगल हर्म्यों मे अनेक रानियाँ रहती थी, दुष्यन्त के समय मे भी राजा का चार रानियाँ रखन का अधिकार था, महिषी (पटरानी) परिवृक्ति (उपेक्षिता) वावाता (प्रिया) और पालागली (किसी दरबारी अफसर का लडकी)—सभी रानिया राजा पर अपना प्रभाव जमाकर राजकाज मे महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त करने की चेष्टा करती रहती थी। नवाज दरबारी कवि होने के कारण तत्कालीन राजप्रासादो की आभ्यतर दशा से परिचित थे। वे जानते थे कि राजाओ के रनवासो म षडयन्त्र बनते और पलते है अत अपना भेद वहाँ किसी से भी कह देना जीवन से हाथ धो बैठने का कारण भी बन सकता है पर और मान की तो बात क्या! यही कारण है कि कवि नेवाज वन म पली, भोली भाली, विश्व व्यापारो स सवथा अप रिचित शकुंतला को राज प्रासादो का यह अनिवार्य 'गुर' बताना नही भूलते। वस्तुत यह कथन मुगलकालीन हर्म्यों की रीति नीति पर अप्रत्यक्ष आघात करता है।

नेवाज ने 'गहिणी पद' के महत्वपूर्ण शब्द को छोडकर कुल-वधू शब्द का प्रयोग किया है। सम्भवतया उनके समय तक भार्या गहिणी पत्नी आदि सभी शब्द विवाहिता नारी के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगे थे और एक दूसरे के पर्याय कहे जाने लगे थे। गृहिणी' 'भार्या और पतिव्रता का जो मुख्य अर्थ था, वह जन सामान्य मे प्रचलित नही रहा था इसीलिए उन्होने यह शब्द परिवतन बिना किसी सोच विचार के कर लिया।

प्रथम श्लोक की तृतीय पक्ति और द्वितीय श्लोक के भाव भी नेवाज म प्राप्त नही हैं। वस्तुत नवाज के यह आशीवचन ऐसे ही हैं जैसे प्राय लोक गीतो म यत्र तत्र आभासित हो जाते हैं, उनमे कोई क्रमबद्धता वर्णनिकता और सूक्ष्म प्रयोजनीयता नही रहती। कालिदास के इन अनुपम श्लोकों से नेवाज के एतद् विषयक काव्य की कोई तुलना नही की जा सकती।

चौपाई–भटकत चित्त बहुत काजन[1] मे। सुधि वैसी न रहत राजन[2] मे ॥
समयो वीति गयो बहुतेरो । नृप जो नेह[3] विमारै तेरो ॥
जा नृप गयो ग्रगूठी दय है । वाहि[4] लपत ही फिरि सुधि ग्रै है ॥ (1)
सुनु सपि यह तैं मति विसरावै । कहू ग्रगूठी जान[5] न पावै ॥१२५॥

---

१ काजनि (AB)　　२ राजनि (AB)　　३ नेहु (B)　　४ वाही (A)
५ गिरन (AB)

1– शकुन्तला की इस कथा मे ग्रगूठी का यह प्रसग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ग्रगूठी ही दुष्यन्त के उन वचनों का मात्र प्रमाण है जो उसने गान्धर्व विवाह के समय शकुन्तला को दिए थे। इसके ग्रतिरिक्त प्रियम्वदा ग्रौर ग्रनसूया तो भली भाँति जानती है कि बिना इस ग्रभिधान को दिखाए राजा दुष्यन्त, शकुन्तला को पहचान ही नही सकता ग्रौर ऐसी स्थिति मे उनकी ग्रभिन्न सखी का गार्हस्थ्य जीवन ग्रत्यन्त नारकीय हो जावेगा। ग्रत इस ग्रगूठी का महत्व प्राणो से भी ग्रधिक है। ग्राश्चर्य की बात है कि विदा के समय भी कालिदास ने सखियो के द्वारा इस ग्रतीव महत्वशालिनी ग्रगूठी को सभाल कर रखने की सलाह शकुन्तला को नही दिलवाई है। सामान्य जीवन मे भी हम देखते हैं कि जब कोई तरुण-सम्बन्धी जो पहली बार ही यात्रा कर रहा हो, विदा होता है तो बुजुर्ग हर चीज के बारे मे उससे कई-कई बार पूछ ताछ कर लेते है। ग्रमुक वस्तु सभालकर रखली है, रुपया पैसा कहा रखा है, कागजात तो सब ले लिए है न, ग्रादि सभी बातें वे पूछा करते हैं ग्रौर यथोचित सावधानी बरतने की सीख भी देते हैं। किन्तु कालिदास ने शकुन्तला के जीवन की समस्त सम्पत्ति रूप ग्रगूठी के महत्व से उसे तनिक भी ग्रवगत नही कराया। प्रासंगिक रूप मे केवल इतना कहलवा दिया है।

सख्यौ– (तथा कृत्वा) सहि ! जहि णाम सो राएसी पच्चाहण्णाणमन्थरो भवे, तदो से इम ग्रत्तणो णामधेग्रङ्किद ग्रङ्गुलिग्रग्र दसइस्ससि ।
श०– इमिणा वो सन्देसेण कम्पिदं मे हिग्रग्र ।
सख्यौ– सहि ! मा भाग्राहि। सिणेहो पावमासङ्कीदि।

राजा साहब ने इसी का ग्रनुवाद इस प्रकार किया है –
दोनो सखी– (भेंटकर) हे सखी, कदाचित राजा तुझे भूल गया हो तो यह मुन्दरी जिस पर उसका नाम खुदा है दिखा दीजो।
शकु०– तुम्हारे इस सन्देह ने तो मुझे कपा दिया है।
दोनो सखी– कुछ डरने की बात नही है ग्रति स्नेह में बुरी शङ्का होती ही है।

कविवर मैथलीशरण गुप्त ने ग्रगूठी दिखा देने की सीख का उल्लेख नही किया है। कालिदास ने भी यह बात यकायक बिना किसी भूमिका के कहलवा दी है कारण भी 'स्नेह पापशङ्की' व्यक्त किया है। कवि नेवाज ने इस प्रसङ्ग को इन व्यक्तियो की ग्रपेक्षा ग्रधिक महत्व दिया है उन्होने सखियो द्वारा ग्रगूठी को सभाल कर रखने की निश्चित बात

चौपाई–तब मयियन[1] यह बचन[2] सुनाया। रघु[3] दुपहर दिन चढ़ि आया॥
विदा देहु[4] अब छोड़ो[5] बाते। तबहु उतावन पहुँचो[6] जाते॥१२६॥
दोहा—चले[7] सिष्य अरु[8] गौतमी, सकुन्तला के साथ।
लाऊ मयियन सात[9] ने, उते तब[10] मुनि नाथ॥१२७॥ (1)

१ सिष्यन (A) मिष्यन (B) २ बानु (B) ३ बेरयो (B) ४ होहु (AB) ५ छोड़हु (AB)
६ पहुच (B) ७ चल (A) ८ औ (A) ९ साथ (A) १० चल्यो (A)

प्रयत प्रभावशाला ढग म यह दृश्य है। यहा प्रतिरिक्त उत्थान राजा व भूल जान की सम्भावना का जो कारण व्यक्त किया है उसमें भी कालिदास की अपेक्षा अधिक ग्राह्य (appealing) है। नवाज दरबारी कवि थे अत राजाओं के स्वभाव और उनकी दिनचर्या का उन्हें अच्छा ज्ञान था। सम्भवत स्थापित राजाओं की पति-उपस्थिता और भोग काल व्यतीत हो जाने का भूल जाने की सम्भावना का सुग्राह्य कारण वे प्रस्तुत कर सके हैं। सखी अनसूया की कथन चातुरी भी यहा दृष्टव्य है।

1–महाभारत म यह स्पष्ट नहा किया गया है कि शकुन्तला को पति-गृह छोडने के लिए कौन कौन जाते हैं सम्भवत उस युग म यह कोई महत्वपूर्ण बात न रहा होगी। पद्मपुराण म शकुन्तला के इन सहगामियो का स्पष्ट उल्लेख है यथा —

> इति तस्य वच श्रुत्वा गौमती च प्रियंवदा।
> मुनि शाङ्गरव शिष्यस्तथा शारद्वतो मुनि॥
> तथेति प्रतिगृह्याथ मुनराज्ञा स्वमूर्द्धसु।
> शकुन्तला पुरस्कृत्य प्रस्थान प्रतिपेदिरे॥

कालिदास के काल तक आते आते इनकी सख्या कम हो गई और शकुन्तला की प्रिय सखा प्रियवदा को तपोवन ही म छोड दिया गया। यहा तक कि शकुन्तला के यह कहने पर कि 'ताद! इदो ज्जेव किं पियसहीओ णिउत्तिस्सन्ति'' (अर्थात् पिताजी। क्या यह सखिया इसी जगह से लौट जायेंगी) कण्व ऋषि यह कह देत हैं कि 'वत्से! इमे अपि प्रदेये, तन्न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी गमिष्यति। (अर्थात् पुत्री! मुझे इन्हें भी तो (किसी उत्तम वर के हाथो) देना है अत इनका वहा जाना उचित नही है। तुम्हारे साथ गौतमी जाएगी।

इस प्रकार कण्व और शकुन्तला का यह सम्वाद एव प्रियवदा का राजसभा म न जाना यह अभिव्यञ्जित करता है कि अविवाहित युवती कन्याओ का उस समय नगर और राज-सभाओ आदि म जाना नारीगत मानादि के हित मे ठीक न था। इसके अतिरिक्त एक सकत यह भी प्राप्त होता है कि उस काल म कन्याओं का विवाह प्राय तभी किया जाता था जब वे पूर्ण यौवनवती एव पुष्पवती हो जाती थी डा० भगवतशरण उपाध्याय का भी यही मत है'' The marriageable age was considered to fall in the post puberty period '—India in Kalidasa, p 184

चौपाई सूना सा सिगरा[1] जग[2] लेपै। दोनों सपियन[3] फिरि फिरि दपै॥
कछुक दूरि आगे जब डोली। हाथन मोडन सपिया[4] वाली॥
हाय[5] द्रुमन की ओट[6] दुराई। सकुन्तला नहि दत देपाई॥
सपियन लै मुनि आश्रम आयो। सकु तला पति पुर नजिकायो[7]॥
दोहा—पति पुर मारग निकट म[8], देख्या भरा तलाउ।
सकुन्तला प्यासी भई गई तहा करि चाउ॥१२९॥
चौपाई पानी पियो प्यास तब भागी। सकु तला मुप धोवन लागी॥
भयो विनास[9] महा वा[10] पल म। करत गिरो अ गूठी जल म॥
गई अ गूठी गिरि[11] जल माही। सकुन्तला का कुछ सुध नाही॥१३०॥ (1)

---

१ सिगर (A) २ घरू (B) ३ दाऊ सपियां (AB) ४ हायनि मोंजत फिरि यो (AB)
५ गई (A) ६ वाट (A) ७ नगिचायो (AB) ८ म (B) ९ विनासु (B)
१० वहि (A) उहि (B) ११ गिरी अ गूठो जब (AB)

नवाज न कालिदास कालीन इस परम्परा का बनाए रखा है क्योंकि मुगल शासन भी नारी का पवित्रता और सुरक्षा क विचार से कोई उल्लखनीय काल नहा है तब भी नारी का नगर क रसिका और राज-सभाओं क वाक्पटु दरबारियों म मनाक ही रहना पडता था। अत शकु तला क साथ यहा ना केवल गौतमी शाङ्ग रव और शारद्वत ही जाते हैं—प्रियम्वदा और अनसूया नहा।

1—अगूठी का यह प्रसग महाभारत म ता है ही नहा। पद्मपुराण म है और ठीक इसी स्थल पर वह चित्रित किया गया है। शाकुन्तल और पुराण क इस प्रसग में समधिक अन्तर है। अभिज्ञान शाकु तल क अनुसार शकु तला क हाथ से उसकी अन वधानता के कारण शक्रावतार नामक गाँव म अवस्थित शचीतीर्थ पर जल का प्रणाम करत समय वह अगूठी गिर गई था जैसा कि गौतमी क इस कथन म प्रमाणित है "नूणं दे सक्कावदारे सचीतीत्थोदअं वन्दमाणाए पब्भट्ठं अगुलीअअं। पद्मपुराण म हस्तिनापुर जाते हुए शकु तला और उसक सहचारी मध्याह्न काल मे सरस्वती नदी के पावन तीर पर मध्याह्न क्रिया सम्पन्न करने के हेतु रुकते हैं। प्रियवदा और गौतमी स्नानार्थ जल मे उतरती हैं। उनक स्नान कर लेन पर शकुन्तला भी स्नान के लिए जल म उतरती है और अगूठी उतार कर प्रियवदा का सौप देती है। प्रियवदा उस सभाल कर अपने वसनाञ्चल में रख लती है किन्तु वह किसी प्रकार जल मे गिर जाती है। प्रियंवदा डरती है किन्तु यह बात शकुन्तला से कहती नही और शकु तला भी अगूठी की बात पूछना उस समय तक भूल जाती है जब तक राजसभा म उस अभिज्ञान रूपिणी मुद्रिका को दिखाने की आव श्यकता उपस्थित नही हो जाती।

नेवाज का चित्रण दोनों ही से भिन्न है उन्होने शकुन्तला क द्वारा उस पावनतीर्थ को न ता प्रणाम करने की बात कही है और न मध्याह्न क्रिया सम्पन्नार्थ

दोहा-सिष्यन सहित¹ शकुन्तला, आई नृप के द्वार।
बिलवति² (1) में बैठो हुतो, तब नृप करि दरबार ॥ १३० ॥

१ सग (AD) २ बिलवति (AD)

स्नान की, प्रत्युत सामान्य पथिक की भाँति उसे प्यासा चित्रित किया है, जो केवल प्यास बुझाने के लिए तीर्थकुण्ड के पास जाता है। प्यास की अकुलाहट के समय अंगूठी का अंगुली से निकल जाना और उसे पता न चलना अत्यन्त स्वाभाविक है। नेवाज ने 'भया विनास महा या पल में' कह कर भविष्य में होने वाले अनर्थ की ओर भी सङ्केत प्रक्षिप्त कर दिया है। कथा शिल्प की दृष्टि से ऐसे सङ्केत श्लाघनीय हैं।

जहाँ तक इस प्रसङ्ग के स्थान सन्निवेश का प्रश्न है। नेवाज ने पद्मपुराण के उपाख्यान का अनुसरण किया है। कालिदास के अनुसार विस्मृति के उपरान्त शकुन्तला राज दरबार में ही दिखाई देती है मार्ग की किसी घटना प्राप्ति का उल्लेख वहाँ नहीं है। दर्शक उस समय तक, इस सम्बन्ध में यही धारणा बनाए रखता है कि अभिज्ञान शकुन्तला के पास है, जब तक कि उसे दिखाने का अवसर नहीं आ जाता और गौतमी उक्त वचन नहीं कहती। कथानक में जिज्ञासा बनाए रखने के लिए नाट्यीय दृष्टि से कालिदास का यह प्रयोग सुन्दर है। किन्तु पाठ्य नाट्य में यह प्रसंग कालिदास के अनुसार चित्रित किया जाना सम्यक नहीं था। यही कारण है कि नेवाज ने उसे मार्ग ही में वर्णित करके एक ओर भविष्य के भयावह परिणाम की ओर संकेत किया और दूसरी ओर नाट्यकाव्य का औचित्य निभाया।

1-'खिल्वत' अरबी का स्त्रीलिङ्ग शब्द है अर्थ होता है उत्पत्ति, सृष्टि, पैदाइश, जनता, जनसाधारण अवाम। अतः अर्थ होगा कि राजा दुष्यन्त दरबार करने के उपरान्त जनसाधारण' के मध्य बैठा था। किन्तु राजाओं की दैनिक चर्या में इस प्रकार की किसी रस्म की चर्चा पढ़ने-सुनने में नहीं आई। प्रायः राजदरबार से निवृत्त होकर राजा भी रनिवास में जाता है और सामान्य व्यक्तियों की भाँति विश्राम करता है। कवि कालिदास ने कञ्चुकी के अध्याय कथन के द्वारा इसी बात की सूचना दी है कि महाराज धर्मासन से उठकर अभी भीतर गए हैं यावदभ्यन्तर गताय देवाय'। इतना ही नहीं उन्होंने दुष्यन्त की प्रजानुरक्ति तथा तदहेतु कार्यसंलग्नता की ओर भी दर्शकों का ध्यान आकृष्ट किया है यथा —

प्रजा प्रजा स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते श्रान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संञ्चार्य्य रविप्रतप्त
शीत गुहास्थानमिव द्विपेन्द्र ॥५।३॥

'श्रान्तमना' 'विविक्तम्' पदों का प्रयोग विवेच्य है। शासन के कार्यों से परिश्रान्त होकर एकान्त में, विजन प्रदेश में गए हैं विविक्त पूतविजनौ' इत्यमर। अभिज्ञान-शाकुन्तल के अनुवादकों ने भी इसी भाव को अभिव्यक्त किया है यथा —

चौपाई–सिप्यन की बातें सुनि लीन्ही। पोजन[1] जाय खबर[2] तब कीन्ही ॥
महाराज मुनि कन्नु पठाये। सिप्य दोइ वर वारहि[3] आये ॥
लीन्हे[4] सग ललित द्वै नारी। कियो चहत जनु[5] नजरि तिहारी ॥
नारी सुनि नृप अचरज[6] माया। अति ही चिता मे चित[7] आयो ॥
निकरि[8] जज्ञसाला म आयो। मुनि सिप्यन को निकट[9] बुलायो[10] ॥१३१॥ (1)

१ पोज (AB) २ अरेज (A) खबरि (B) ३ दोऊ द्वारे मे (AB) ४ लीने (AB)
५ हैं (B) ६ अचरजु (AB) ७ मनु (B) ८ निकसि (AB) ९ AB प्रति मे नहीं है
१० बुलवायो (A) बोलवायो (B)

पालि प्रजा सतान सम थकित चित्त जब होई।
ढूँढत ठौंव एकात नृप जहाँ न आवे कोई ॥—शकु० ना० ५।१०७॥
अपनी प्रजा-समान प्रजा की देख भाल क कर सब काम,
थके हुए ये बैठ गए हैं निर्जन में करने विश्राम।
—शकुतला (अनुवाद) वागीश्वर विद्यालङ्कार, पृ० ७२॥

इस प्रकार न केवल राजाजनोचित दिनचर्या की दृष्टि से अपितु 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के प्रकाश में भी यह 'पिलकति' शब्द उपयुक्त नहीं है। फिर क्या हो ?

प्रति सख्या A और B में इस स्थल पर 'पिलवति' शब्द है जो निःसदेह अरबी शब्द 'खल्वत' का अपभ्रष्ट रूप है। 'खल्वत' का अर्थ है जहाँ कोई दूसरा न हो, एकात, तन्हाई स्त्री-पुरुष का एकात वास। कविराट कालिदास के भावों का अनुमोदन इस 'पिलवति' पाठ के द्वारा समधिक होता है। राजा उठकर रनिवास मे चला गया है ऐसा अर्थ भी व्यञ्जित है। मुगल बादशाह तो प्राय दरबार के बाद 'हरम' ही मे जाया करते थे और अपनी बेगमात के साथ एकान्त वास करते थे। अत कवि नेवाज ने 'पिलवति' शब्द ही का मूलत प्रयोग किया होगा, बाद मे लिपिकर्त्ता की भूल से यह 'पिलकति' बन गया है।

1–महाभारत में ऋषि शिष्यों के आगमन की सूचना आदि दिए जाने का कोई उल्लेख नही है। वहाँ तो बिना किसी भूमिका के शकुतला को बालार्कसम तेजस्वी सर्वदमन के साथ दुष्यन्त के समक्ष खडा कर दिया गया है। पद्मपुराण मे राजद्वार पर पहुँच कर महामति कण्व के शिष्य अपने आगमन का समाचार राजा दुष्यन्त से निवेदन करने के लिए प्रतीहार से कहते हैं। अपने साथ शकुन्तला तथा अन्य दो द्विजस्त्रियो के आने की बात भी कहते हैं —

"राजद्वार समासाद्य कण्व शिष्यौ महामत।
ऊचतुस्ता प्रतीहार 'तूर्णं राज्ञे निवेदय ॥
काश्यपस्य निदेशेन राजद्वारमिहागतौ।
शिष्यौ तस्य शार्ङ्गरव शारद्वतसमाह्वयौ ॥
सुता तस्य च कल्याणी द्वे अन्ये च द्विजस्त्रियौ।
प्रतीहारस्ततो गत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥"

दोहा–सिप्यन पीछे गौतमी, पैठी नृप के द्वार।
पीछे सबके ह्वै चली, सकुन्तला दरवार ॥१३२॥

इसी स्थल पर पद्मपुराणान्तर्गत शाकुन्तलोपाख्यानकार ने राजा दुष्यन्त के अन्तर्द्वन्द का भी चित्रण किया है जैसा कि महाभारत में नहीं है। वह सोचता है कि कण्व मुनि के शिष्य स्त्रियों के साथ यहाँ क्या आए हैं कहीं कण्वाश्रम में राक्षसगण कोई अनय तो नहीं करते, क्या वे दुष्टात्मा मुझ राक्षसान्तक दुष्यन्त को नहीं जानते। कहीं ऐसा तो नहीं कि तपोवन के नियमों का उल्लंघन पशुओं द्वारा किया जाने लगा है और सिंह, व्याघ्रादि हिंसक जन्तु स्त्रियों, बालकों और वृद्धों को मारने लगे हैं। और मैं भी तो दीर्घकाल से मृगया के लिए उधर नहीं गया (दुष्यन्त कण्वाश्रम के समीप की मृगया की बात भी भूल गया है—शकुन्तला परिणय और उसस वचनबद्ध होने की बात तो भला क्या याद रही होगी पाठक अनुमान कर सकते हैं।) कहीं ऐसा तो नहीं कि वनवृक्षों पर फल न आते हों और तपस्वीजन आहार के अभाव में कष्ट पा रहे हों आदि —

कथमेतौ मुने शिष्यौ स्त्रीभिरेताभिरावृतौ ॥

× × × ×

किं कण्वस्याश्रमे कश्चिद्राक्षस कुरुतेऽनयम् ॥

न जानाति हि दुष्टात्मा दुष्यन्त राक्षसान्तकम्। किं वने पशवस्त्यक्ता नियमं मुनिना कृतम् ॥
बाधन्ते व्याघ्र–सिंहाद्या स्त्रियो बालान् जरायुतान्? मृगयाऽपि मया तावन्नकृता पुरवासिना ॥
किं वा वयफलान्यत्र प्रभवन्ति न कानने। तेनाहारविनाभावाद् दुःखितास्त तपोधना ॥

कवि सम्राट कालिदास ने इस प्रसंग को काफी बढ़ा चढ़ा कर चित्रित किया है। उन्होंने कण्व मुनि के शिष्यों द्वारा प्रतीहार को दी हुई स्वागमन की सूचना और प्रतीहार द्वारा राजा से वही निवेदन किये जाने के अन्तराल को बहुत अधिक बढा दिया है। इसी समय के बीच में उन्होंने राजा दुष्यन्त के दो रूपों—शासक और पति—को भी यत्किञ्चित स्पर्श किया है। आदर्श राजा को कितना प्रजानुरंजक, कर्त्तव्य परायण और कर्मठ होना चाहिए इस ओर भी कविराट ने संकेत किए हैं। वस्तुतः इस रीति से उन्होंने तत्कालीन राजाओं के समक्ष एक आदर्श शासक का रूप उपस्थित किया है। राजा के लिए राज्य, सुख और वैभव का साधन नहीं है प्रत्युत यह तो उस छत्रदण्ड के समान है जो तकलीफ अधिक और आराम कम देता है। राजा दुष्यन्त का यह अभिप्राय कथन इसका प्रमाण है :—

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथाश्रमाय
राज्यं स्वहस्तधतदण्डमिवातपत्रम् ॥५।५॥

इतना ही नहीं कंचुकी भी राज धर्म के सम्बन्ध में लोक प्रचलित धारणा को अभिव्यक्त कर इसी कथन का अनुमोदन करता है (अभि० शा० ५।४) इसके अतिरिक्त

दो वैतालिक भी राजा दुष्यन्त की स्तुति के व्याज से राजा के कर्तव्यों ही का निरूपण करते हैं (अभि० शा० ५।६, ७)

रानी हसपादिका या हसवती के निम्नगीत द्वारा दुष्यन्त का पतिरूप यत्किञ्चित आभासित है —

अहिणव—महु—लोइ—भाविदो
तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरि ।
कमलवसदिमेत्तणिव्बुदो
महुअर ! विह्मरिदोसिणं कह ।। ५।८ ।।

अर्थात् हे भ्रमर ! (तब तो) तुमने नूतन रस के लाभ मे पड़कर आम की मंजरी का चुम्बन किया था, अब केवल कमल पर निवास करने से सन्तुष्ट होकर उस आम्रमञ्जरी को तुम क्या भूल गए ? क्या इस गीत के द्वारा ऐसा कुछ प्रतिपादित नहीं होता कि दुष्यन्त भ्रमर इव अनेक आम्रमञ्जरियों का रस लेकर फिर उन्हें छोड देता था। नारी उसके लिए मात्र रसवन्ती थी, उसका रसग्रहण करना ही दुष्यन्त का प्रयोजन था। हसवती का यह शिकवा उस पर कोई असर न कर सका वह पाषाण हृदय पुरुष अनृत नारी के इस मर्मान्तक व्यग से भी विचलित न हुआ वरन् मुस्करा कर अपने सखा से कह उठा— सखे ! गच्छ, नागरिकवृत्या सान्त्वयैनाम्' जाओ, उसे नागरिकवृत्ति से समझा दो। यह नागरिक वृत्ति क्या है ? छल कपट, झूठ, मिथ्याश्वासन आदि। जैसे नगर के मन चले रसीले छैला आज भी अनेक आम्रमञ्जरियों का रसाकर्षण करने के लिए किया करते हैं।

कवि कालिदास ने भले ही एतद् प्रसग द्वारा दुष्यन्त की अन्यमनस्कता प्रदर्शन का आयास किया हो, किन्तु हसवती का यह गीत तो उसके चरित्र की दुर्बलता ही का व्यञ्जक सिद्ध होता है।

इसके उपरान्त कञ्चुकी सस्त्रीक तपस्वियों के आगमन की सूचना निवेदित करता है। प्रत्युत्तर मे राजा अध्यापक सोमरात के निमित्त आदेश देता है कि ऋषियों को वैदिक विधान से सत्कार करके यज्ञशाला मे लाया जावे। वह स्वय भी वेत्रवती के साथ होमगृह (यज्ञशाला) की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग में वेत्रवती से बातचीत करते हुए वह अपने मन की शकाएँ प्रस्तुत करता है। ये शकाएँ लगभग वे ही हैं जो पद्मपुराण म उपलब्ध हैं यथा —

राजा—वेत्रवति ! किमुद्दिश्य तत्रभवता कण्वेन मत्सकाशमृषय प्रेषिता ?
किन्तावद्व्रतिनामुपोढतपसा विघ्नैस्तपो दूषित ?
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ?
आहास्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा ?
मित्याहढ बहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुल मे मन ।।५।१०।।

राजा लक्ष्मणसिंह जी ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है —

तपसीन के कारज माहिं किधौ अब आय बडो कोई विघ्न परयो।
वनचारी किंधो पशुपक्षिन मे काहू दुष्ट नयो उत्पात करयो॥
फल फूलिने वेलि लता वन को मति मेरे ही कर्मन तें गिरयो।
इतने मुहि घेर सन्देह रहे इन धीरज मेरे हिये को हरयो॥

—शा० ना० ११ पृ० ८६॥

कविवर डॉ० मथिलीशरण गुप्त ने राजा दुष्यन्त के इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण नही किया है। उन्होंने तो महाभारत के एतद् विषयक उपाख्यान की भाँति एक दम राजा के समक्ष इन सबको ला उपस्थित किया है। पद्मपुराण म वन-तृष्णा के प्रसवित न होने की संभावना तो दी गई है किन्तु उसका कारण राजा के कर्म नही माने गए हैं। कालिदास के काल तक सम्भवतया राजा ही को इन सबका उत्तरदायी समझा जाने लगा था और लोग विश्वास करने लगे थे कि —

राज्ञोऽपचारात्पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत् किल।
अल्पायुष प्रजा सर्वा दरिद्रा व्याधिपीडिता॥

इस प्रकार राजा का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ गया था वह सप्रभु था उसम आदर्श मानव का आदर्श अधिष्ठित हो गया था। सामन्तवादी परम्परा का प्रतीक होकर भी वह प्रजा की आध्यात्मिक भौतिक सामाजिक आर्थिक व्यावसायिक आदि सभी प्रकार की उन्नति के लिए जिम्मेदार था।

पद्मपुराण और अभिज्ञान शाकुन्तल का दुष्यन्त यो तो अनेक प्रकार की चिन्ताएँ करता है किन्तु तपस्विया के साथ स्त्रिया भी आई हैं इस सम्बन्ध मे वह तनिक भी नहा विचारता। क्या राज सभा मे इस प्रकार तरुणी तपस्विनियाँ प्राय आया करती थी? यदि नही तो राजा का इस सम्बन्ध मे तनिक भी सशकित न होना आश्चर्यजनक है। पद्मपुराण मे तो शकुन्तला के साथ प्रियम्वदा भी राज दरबार में जाती है किन्तु अभिज्ञान शाकुन्तल म ऐसा नही है प्रत्युत वहाँ तो शकुन्तला के यह कहने पर कि पिताजी क्या सखियाँ इसी जगह से लौट जायेंगी कण्व का स्पष्ट कथन है कि वत्से। इमे अपि प्रदेये, तन्न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। अप्रत्यक्ष रूप से कण्व ने यही कहा है कि यौवन सम्पन्ना बालाओ का राज सभा मे जहा नागरिक वृत्ति सम्पन्न पुरुष होते हैं जाना ठीक नही है। आशय यह है कि तत्कालीन समाज-व्यवस्था मे भी युवती नारिया सार्वजनिक स्थलो पर प्राय नहीं जाया करती थी। अत सस्त्रीक तपस्विया के आगमन की सूचना मिलने पर दुष्यन्त का इस सम्बन्ध म सोचना भी आवश्यक था। कवि नेवाज ने इसी हेतु नारिया के आने की बात को प्रधानता दी है और चिन्ता का मुख्य कारण माना है।

नेवाज का काल और कालिदास का समय सास्कृतिक आस्थाओ और विश्वासो की दृष्टि मे बहुत अधिक भिन्न है। कालिदास के काल में जहा राजा का आदर्श

चौपाई–राजा करि सनमान बोलाय[१] । या विधि सिष्य कन्नु के आये[२] ॥
सकुन्तला लाजहि गहि गाढे । आई पिय घर घूघुट[३] काढे ॥
बडी अभाग आनि तब जाग्यो । नयन दाहिनो फरकन[४] लाग्यो ॥
यह असगुन तब आनि जनायो[५] । सकुन्तला के दृग[६] भरि आयो[७] ॥१३३॥(1)

१ बोलायो (AB) २ आयो (AB) ३ घूँघट (A) ४ धड़कन (A)
५ जनाये (B) ६ दृग (AB) ७ आये (B)

इतना अधिक महान था वहा नेवाज के समय मे कञ्चन, कामिनी और कादम्ब के मद मे चूर रहना राजाओ का चरम था । अत राजकर्म की गरिमा का बखान करना सम्भवत नक्कारखाने मे तूती की आवाज के समान ही होता । अत नेवाज ने इस प्रसङ्ग को अछूता ही छोड दिया । हा, योजा के द्वारा 'नीके सङ्ग ललित द्वै नारी । किया चहत जनु नजरि तिहारी ॥' कहलवा कर तत्कालीन राजाओ की विलास लिप्सा और स्त्रैण भावना की तीव्रता का अच्छा परिचय दे दिया है । क्या इसी प्रकार सामन्त, सरदार, दरबारी, जन-साधारण और साधु-सन्त असूर्यम्पश्या तन्वङ्गी, कोमलाङ्गी युवतियो को राजाओ की नजर किया करते थे ? प्रश्न विचारणीय है । सम्भव है इतिहास के पृष्ठ न बोलें किन्तु नेवाज सरीखे अन्यान्य साहित्यकारो की रचनाओ मे ऐसे स्पष्ट सकेत अवश्य मिल जावेंगे ।

नेवाज ने सामरात पुरोहित के द्वारा तपस्वियो के वैदिक विधान मे सत्कार आदि की चर्चा भी नही की है प्रत्युत यज्ञशाला मे पहुँचकर मुनिशिष्यो का वहा बुलाने की बात सीधे से ढग से कर दी है । सम्भवत इसका कारण भी मुगल दरबारो मे तपस्वियो, मुनियो, साधु-सन्तो आदि के विशेष आदर का अभाव रहा है । अन्यथा भारतीय सस्कृति के अनुसार तपस्वियो का यथोचित आदर करना राजाओ के लिए अनिवार्य है ।

1–इस चौपाई मे 'परिकर' नामक मुखसन्धि है जिसका लक्षण है "यदुत्पन्नार्थबाहुल्य ज्ञेय परिकरस्तु स" । शकुन्तला के दक्षिण अग का फडकना भविष्य के अशुभ का सूचना देता है । शकुन शास्त्र के अनुसार 'वामभागस्तु नारीणा पुसा श्रेष्ठस्तु दक्षिण' कवि कालिदास ने भी इस प्रसग का उल्लेख किया है —

शकुन्तला—(दुर्निमित्तमभिनीय) अम्मो । किं मे वामेदर णअण विप्फुरदि । गर्ग ऋषि के अनुसार नारी का दाहिना नेत्र फडकना बन्धु विछोह होता है —

दक्षिणचक्षु स्पन्दे बन्धु दर्शन अर्थ लाभ वा ।
वामचक्षु स्पन्दे बन्धुविच्छेद धन हानि वा ॥

डॉ० मैथिलीशरण गुप्त ने इस प्रकार की कोई शकुनशास्त्र सम्बन्धी भूमिका प्रस्तुत नही की है । उन्होने मनोवैज्ञानिक ढग से शकुन्तला के हृदय को सकम्पित चित्रित किया है —

चोपाई– डीठि पसारि बिसारि[1] निमेषन। सकुन्तला नृप लाग्यो देषन[2]॥
छवि लषि अद्‌भुत रस सा[3] पाग्यो। मन मन नृपति कहन यो[4]लाग्यो॥ (1)
को हय नारि कहा यह आई। वन मे मुनिन कहा यह पाई॥
जानि न परत कहा ये आये[5]। इहा याहि काहे को लाये[6]॥
यह विचार नृप मन म[7] कीन्हो। आसिरवाद मुनिन तब दीन्हो ॥१३४॥

---

१ निसारि (A)　२ सकुंतला लागी तब देषन (B)　३ में (AB)　४ यों (B)
५ पाये (AB)　६ ल्याये (AB)　७ यह विचारि मन मे नृप (AB)

"पहुँची शकुन्तला जब प्रिय के निकट हस्तिनापुर में,
उठने लगी भावनाएँ तब बहुविध उसके उर मे—
देखूँ आर्यपुत्र अब मुझसे मिलकर क्या कहते हैं?
हृदय। न शक्ति हो तुझ पर वे सदा सदय रहते हैं॥ —शकु० पृ० २८॥

1–आपको स्मरण होगा एक बार पहले भी शकुन्तला की अनाविल यौवन-श्री पर यही राजा दुष्यन्त लुट सा गया था (प्रथम तरंग पृ० ३३।४०) किन्तु परिणाम क्या हुआ—दीर्घ-कालीन वियोग। आज फिर उसकी रूपशिखा के प्रति ललक उत्पन्न हो रही है। यद्यपि दुष्यन्त शकुन्तला की सुन्दरता का पान पहले भी कर चुका है तथापि शाप-वश वह घटना उसे स्मरण नही रही है इसीलिए शकुन्तला का साम्मुख्य प्रथम न होते हुए भी प्रथम दर्शन की तीव्रता हीं उत्पन्न कर रहा है। नेवाज का दुष्यन्त तो एक-दम चित्रलिखित-सा बन गया है—उसे स्थान और पद का भी ध्यान नही रहा है—वास्तव में शकुन्तला की सौन्दर्य राशि में खो गया है वह। कवि कालिदास ने दुष्यन्त को इतना अधिक रूप-लोभी चित्रित नही किया है उन्होंने राजा की मर्यादा का ध्यान रखा है यहाँ तक कि प्रतीहारी के यह कहने पर कि इसकी आकृति बडी सुन्दर जँचती है राजा दुष्यन्त की स्पष्टोक्ति है भवतु अनिवर्ण्य खलु परकलत्रम् अर्थात कुछ भी हो परायी स्त्री को देखना उचित नही है। इस प्रकार महाराज दुष्यन्त के चरित्र की सत्वावस्था भी अभिव्यञ्जित हो गई है और साथ हो सौन्दर्य के प्रति मानव का सहज आकर्षण भी निम्न श्लोक मे मुखर हो गया है —

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥५।१४॥

राजा लक्ष्मणसिंह का अनुवाद इस प्रकार है —

घूघट पट की ओट दे को ठाढ़ी यह बाल।
पूरो दीठ परे नही जाको रूप रसाल॥
यह तपसिन के बीच में ऐसी परति लखाय।
लई मनो कोपल नई पीरे पातन छाय॥–शकु०ना० ५।११५॥

पद्मपुराण म चित्रित दुष्यन्त भी शकुन्तला के रूप के प्रति इतना आकृष्ट नही है जितना नवाज का। यहाँ तक कि पुरोहित के शकुन्तला के रूप के सम्बन्ध म यह

दोहा—आसन ते उठि दूरि ते, कीन्हेहु[1] नृपति प्रनाम ।
छेम कुसल पूछन लग्यो[2] छोडि और सब काम ॥ १३५॥
चौपाई– कहौ कुसल है मुनि वनवारे। कहौ कनु गुरु कुसल तिहारे ॥
पूछी नृपति कुसल की बातैं। बोले फिरि मुनि चातुरता तैं ॥१३६॥
दोहा—महाराज के राज म, रह्यो न दुष को हेत।
तपन तरनि के तेज में तम न देषाई देत[3] ॥१३७॥
जिनके आसिरवाद ते लोग अमर व्है जात ॥
तिन सिद्धन के[4] कुसल की कौन चलावे[5] वात ॥१३८॥ (1)

---

१ कीनो (A)कीन्हो (B)२ 'लग्यो और 'छोडि' केबीच मे 'नृपति' शब्द B प्रति मे और है।
३ B प्रति मे यह दोहा इस प्रकार है — ४ की (B) ५ चलये (AB)
महाराज के राज म दुप न देषाई दत।
तपत तरनि के तज मे तमु दीमै केहि हत ॥

कहने पर भी कि 'विलावय भविना नान्यरूप दर्शनलालसा और गौतमी द्वारा शकुन्तला का शिरश्छान्नमम्बर' हटा दिए जाने पर भी दुष्यन्त यही कहता है कि —
पौरवाया वुनै जाता सता मार्गं वृतामना ।
न वय रूप मात्रेण गणिकाना भ्रमामहे ॥

इस प्रकार पद्म पुराण और अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यन्त को उन्नत चरित्र वाला और परनारी का सम्मान करने वाला चित्रित किया है। श्री एम० आर० काले का एतद्सम्बन्धी कथन सर्वांशत सत्य है —

This bears testimony to the kings lofty character and high sense of moral duty The poets object is to describe the king s love for Sakuntala a mere accident as far as his life is concerned He tries to depict his true character here and through out this act as a sublime hero
—The Abhijnan Sakuntalam of Kalidasa,Ed by M R Kale,Pp125

नवाज के दुष्यन्त मे इस स्थल पर जो चारित्रिक दौर्बल्य प्रतिभासित है वह उनके विलासग्रस्त काल और वातावरण का प्रतिफलन है। राजाओ और सामन्तो का रूपराशि पर, भले ही वह परभाया या परतन्त्र हो, लुट पिट सा जाना कोई अनहोनी बात न रही होगी। सम्भवत इसीलिए उन्होने दुष्यन्त के धीरोदात्तत्व का ध्यान न करके सामान्य राजाओ की भाति रूप का लोभी चित्रित कर दिया। नाट्यीय न्याय से यह समुचित नही है किन्तु सामाजिक विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है।

1–शिष्टाचार और लोकाचार की दृष्टि मे सर्वथा उचित इस औपचारिकता के स्रष्टा कवि कालिदास हैं। महाभारत और पद्मपुराण म यह प्रसग नहीं है। कविराट् ने ये कुलादि

चौपाई—महाराज के ढिग हम आय। यह संदेस गुरु को[1] ल्याय ॥
हमको गुरु विदा जब कीन्हो[2] । यह संदेस[3] तुम्हहिं[4] कहि दीन्हो[5] ॥
जानी हम सब[6] प्रीति निहारी। सकुन्तला है सुता हमारी ॥१३६॥

१ के (AB)   २ कीनो (AB)   ३ सदेशु (A)
४ तुम्हें (B) तुमकों (B)   ५ दीनो (AB)   ६ यह (AB)

ये प्रश्न बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किये हैं। प्रथम के अनुसार राजा तपस्वी-जनों की तपस्या के सम्बन्ध में पूछता है जिसका उत्तर भी कण्व शिष्य अत्यन्त पटुता से इस प्रकार देते हैं —

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ ५।१४॥

राजा लक्ष्मणसिंह जी के अनुसार—

जब लग रखवारे बन तुम जग में महाराज।
क्या बिगरेंगे मुनिन के धर्मपरायण काज ॥
ज्योति दिवाकर की रहे जौं लौं मण्डल छाय।
अंधकार नहिं ह्वै सकै प्रगट भूमि पै आय ॥—शकु०ना० ५।

दूसरे प्रश्न के द्वारा महाराज महर्षि कण्व की कुशलादि पूछते हैं तत्रभ कुशली कण्व ? इसके उत्तर में प्रचलित उक्ति की तरह शाङ्गरव कह देता है स्वाध कुशला सिद्धिमन्तः अर्थात् कुशल तो तपस्वियों के सदा आधीन ही रहती है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने कण्व के शिष्यों द्वारा दुष्यन्त की राज दरबारोचित वाक्चातुर्य युक्त प्रशंसा तो अवश्य कराई है तो भी महर्षि कण्व की महान शक्तियों और सिद्धियों का उल्लेख सविस्तार नहीं किया है। महर्षि के शिष्य द्वय शाङ्गरव और शारद्वत, महाराज दुष्यन्त की अपेक्षा अपने महामहिम गुरु से निःसन्देह अधिक प्रभावित रहे होंगे। यों भी दुष्यन्त यदि भौतिक प्रभुता और शक्तियों का अधिकारी है तो महर्षि कण्व आध्यात्मिक जगत के महिमाशाली सम्राट हैं। अतः कण्व शिष्यों द्वारा स्वगुरु की शक्तियों का बखान न करना युक्ति संगत नहीं है। यों भी कथानक को न्यायो चित और प्रभावशाली बनाने के लिए इस स्थल पर शकुन्तला के पालक पिता कण्व की महिमा का उल्लेख अत्यावश्यक था। कण्व के आश्रय से शकुन्तला का प्रभाव बढ़ता था और दुष्यन्त यत्र-तत्र उसे ग्रहण करने से इन्कार नहीं कर सकता था। कविराट ने महर्षि की शक्ति का आभास मात्र 'स्वाधीन कुशला सिद्धिमन्तः' कह कर दिया तो है तथापि यह पर्याप्त नहीं है। कवि नेवाज ने इस स्थल पर कण्व की महिमा का सम्यक् चित्रण कर कुशलता का परिचय दिया है। उन्होंने राजा की प्रशंसा के साथ ही साथ मुनि शिष्यों की स्पष्टोक्ति में यह भी कहलवा दिया है कि मुनि कण्व अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हैं—ऋद्धियां सिद्धियां उनकी चेरी हैं-वे महापुरुष हैं अमरता-दाता हैं। इस प्रकार- [illegible] हों के आधार पर सम्भवतया ये शिष्य आगे जाकर यह कहने में समर्थ हुए —

[चौ]पाई-जो गन्धर्व[1] व्याह[2] तुम ठान्यो[3]। सो सुनि हम[4] कछु दुख नहि मान्यो[5]॥(1)
महाराज मे है गुन जेते। सकु तला हू मे है नृप तेते[6]॥(2)
भली भई हम सुनि सुख[7] पायो। विधि यह भलो[8] सजोग बनायो॥
सकु तला यह गर्भ[9] सहित है। सुनि मुनि तुरत पठाई इत है॥
सकु तला को घर मे राखो[10]। मुनि को कछू सदेसो माखो[11]॥
सकुन्तला हम इत पहुँचाई। हमको अब[12] तुम करहु विदाई॥
मुनि को आपन[13] मन ते डोल्यो। वेसुधि[14] राजा फिरि[15] यो बोल्यो॥(3)
मुनि के सिष्य प्रवीन महा ही। तुम ये बाते करत[16] कहा हो॥
सकु तला कै[17] व्याही को है। मोहि नही यह सुधि तनको है॥
राजा[18] कही कठिन यह बानी। सुनि सिष्यन मन मे रिस ठानी॥
सुनि नृप वयन सवै सुधि भागो[19]। सकु तला[20] कापन तव[21] लागी॥
नृप के वचन धरम ते डोले। दाऊ सिष्य कोप[22] करि[23] बोले॥१४०॥

---

१ गधरप (A) गधव (B) २ व्याहु (B) ३ कीनो (A) ४ के (A)
५ मानो (A) ६ सकु तला मे हैं गुन तते (A) सकु तला हू मे हैं तेते (B)
७ सुनि हम सुखु (A) हमहू सुखु (B) ८ भली (A) ९ गरभ (AB)
१० कीन (AB) ११ मुनि को कह्यो सदेस सुनोज (AB)
१२ अब हमारि (AB)। इसके बाद A और B दोनों प्रतियों मे यह चौपाई और है —
सकु तला की कछु सुधि नाही। कीन्हों अचरजु नृप मन माहीं॥
१३ सापुन (A) आपुन (B) १४ बेसुध (B) १५ तव (AB)
१६ कहत (AB) १७ किन (A) कौं (B) १८ राजैं (B)
१९ सोच हिय पागी (A) २० सकु तलाहू (AB)
२१ A और B दोनों प्रतियों मे नहीं है। २२ कोपु (B) २३ कर (A)

प्रेम पाप वहा मन आनत। तुम ऋषि लोगन को नहि जानत॥
कन्नु महामुनि जब रिस करिहै। तुरतहि तुमहि जानि तव परिहै॥

1—महाकवि कालिदास ने इस स्थल पर गान्धर्व विवाह का स्पष्ट उल्लेख न करके 'यमिथ समयान्मिमा मदीया दुहितर भवानुपमये' वाक्यावलि का प्रयोग किया है। 'समयात्' का स्पष्टार्थ प्रतिज्ञानात् है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार 'गान्धर्व समयान्मिथ' अर्थात् पारस्परिक प्रतिज्ञा ही के द्वारा गान्धर्व विवाह होता है, सम्भवतया अभिज्ञान शाकुन्तल मे प्रयुक्त 'समयात् ' के व्यापक अर्थ को लेकर ही उसके सभी अनुवादकों ने गाधर्व विवाह लिखा है। गान्धर्व विवाह विलोम क्रम से हिन्दू सस्कृति मे प्रचलित तीसरे प्रकार का

विवाह है। यह पैशाच और राक्षस विवाहो से भी प्राचीन है। अथर्ववेद के निम्न मत्र से स्पष्ट है कि प्राय माता पिता उस काल मे अपनी पुत्री को अपने प्रेमी के चुनाव के लिये स्वतन्त्र छोड देते थे और प्रेम प्रसङ्ग मे आगे बढने के लिये प्रत्यक्षत प्रोत्साहित करते थे—

मानो अग्ने सुमति सभलो गमेदिमा कुमारी सह नो भगेन।
जुष्टावरेषु समनेषु वल्गुरोष पत्या सौभागत्वमस्यै ॥ २ ३६ ॥

महाभारत और सूत्रकाल में इस विवाह पद्धति को कुछ विचारक प्रशस्त और कुछ अप्रशस्त मानते थे। महाभारतीय शाकुन्तलोपाख्यान म कण्व का यह कथन कि 'सकामाया सकामेन निर्मन्त्र श्रेष्ठ उच्यते' गान्धर्व विवाह की श्रेष्ठता ही सिद्ध करता है। गौतम धर्म सूत्र भी गान्धर्व विवाह को पारस्परिक आकर्षण और प्रम से उद्भूत जानकर प्रशस्त ही मानता है—"गान्धवमप्येके प्रशसन्ति स्नेहानुगतत्वात।" किन्तु बहुत से स्मृतिकार तथा अन्य विद्वान इसे प्रशस्त मानने को तयार न थे। इस अप्रशस्ती का मूल कारण गान्धव विवाह के मूल की काम भावना है। मनु ने तो स्पष्ट ही गान्धर्व विवाह को कामोद्भव कहा है —

इच्छयाऽन्योन्यसयाग कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वस्य तु विज्ञेयो मैथुन्य कामसम्भवः ॥ म० स्मृ० ३ ३२ ॥

इसके अतिरिक्त गान्धर्व विवाह मे धार्मिक क्रियाओ तथा विधिवत् सस्कार की भी अपेक्षा न रहती थी। यह सस्कार विहीन विवाह धर्म प्राण और नैतिक हिंदुओ मे इसीलिये प्रशस्त न रहा। इस प्रकार के विवाह की स्थिरता मे भी सदैव सन्देह रहा है क्योकि पारस्परिक आकर्षण अथवा कामुकता ही इसका निर्णायक तत्त्व है। महाकवि कालिदास के काल तक आते आते ता विवाह का यह प्रकार लगभग समाप्त सा हो गया था। यदि कही कोइ अपवाद ही भी जाता था तो वह विद्वद्जनो और सभ्या म स्वीकृत नहोता था। कालिदास स्वय कई स्थाना पर गान्धव विवाह की हीनता प्रदर्शित करते हुए दिखाई देते है यहां तक कि गौतमी क इस कथन द्वारा उन्होन अपनी प्रच्छन्न रुष्टता भी अनावृत सी करदी है—

णावक्खिन्दो गुरुअणो इमिए ण तुए वि पुच्छिदो बन्धू।
एक्कक्कस्स अ चरिए भणादु किं एक्क एक्कस्सि ॥ ५।१७ ॥

यहा न ता गुरजना की अपेक्षा रखी गई न अन्यान्य बधुओ से पूछा गया। अत आप दोना क एकाकी तुत्याचरण के लिए कोई तीसरा क्या कह सकता है? यह कथन स्पष्ट ही कालिदास की गान्धर्व विवाह विषयक उदासीन भावना का परिचायक है। वस्तुत

कालिदास तो उस विवाह पद्धति के पोषक थे जिसमे माता पिता का हाथ विशेषत रहता है, बधु बाधव जिसमें अपने अनुभवो के आधार पर वर-वधू पक्ष का पूर्णतया परिचय प्राप्त कर लेते हैं। रघुवश के ३८वें श्लोक म, एतदर्थ, वे उस कन्या की प्रशसा करत हुए दिखाई देते हैं जो 'साभिलाष' होते हुए भी गुरुजनो की आज्ञा की प्रतीक्षा करती है और स्वत अपनी मुक्तकामना के वशीभूत होकर, किसी से सम्बन्ध नही जोड बठती यथा—

'श्री साभिलापि गुरारनुज्ञा धीरेव कन्या पितुरा च काक्षा।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास, गान्धर्व विवाह की कण्व द्वारा यह अनुमति प्रसन्नता पूवक नहा अपितु अनिच्छा पूर्वक दिलवाते हैं। कवि नेवाज कालिदास के इस भाव और हिंदू सस्कृति के इस पक्ष से तादात्म्य स्थापित करने मे समर्थ होते हैं अत चौपाई की अर्द्धाली म कहते है 'सो सुनि हम कछु दुप नहि माना'। 'हमें बडा सुख हुआ' और 'हा कोई खास दुख तो नही हुआ' वाक्यो द्वारा व्यक्त भावो में बडा अन्तर है। सुधी पाठक इस अन्तर से परिचित हैं। श्री बल्देव उपाध्याय भी कवि की इस अनुज्ञा और गौतमी के वक्तव्य को आवृत अस्वीकृति ही मानते हैं — This is the disappointed expression of one who feels for the folly of such a union as the Gandharv form of marriage Sanctions"

2–विवाह से पूर्व आज भी वर वधू की जन्म पत्रिया के आधार पर गुण तुल्यता देखी जाती जाती है। लडकी देखने की जो रस्म होती है उसका भी मुख्य उद्देश्य वधू के बाह्य लक्षणो को सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से देखना होता है। जन्म पत्र द्वारा अन्त गुण और साक्षात्कार द्वारा बाह्य गुणो की परीक्षा करना इन दोनो क्रियाओ का मूल उद्देश्य है यो आज यह मात्र परम्परागत रूढि है।

भारद्वाज गृह्यसूत्र के अनुसार विवाह के प्रसङ्ग में चार बातो पर विचार करना चाहिए—'चत्वारि विवाहकारणानि वित्त रूप प्रज्ञा बान्धवमिति'। वित्त, रूप प्रज्ञा और कुल या बान्धव में वधू के अन्त और बाह्य दोनो ही का विचार आ जाता है। भारद्वाज गृह्यसूत्र के अतिरिक्त शत पथ ब्राह्मण, याज्ञवल्क्य स्मृति मनु स्मृति *वीरमित्रोदय प्रभृति* ग्रन्थो में भी वधू की योग्यता का उल्लेख है तथापि इन सभी में वधू के शारीरिक सौंदर्य पर अधिक बल दिया गया है किसी में 'प्रथुश्रोणि', 'विमृष्टान्तरा' और 'मध्ये सग्राह्या' की प्रशसा की गई है तो किसी मे हस के समान मधुर बाणी, मघ के समान वर्ण वाली और विशालाक्षी को वरेण्य बताया गया है। मानवगृह्यसूत्रकार तो एक मात्र 'नग्निका' ही को विवाह योग्य मानता है। 'नग्निका' की व्याख्या करते हुए वह कहता है—"नग्निका श्रेष्ठा विवस्त्रा सती श्रेष्ठा या भवेत् तामुपयच्छेत्। यस्माद् कुस्याऽपि वस्त्रालकारवृता मनोहारिणी भवति। तस्माद् विवस्त्रा सती न सर्वा शोभते'।१ ७ ८। अर्थात् ऐसी स्त्री से विवाह करना

चाहिये जो विवस्त्र होने पर भी श्रेष्ठ व सुन्दर हो, क्योंकि कुरूप स्त्री भी वस्त्र और आभूषणों से युक्त होकर मनोहारिणी लगती है पर विवस्त्र होने पर भी सभी स्त्रियाँ सुन्दर नहीं लगती।

इस प्रकार 'नग्निका' होना भी कन्या की अंतिम विशेषता समाज में स्वीकृति हुई और आज भी इस सौन्दर्य को अनेक रूप में विवाह का मानदंड माना जाता है। वधू के गुणों के साथ ही साथ विभिन्न ने वर के गुणों का भी उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य के अनुसार वर में वे समस्त गुण होने चाहिये जो एक वधू में अपेक्षित हैं। इनके अतिरिक्त अखंड ब्रह्मचर्य, विनीत क्रोधी, विद्या, शील सम्पन्नता आदि का भी विचार आवश्यक है। वीरमित्रोदय में वर में सात गुणों का विचार आवश्यक बताया गया है—

> कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथताञ्च।
> एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

वर के कुल, शील, शरीर, आयु, विद्या, धन तथा सनाथत्व इन सात गुणों की परीक्षा करके कन्या का विवाह करना चाहिये।

महाकवि कालिदास जहाँ तक वर-वधू के रूप सौन्दर्य का सम्बन्ध है पूर्व ही सब कुछ कह चुके हैं। बात थी सिर्फ अन्य गुणों की सो उन्होंने शकुन्तला को सत्क्रिया कहकर वह भी स्पष्ट कर दिया है। वे वर वधू में समान और तुल्य गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं। इस स्थल पर 'चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः' कहकर काव्य में चमत्कार और प्रभाव में वृद्धि उत्पन्न कर दी है। नेवाज ने इस प्रसङ्ग को इति वृत्तात्मक रूप में चला दिया है। हाँ, गुणों के समान होने की बात उन्होंने भी कही है।

3–ऐसे स्थल पर कि जब क्रोध सचरित हो रहा हो, रौद्र रस का समाँ बाँधा जा रहा हो अकस्मात् किसी पक्ष की विवशता का उल्लेख कर देना रस परिपाक में व्याघात उपस्थित करता है। दर्शक अथवा पाठक के हृदय में उस पक्ष के प्रति रोष उत्पन्न होने के स्थान पर सहानुभूति उत्पन्न होने लगती है और वह उसकी विवशता के प्रति उन्मुख होकर उसके लिए सहानुभूति अनुभव करने लगता है। नेवाज की यह चौपाई इस दृष्टि से सर्वथा असंगत और अनुपयुक्त है। राजा स्वयं तो दोषी नहीं है, वह तो शकुन्तला को ग्रहण कर सकता है किन्तु बेचारा शाप के वशीभूत होकर विस्मृत मति हो गया है इस प्रकार के भाव इस चौपाई से अभिव्यंजित हैं। ऐसी असमीचीन आधार शिला पर रौद्र मय वातावरण का प्रासाद कैसे निर्मित हो सकता है? यही कारण है कि कवि नेवाज इस स्थल उपयुक्त प्रभाव उपस्थित नहीं कर सके हैं। महाकवि कालिदास का एतद् विषयक चित्रांकन सवा सोलह आना संगत और प्रभावोत्कर्ष करने वाला है।

चौपाई-महाराज कछु धर्महि जानो[1]। ग्रैसो ग्रधरम मन मति ग्रानो[2] ॥
किये व्याह तव छल करि घातें। तव तुम कहन लगे यह बातें[3] ॥
सोइ करत जु[4]मन कछु ग्रानत[5]। राज[6]लोग पर पीर न[7]जानत[8]॥१४१॥(1)

दोहा—राजा के सुनि वयन[9] ये निपटि[10] उठी ग्रकुलाई।
सकुतला मो गौमती कहन लगी समुझाई ॥१४२॥

चौपाई-घरि यक्र[11] छोडि देहु तुम[12] लाजहि। मुप उघारि देपरावहु राजहि ॥
मुग जो तेरो[13] देपन पावै। तौ नृप को ग्रवही सुधि ग्रावै[14] ॥(2)
कहि गौमती घूघुट[15] पुलवायो[16]। सकुतला[17] मुग्व नृपहि देपायो ॥१४३॥

दोहा—पलक पसारि[18] निहारि नृप[19] सकुतला का रूप।
नाही ग्रनु कछु[20] करत नहि रह्यौ[21] भूलि सो भूप ॥१४४॥(3)

चौपाई-राजा[22] तव[23] कछु ग्रोठ न पाल्या[24]। मुनि को सिप्य फेरि यह बोल्यो[25] ॥
महाराज मन में सुधि कीजै। गव[26] हमको कछु उतर[27] दीजै ॥
सकुतला की लपि तन दीपति। फिरि जोल्यो वेमुधिहि महीपति[28] ॥
बडो वेर लौ सुधि करि देपो। मय सपनेहू यहि नहि देपी[29] ॥१४५॥

---

१ धरमहि जानहु (AB) २ ग्रानहु (AB) ३ ग्रब ये कहन लगो तुम बात (A)
४ जो (AB) ५ भावति (B) ६ राजा (AB) ७ न पीरहि (A)
८ निपीरन ग्रावत (B) ९ वचन (B) १० निपट (AB) ११ यकु (B)
१२ ग्रब (AB) १३ निहारो (AB) १४ तौसुधि फिरि राजा कों ग्राव(B)
१५ घूंघट (A) घुंघुट (B) १६ पोलवायो (AB) १७ सकुतल (B) १८ बिसारि (A)
बिसारि (B) १९ तब (AB) २० नाहीं हां कछु (AB) २१ रहे (A)
२२ राज (B) २३ जब (AB) २४ पोलो (A) षोले (B)
२५ मुनि के सिप्य फेरि यों बोलो (A) मुनि के शिष्य कोपु करि बोल (B)
२६ ग्रुनि (B) २७ उत्तर (A) २८ बोलो फिर वेसुधी महापति (A)
२८ बोल्यो यों फिरि वेसुध महिपति (B) २९ मैं सपनेहुं यह नारि न पेपी (AB)

1–इस ग्रवसर पर कालिदास ने जिन सम्वादा को प्रस्तुत किया है वे ग्रत्यन्त प्रभावशाली ग्रौर ग्रवसरानुकूल प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। उन्होंने न केवल ऋषि शिष्यो के क्रोध ही का ग्रभिव्यजित किया है वरन् लोकापवाद की विवशता को भी मुखर किया है यथा—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ ५।१८ ॥

अर्थात्—

सच्चरित्र भी जो परिणीता नैहर अपने रहती है,
मान उसे दुश्शीला जाने दुनिया क्या-क्या कहती है।
इसीलिए कन्या के बान्धव करते सदा यही अभिलाष,
प्रिया, अप्रिया कैसी भी हो, रहे सदा वह पति के पास ॥

(इन्दुशेखर द्वारा अनुवादित अ० शा० पृ० ६०)

क्रोध और आवेश की परिस्थिति की स्पष्टता के हेतु इसी स्थान पर उन्होने राजा दुष्यंत को ऋषि शिष्य शार्ङ्गरव के कथन के मध्य मे ही बुलवा दिया है। अधिक क्रोध की स्थिति म सहज शिष्टता का निर्वाह भी कठिन होता है। धर्म के अधिष्ठाता ऋषि शिष्य भला यह कैसे सह सकते थे कि उन्ही के समक्ष धर्म की अवहेलना की जाए। राजा दुष्यंत शकुन्तला से धर्मानुसार विवाह करके भी इन्कार करदे। अत वे कह उठते हैं कि 'किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखतोचिता राज्ञः " अर्थात् अपने किए में अरुचि होने से धर्म छोडना क्या राजा के योग्य है। शार्ङ्गरव इतना ही कह पाता है कि राजा बोल उठता है–'कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रसङ्गः" अत आप यह असत् कल्पना क्यो कर रहे हैं? शार्ङ्गरव इस अशिष्टता से और अधिक क्रोधित हो जाता है और सक्रोध विपाक्त बचन कहता है 'मूर्च्छन्त्यमी विकाराः, प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम्।" अर्थात् जिनको ऐश्वर्य का मद होता है उनका चित्त स्थिर नही रहता। इन्दुशेखर ने इस स्थल का अनुवाद अच्छा किया है जो इस प्रकार है—

शार्ङ्गरव— किए पर क्या यह पश्चाताप,
धर्म अवहेला या अपमान?

राजा— आप यह असत्य कल्पना क्यों कर रहे है?

शार्ङ्गरव— स्फुरत होते ऐसे दुर्भाव
जहा मदमाता है इन्सान।

कवि नेवाज के काल तक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक बदल गई थी। राज दरबार मे ऋषि या कोई भी हो इतनी निर्भीकता से राजा को खरी-खोटी नही सुना सकता था। राजा का वचन ही धर्म था और फिर इस प्रकार किसी को वासना तृप्ति का हेतु बनाना

तत्कालीन समाज में कोई अनहोनी न थी अत कालिदास की भाति एक दम भभक उठना 'सकुतला नाटक' के रचयिता के लिये न तो सम्भव हो था और नाही सगत। फिर भी अंतिम दो चौपाइया मे नेवाज भी काफी कटु हो गये हैं। 'कियो व्याह तव छल करि घातैं' दुष्यन्त सरीखे लम्पट राजा के लिए, जो किसी कन्या का कुमारीत्व हरण करके फिर मुकर रहा हो, इससे अधिक स्पष्ट, शिष्ट वचन क्या हो सकते है। दूसरी चौपाई तो वस्तुत नेवाज काल के राजाओ को स्वेच्छाचारिता का दर्पण ही है। राजा अपनी समृद्धि, सुख और वासना तृप्ति के लिए सब कुछ कर सकता है वह 'स्व' के सामने 'पर' का कोई महत्त्व ही नही रखता। राजत्व के आदश पर ऐसी करारी चोट, मुगलकालीन नवाव के समक्ष करना कवि नेवाज की निर्भीक किन्तु शिष्ट प्रवृत्ति का द्योतक है।

2–अभिनान शाकुन्तल के सभी अनुवादको ने इस स्थल को लगभग एक ही समान उपस्थित किया है। गौतमी का यह कृत्य नारीजनोचित कुशाग्र बुद्धि का परिचायक है। रूप का आकरण सबसे अधिक प्रबल होता है शकुन्तला परम रूपवती तन्वङ्गी है, उसके रूप की तरगो मे राजा दुष्यन्त, यदि वह जान बूझकर शकुन्तला का तिरस्कार कर रहा है, स्वत ही तरगायित हो उठेगा। मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिनमें रूप के प्रति आकृष्ट होने की दुर्वलता होती है वे अनिन्द्य सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। राजा दुष्यन्त म यह आसक्ति है इसका प्रमाण शकुन्तला के प्रथम दर्शन ही के समय उसका लुट पिट जाना है। गौतमी इस तथ्य से पूर्णतया परिचित है अत उसका इस प्रकार शकुन्तला से घूँघट हटाने को कहना और फिर स्वय उसकी मुख श्री को अनावृत कर देना, क्या प्रवाह और काव्य प्रवाह दोनो ही दृष्टियो से समीचीन है। नेवाज ने भी अन्य शाकुन्तलोपाख्यानकारो की भाति इतिवृत्तात्मक रीति से ही इस स्थल का निर्वाह किया है।

3–अभिनान शाकुन्तल के उपाख्यान मे यह स्थल चरम सीमा कहा जा सकता है। दर्शक नाटक के फल के प्रति सर्वथा अनिश्चित हो जाता है। रूप लोभी राजा दुष्यन्त ऐसे अनिन्द्य सौंदय को प्राप्त करके भी त्याग देगा अथवा ग्रहण कर लेगा, इसका निर्णय दर्शक नही कर पाता है। यह द्विधा नाटक मे प्रभाव उत्पन्न करती है। कवि कालिदास ने इस स्थल पर यद्यपि वर्णन को विस्तार नही दिया है तथापि जो भी कुछ उन्होने लिखा है उसके प्रत्येक शब्द मे अद्भुत अर्थ गाम्भीर्य है– प्रत्येक शब्द साभिप्राय और प्रयोजनसिद्ध है। उनकी उपमा का कौशल भी दृष्टव्य है—

> इदमुपनतमेव रूपमक्लिष्टकान्ति
>
> प्रथमपरिगृहीत स्यान्नवेत्यव्यवस्यन् ,
>
> भ्रमर इव निशान्ते कुन्दमन्तस्तुषार
>
> न खलु परिभोक्तु , नापि शक्नोमि मोक्तुम् ॥५।२०॥

राजा लक्ष्मणसिंह, इन्दुशेखर प्रभति अनुवादको ने इसका अनुवाद किया तो है तथापि उनमें यह सौष्ठव, भावगाम्भीय और प्रभविष्णुता नही आ सकी है। वस्तुत वे प्रयोजन को

अनुवादित कर सके हैं, भावों का संरक्षण संभव नहीं हुआ है। मैथिलीशरण जी गुप्त ने इस स्थल पर अनोखी काव्य कुशलता का परिचय दिया है उन्होंने कवि कालिदास की उपमा को भी प्रयुक्त किया है साथ ही भावों को भी ज्यों का त्यों ले लिया है। इसके अतिरिक्त ऐसी विषम परिस्थिति में आपने अबला की मनोदशा का चित्रण भी बड़ी कुशलता से किया है। यथा—

> मानो चन्द्र सा निकला घन से फैल गया उजियाला।
> शाप विवश भी नृप के मन पर पड़ा प्रभाव निराला।
> त्याग और स्वीकार न कुछ भी किया गया नृपवर से,
> ओस भरे वन-कुन्द-कुसुम के वे हो गए भ्रमर से। (शकुन्तला पृ० २९)

"भ्रमर इव निशाते कुन्दमन्तस्तुषार" अथवा 'ओस भरे वन कुन्द-कुसुम के वे हो गये भ्रमर से' में उपमा कितनी सप्रयोजन और रमणीय है। तुषार और शार, कुन्द पुष्प और शकुन्तला, भ्रमर और दुष्यन्त कैसे जबरदस्त बैठे हैं। तुषारावृत्त कुन्द पुष्प को जैसे भ्रमर न छोड़ पाता है न रस ले पाता है ठीक वैसे ही नापावृत्त शकुन्तला को दुष्यन्त न छोड़ पा रहा है – और न ग्रहण ही कर पा रहा है। कैसी द्विधा है। गुप्त जी केवल इस द्विधा के वश्य के चित्रण ही से तुष्ट नहीं हैं वे और आगे बढ़ते हैं—

> लज्जा की लाली फैली थी, भौंहें तनिक चढ़ी थी
> ग्रीवा नीची थी पर आँखें नृप की ओर बढ़ी थी।
> कहती थी मानो वे उससे— क्या हमको छोड़ोगे?
> आर्यपुत्र! दो दिन पीछे ही क्या यों मुँह मोड़ोगे? (शकुन्तला पृ० ३०)

इस चित्रण में शकुन्तला की विवशता, आग्रह और गिड़गिड़ाहट उसके मौन में ही मुखर हो गई है। 'क्या हमको छोड़ोगे – आर्यपुत्र! दो दिन पीछे ही क्या यों मुँह मोड़ोगे?' कहकर कवि ने वस्तुतः ऐसी विकट परिस्थिति में ग्रस्त प्रत्येक नारी हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति कराई है। भारतीय नारी की जिस सहिष्णुता त्याग और प्रेम के डा० साहब अनुपम गायक हैं उसका समधिक पुट उन्होंने यहाँ शकुन्तला में भी दिया है। वस्तुतः नारी मन की अभिव्यक्ति का कौशल गुप्त जी में अद्वितीय है।

न जाने क्यों कवि नवाज जैसा रसिक कवि इस अत्यन्त रम्य स्थल पर मौन रह गया? उनका वर्णन इस स्थल पर सर्वथा चलता हुआ है और इतिवृत्तात्मक है। यद्यपि राजा दुष्यन्त की आसक्ति और तज्जन्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ता स्पष्ट है तथापि तद्गत भावनाओं का चित्रण अपेक्षित है।

महाभारत और पद्मपुराण में तो इस स्थल पर काव्यतत्व कतई दिखाई नहीं देता। राजा दुष्यन्त शकुन्तला को कामयन्त्या 'गणिका दुष्टतापसि' आदि अनेक कटु शब्द कहता है और शकुन्तला भी धूर्तादि अपशब्दों का प्रयोग करती है। वस्तुतः इन कृतियों में कथा का निर्वाह तो किया गया है किन्तु उनमें काव्य यत्न नहीं है। अतः महाभारत और पद्मपुराण के प्रति केवल कथा मात्र के लिये आभारी रहा जा सकता है काव्य सौन्दर्य के लिये नहीं।

चौपाई–तुम तौ कहत तुमहि यह ब्याही । मय तौ यहि पहिचानति नाही[१] ॥
गर्भ सहित यह नारि बिरानी । कैसे राखि सकौ करि रानी ॥
यह[२] सुनि सिष्य रिसन सो पागे । यहि विधि नृप सो बोलन लागे ॥
ऐसे[३] पाप कहा मन आनत । तुम ऋषि[४] लोगन को नहि जानत ॥
कनु महामुनि जब रिस करिहै । तुरतहि[५] तुम्हे जानि तब परिहै (1)॥१४६॥

---

१ मोहि याहि ब्याहो ठहरावत । क्यों बिन काज कलक लगावत ॥ (A) तुम तौ कहत की तुम यह ब्याही । मोहि कछुक सुधि आवति नाही ॥ (B) २ यों (A) ३ ऐसो (AB) ४ मुनि (A) रिषि (B) ५ तुरत (AB)

1–महाभारत, पद्मपुराण अभिज्ञान शाकुन्तल और सकुन्तला नाटक सभी म दुष्यन्त के इस आचरण क प्रति रोष की यजना है । महाभारत मे शकुन्तला एक निर्भीक एव मुखर नारी के रूप मे चित्रित है अत वह स्वय ही अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करती है और भार्या तथा पुत्र की महत्ता का प्रतिपादन प्रभावशील वचनो द्वारा करती है । पद्मपुराण मे शकुन्तला के अवगुण्ठन विरहित होने से पूर्व ही वृद्धा गौतमी महाराज दुष्यन्त के यह कहने पर कि, ऐसी बहुत सी गणिकायें होती हैं जो राजा की महिषी बनने की इच्छा रखती हैं और इस प्रकार क षडयन्त्र रचा करती हैं,' तनिक क्रुद्ध होती हैं और कहती हैं—

> 'नवमर्हसि भो राजन् ! विश्वामित्रसुता प्रति ।
> एव लावण्यमापन्ना क्व दृष्टा गणिका त्वया ?''

किन्तु ऋषि द्वय इस अवसर पर मौन रहते हैं और राजा दुष्यन्त के यह कहने पर कि 'पौरवाणा कुले जाता सता मार्गे कृतामना । व वय रूपमानेण गणिकाना भ्रमामहे'' ॥ शकुन्तला स्वय ही प्रति उत्तर देती है और राजा को गान्धर्व विवाह की याद दिलाने की चेष्टा करती है यथा—

'किं न स्मरसे राजन । मृगयामिधगच्छता । गान्धर्वेण गृहीतो यत् पाणिर्मे विधिनानृप !''

अभिज्ञान शाकुन्तलकार नारी की इस प्रगल्भता और मुखरता का पोषक नही है । वह उस समय तक नारी क मौन को भग नही कराना चाहता जब तक कि वह अनिवार्य अपरिहार्य और अवाछनीय ही न हो जाए क्योंकि लज्जा विनम्रता, शील सकोच आदि नारी के आभूषण हैं उसका आकर्षण और लालित्य हैं । अत शार्ङ्गरव के व्यग्यात्मक कथन द्वारा ही उन्होने ऋषि शिष्यो के रोष की अभिव्यक्ति कराई है । कालिदास के रोष प्रकाशन की शैली व्यग्यात्मक एव वैपरीत्यात्मक है कथन मे कटु शब्दो का प्रयोग न होते हुए भी दुष्यन्त की भर्त्सना स्पष्ट है—

दोहा—कहि कै बातै कठिन य राजा को डरपाइ[1]।
सकुंतला सो सिष्य तब बोले निपट रिसाई[2] ॥१४७॥

चौपाई-काहू को तब पूछ[3] न लीहो। आपुहि ब्याह गाधवी[4] कीहो॥
जैसो कियो सो फल अब लीजै। राजा का कछु ऊतरु दीजै (1)॥१४७॥

---

१ डेरवाइ (A) डरवाइ (B) २ सकुंतला के सिष्य फिरि बोले बचन रिसाइ (A) सकुंतला सों सिष्य तब बोले निपट रिसाइ (B) ३ पूँछि (B)
४ गधरप (A) गधरपु (B)

कृतावमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥५।२१॥

अर्थात् ठीक है वह ऋषि तो अपमान के योग्य है ही, जिसकी पुत्री को आपने (उनकी अनुपस्थिति में) स्पर्शित किया और जो आपके उस कृत्य का अनुमोदन करता है। (इतना ही नहीं) वह अपनी कन्या का दान भी अब आपका देना चाहता है ठीक वैसे ही जसे कोई चोर का चुराई हुई वस्तु का उपहार देने लग जाए। कालिदास ने इस प्रकार राजा दुष्यन्त के कृत्य की भर्त्सना प्रच्छन्न एवं शिष्ट रूप में की है किन्तु ऋषिबल के द्वारा डराया नहीं है। नेवाज एक कदम आगे बढ़ गए हैं। सच भी है राजा, पाखण्ड, समाजदंड अथवा पाशविक बल से किसी बात को मानने के लिये विवश नहीं किया जा सकता। वह तो केवल आत्मिकबल से ही परास्त हो सकता है। क्षात्रबल पर केवल आत्मबल ही विजय प्राप्त करता है अतः नेवाज ऋषि शिष्यों द्वारा महर्षि कण्व की अतुल आत्मिक शक्ति का भय दुष्यंत के समक्ष प्रस्तुत कराते हैं। ऋषि शिष्य स्पष्ट ही कहते हैं कि —

'कन्नु महामुनि जब रिस करि है। तुरतहि तुमहि जानि तब परि है।'

इसी तरह से पूर्व भी ऋषि शिष्य कण्व के सिद्धत्व का प्रभाव अभिव्यक्त कर चुके हैं।

1—अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना के जहाँ अन्य अनेक कारण हैं वहाँ गान्धर्व विवाह की अस्थिरता और अवैधता को भी प्रकाश में लाना है। गान्धर्व विवाह भारतीय संस्कृति में कभी भी अच्छा नहीं माना गया है यद्यपि संस्कृत काव्यों में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं किन्तु प्रायः प्रत्येक उपाख्यान में गान्धर्व विवाह के कारण उत्पन्न कठिनाइयों और बाधाओं का भी चित्रण किया गया है। इस स्थल पर तो स्पष्ट ही गान्धर्व विवाह की अव्यावहारिकता पर आघात है। इसी तरह में कण्व की नैराश्यपूर्ण स्वीकृति और कालिदास द्वारा प्रस्तुत गौतमी के वचन गान्धर्व विवाह की असत्यता ही के द्योतक हैं। स्मृतिकार किसी भी प्रकार के विवाह को उस समय तक वैध नहीं मानते हैं जब तक विधिवत् मन्त्र आदि के द्वारा वह संस्कार सम्पन्न न किया जाए यथा —

लाज गाढ़ि[1] अपियन ते पोली। सकुंतला नृप[2] सो तब[3] बोली॥
महाराज यह रीति कहा है। या मे अधरम होन महा है॥
यामे कहो कहा तुम पावत। क्यो बिन काज कलक लगावत॥
तब पहले हम तुम्हें[4] न जाया। कह्यो जु कछु तुम हम सो मायो[5]॥
तब वैसी करि के छन धाने[6]। अब तुम कहा कहत ये बाते[7] ॥१४८॥

१ गाढि (AB) २ राजा (B) ३ फिरि (A) B प्रति मे नहीं है
४ तुम्हहिं (AB) ५ कह्यो जौन सोई हम मान्यो (A) जो तुम कह्यो सोई हम मांयो (B) ६ बात (A) ७ अब यह कहा कहत तुम बात (A)
अब ये कहन लगे तुम बात' (B)

बलाच्चपहृता कन्या यदि मन्त्रैर्न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा॥

अर्थात् 'यदि किसी कन्या का बलात् अपहरण कर लिया गया हो किन्तु मन्त्रों से विधिवत् संस्कार न किया गया हो, तो उसका विवाह अन्य व्यक्ति के साथ विधिवत् किया जा सकता है, क्योंकि वह तो पूर्ववत् कुमारी ही रहती है'। वस्तुत हिन्दू जीवन दर्शन मे धार्मिक भावना का स्थान सर्वोच्च रहा है बिना धार्मिक क्रियाओं के किया गया विवाह इसी लिये उनकी दृष्टि म अपवित्र और समाज क लिये अहितकारी हैं।

गान्धर्व विवाह में जसा कि पूर्व पृष्ठों पर स्पष्ट किया गया है, केवल वर वधू की परस्पर सहमति की आवश्यकता है। बन्धु बान्धवों,माता पिता आदि की स्वीकृति अपेक्षित नहीं है अत विवाह की सफलता और असफलता का समस्त उत्तरदायित्व उस दम्पति पर है, समाज या बन्धु बान्धव इस सम्बन्ध मे कुछ भी कानून या करने क अधिकारी नहीं हैं। ऋषि निष्ठा की यहां झुंझलाहट और विवशता इस चौपाई से मुखरित है। "जसो किया सो फल अब लीजै।" में तो शकुन्तला और दुष्यन्त के इस एकान्त विवाह का दुष्परिणाम स्पष्ट व्यंजित है। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो गान्धर्व विवाह को सामान्य सिद्धान्त क रूप म ही वैर भाव उत्पन्न करने वाला कहा है—

प्रथम परीक्षा किए बिना जो प्रेम किया जाता है—
ठीक है कि वह वैर भाव ही पीछे प्रकटाता है। (शकु० पृ० ३१)

कवि कालिदास ने भी इसी तथ्य का अनुमोदन शार्ङ्गरव क इस कथन द्वारा कराया है—'इत्थमप्रतिहत चापल्य दहति।'

अत परीक्ष्य कर्तव्य विशेषात् सङ्गत रह।
अज्ञातहृदयेष्वेव वैरीभवति सौहृदम्॥ ५।२७॥

अर्थात अप्रतिहत चापल्य इसी प्रकार संत्रस्त करता है अत खूब अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद ही एकान्त मिलन करना चाहिए। अज्ञात व्यक्ति के साथ किया हुआ प्रेम अन्त म इसी प्रकार शत्रुता उत्पन्न करता है।

चौपाई–विदा होत तुम दई अगूठी। याते न्है हो हो नहि झूठी॥
और भेद अन कहा जतावौ[1]। वहै अगूठी कहो दपावौ[2]॥
सकुतला यो बोल[3] सुजानी। राजा[4] कही फेरि यह बानी॥
तुम यह बात न्याय[5] की की ही। अन ली क्या न अगूठी दी न्ही॥
जो मय लपन अगूठी पाऊँ। तो मय तुम्है[6] साच[7] ठहराऊँ॥
परस अगूठी कर ठेकाना[8]। सकुतला का मुख पियराना॥
कर मे तब न अगूठी पाई। हाय हाय त्यहि ठौर[9] मचाई (1)॥

---

१ बताऊँ (AB) २ देपाऊँ (AB) ३ बोलि (AB)
४ राजँ (B) ५ याइ (B) ६ तोहि (B)
७ साचु (B) ८ परसि अँगूठी कोव ठिकानो (A)
८ निरखि अँगूठी कोव ठेकानो (B) ९ तेहि ठोर (A) तेहि सोर (B)

1–कालिदास के नाटको म अधिकाश सौष्ठव उनकी नायिकाओ क कारण है। मालविकाग्निमित्रम् म धरिणी के रूप मे आदर्श भार्या 'विक्रमोर्वशीयम्' मे 'भार्या' ही का उन्नत रूप 'पतिव्रता', ग्रासुनारी के रूप मे और अभिज्ञान शाकुतलम्' में शकुतला क रूप म उन्होने आदर्श पत्नी 'गृहणी' का चित्रण किया है। भारतीय शास्त्रों के अनुसार गृहणी पद के लिये नारीजनोचित सभी गुणों का होना अनिवार्य है। 'धरिणी' और 'ग्रासुनारी यद्यपि शीलवान बुद्धिमती और विवकशील हैं तथापि उनमे वह सहनशीलता नही है जो शकुतला को आदश गृहणी का पद प्रदान कराती है। वस्तुत शकुतला का सम्पूर्ण जीवन मौन यातनाओ और तज्जन्य सहनशीलता की कहानी है। उत्पन्न होने क कुछ ही काल बाद बेचारी अपने माता पिता क द्वारा छोड दी गई और जीवन क यौवन काल म पति द्वारा परित्यक्त हुई। इतना ही नही भाग्य भी सदैव उसक विमुख रहा— दुष्यन्त द्वारा प्रदत्त अभिज्ञान जाकि इस आपद् काल में उसका सम्बल बन सकता था भी दुर्भाग्यवश शचीतीर्थ मे गिर गया। ऐसी आपत्ति मे एक मात्र सहारे के खो जाने का सदमा कितना अधिक होता है वही जान सकता है जो भुक्त भोगी हो। महाभारत में इस प्रसग का उल्लेख नही है। पद्मपुराण म इस प्रसग का चित्रण तीव्र प्रभाव सम्पन्न है। शकुतला दुष्यन्त को भरे दरबार लज्जित करना चाहती है और क्रोधित होकर प्रियवदा से अगूठी मागती है किन्तु प्रियम्वदा के यह कहने पर कि वह तो जल म गिर गई मूर्छित हो जाती है—

'तदुपश्रुत्य कल्याणी रम्भव मरुताऽऽहता।
पपात भूमौ निश्चेष्टा 'हा हतास्मी' ति वादिनी।'

मरुताहत सा हो, हाय कहकर निश्चेष्ट हो जाना ही किसी अनहोनी घटना का सकेत करता है। पद्मपुराणकार का यह चित्रण प्रासागिक और प्रभावपूर्ण है। कालिदास

लय उसास करि सजल निमेपन। लगी गौमती सो[1] फिरि देपन॥
सकुतला अति ही सरमानी। राजा[2] विहसि कही यह बानी॥
तिय चरित्र सुनि रावै वयनन[3] । ते इत आजु लपे हम नैनन[4] (1)॥
मय कय तो को दई अगूठी। ऐसी वात कहत[5] कया भूठी॥
परतिय त मन विमुख[6] हमारो। चलिहै कछु न प्रपच तिहारो॥
या विधि नृप के मन ते डोली। सकुतला सुसकत फिरि[7] वाली[8] ॥
देषी मय[9] विधि[10] की प्रभुताई। जो या विधि[11] ही नाच नचाई ॥१४८॥

---

१ तन (AB)   २ राज (B)   ३ बननि (AB)
४ ते सब लपे आजु अब ननिन (A) ते सब लपे आजु हेंमें ननिन (B)
५ कहति (B)   ६ विमुप (AB)   ७ तब (A)
८ सकुतला फिरि नृप सों बोली (B)   ९ हौं (AB)
१० प्रभु (AB)   ११ जेहि यहि विधि (AB)

ने ऐम अशनिपात पर भा ाकुतला को आकुल ्याकुन ही चित्रित किया है। वह विषा मयी याकुन दृष्टि से केवल गौतमी की ओर देवती है और हाय हाय, यह मेरी अगुला ता सूनी है', कहती है। शकुतला का यह कथन और कालिदास का ततकालीन चित्रण घटना के महत्व की सफन अभि यक्ति नही करता। नेवाज ने भी यद्यपि भाव ता यहा रखे हैं तथापि सामाय शब्दा ही के प्रयोग स मुद्रिका के खा जाने स उत्पन्न व्यथा और आकस्मिक भाव परिवतन की सफल अभियक्ति की है। 'मुख पियराना', 'हाय हाय त्यहि ठौर मचाई', 'लै उसास करि सजल निमेपन' आदि के प्रयोग स शकुतलास्थ व्यथा मुखर हा उठी है।

1–नारी जाति में पुरप की अपक्षा यवहार कुशलता और लोकज्ञान विशेष हाता है वह सहज ही अवसर क अनुकूल युक्तियाँ सोच लेती है और तदनुकूल आचरण करती है – यह सर्वमाय तथ्य है। नारी जाति का यह प्रत्युत्पन्नमतित्व गुण है किन्तु राजा दुष्यन्त तनिक हँसकर इस गुणाभियक्ति को व्यग्यात्मक बना देता है। अभिज्ञान शाकुतल में वह कहता है—"(सस्मित) इद तत प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।" कवि नेवाज ने आशय ता लगभग यही रखा है तथापि कथन की तीव्रता का प्रखर और सुबाध बना दिया है। कालिदास की उक्त वाणी मे साहित्योचित गाम्भीर्य है अत वह सामाय पाठक पर अभीष्ट प्रभाव डालने मे असमर्थ है जबकि नेवाज की उक्ति तिया चरित शब्द मात्र म तीखी चाट करती है। लोक जगत मे 'त्रिया चरित्र' शब्द नारी की छल-कपटमयी कुशाग्र बुद्धि का द्योतक है। यह शब्द कभी भी अच्छे भाव मे प्रयुक्त नही होता वस्तुत नारी का तिरस्कार और उसकी अवमानना इस शब्द के द्वारा सम्पन्न हाती है। 'त्रिया चरित्र म तिरस्कार और अवज्ञा के भावा की जा गुरुता है वह 'प्रत्युत्पन्नमति' म नही है।

चौपाई–नाहिं[1] अगूठी कहा देखाऊ। कहौ और कछु भेद बनाऊ॥
येक दिना हम तुम बन माही[2]। बातै करत हुते चित चाही॥
अपने कर मै सेइ बढायो। तहा यक मृग का सुत[3] आयो॥
वाहि चह्यो तुम पानि[4] पियायो। वह न तिहारे ढिग तव आयो॥
तव जल मै अपने कर लीन्हा। मृग सुत आनि तुरत पी लीन्हो[5]॥
तव तुम तहा करी यह हासी। तुम ये दोऊ हौ वन वासी[6]॥
मृग सुत सगहि रहत[7] तिहारे। पियै नीर क्यो हाथ हमारे॥
यह कहि के तव हसी बढाई। अब तुम सिगरी[8] सुधि विसराई॥
यहौ सुने सुधि मनहि न[9] आई। राजा[10] यह फिरि वात चलाई॥
या विधि मीठे बातै कहिकै[11]। लेती तिय सबका मनु गहिकै[12]॥
यहि विधि अद्भुत[13] बात बनाई। छवै न गई मनु कछू भुठाई॥
यह सुनि मन म अति सतरानी[14]। कही गौतमी तब यह बानी॥
महाराज तुम हौ उपहासी। कपट्ट कहा जानै बनवासी॥
कपट कहा सीख्यो[15] हम वन म। कपट होत राजन के मन मै[16] (1)॥१५०॥

---

१ नहीं (AB) २ एक दिन हम तुम रहे बन माही (A) एक दिन हम तुम हे बन माही (B)
३ मृग सुत चलि (A)　४ नीर (A) वारि (B)　५ पिय लीनो (A) तब दीनो (B)
६ दोऊ बन के वासी (B)　७ सग रहत जो (B)　८ सिगरे (A)
९ मन नहि (A)　१० राजै (B)　११ मीठी बातै करिक (AB)
१२ लेत त्रिया सबको मनु हरिकै (A) हरिक (B)　१३ ऐसी अद्भुत (A)
१३ ऐसी यहि विधि (B) १४ सरमानी (AB)　१५ सीखे (A)
१६ कपट्ट कहा बन मे हम सीख्यो। कट्टप होत राजन के दीख्यो॥ (B)

1–महाभारत और पद्मपुराण मे मृग सुत को जल पिलाने की इस घटना का उल्लेख नही है। अगूठी न मिलने पर पद्मपुराण की शकुतला भार्या के महत्व पर एक लम्बा भाषण देती है। कालिदास के काल तक भार्या या पुत्र की धार्मिक महत्ता इतनी अधिक न रह गई थी कि उसकी अवहेलना के पाप का भय दिखाकर किसी को सत्पथ पर लाया जा सकता। अत व मनोवैज्ञानिक ढग पर इस गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा करते हैं और राजा दुष्यन्त को याद दिलाने के लिये शकुन्तला द्वारा मृग सुत का जल पिलाने की घटना का उल्लेख करवाते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुवादको तथा स्वतन्त्र लेखको ने भी इस घटना का ज्यो का त्यों उल्लेख किया है। कालिदास ने राजा की कटूक्ति के उत्तर में गौतमी द्वारा बडा शिष्ट और दबा हुआ सा कथन प्रस्तुत करवाया है। राजा दुष्यन्त के वचन म राजोचित दर्प और प्रगल्भता है "आभिस्तावदात्मकार्यप्रवर्तिनीभिर्मधुराभिरनृ

चौपाई-यो कहि कै गोमती चुपानी। राजा[1] फेरि कही यो[2] वानी॥
होन सुभावहि ते चतुराई। सब नारिन मे हम ठहराई॥
सुनेहु[3] न कोयल की चतुराई। करतो कागन सो ठगहाई (1)॥

१ राज (A) २ यह (AB) ३ सुनहु (AB)

तवाभिराइष्यन्ते विपयिण ' अर्थात् अपना प्रयोजन साधन वालियां की ऐसी मीठी झूठी बाता स ता केवल कामाजन ही आइष्ट होन हैं। मतलब यह है कि राजा विपयी नही है। और शकुन्तला सच्चरित्रा, सुशीला न होकर वेश्या है। बात हल्की नही है चाट करने वाली है। नारी का चरित्र उसकी प्राणापम बाता है और उस पर शका करना और उस भरे दरबार व्यक्त करना बडी बात है। गौतमी ऐसे प्रकर शर के उत्तर म भी केवल इतना कहे कि "महाभाग। णारिहसि एव्व मन्तिदु। तवोवणसवड ढिदो वख्रु अम जणो अणभिण्णो कइतवस्स।' अर्थात महाशय आपका ऐसा नहीं कहना चाहिए। पवित्र तपोवन म पली यह कन्या कपट करना नही जानती। गोमती के इस कथन में प्रखरता नहा है जा कि अवसर की दृष्टि से आवश्यक थी। नेवाज की गोमती का उत्तर अनेकाश म उपयुक्त है 'कपटु कहा जाने बनवासी" क प्रश्नवाचकत्व मे राजा के अनान की ओर अस्पष्ट व्यग्य है। या उपहासा शब्द क प्रयोग न राजा के कथन को उपहास याग्य सिद्ध कर ही दिया है। नाचे की चौपाई ता राजा के चरित्र पर बडा ही कठोर प्रहार करता है। कपट ता राजाओ को, राजनीति की धरोहर है। भला हम बनवासी उसे क्या जाने। अर्थात तुम्हारा आचरण कपटपूर्ण है।

1–नारी 'बुद्धि है और पुरुष तद्सचालित कर्म'। यह तथ्य आदि काल से सवमा य है। नारी स्थिर रहकर भी पुरुष द्वारा अनेक कार्य सपादित करवा लेती है उसमे यह सहज गुण है। वह अशिक्षित रहकर भी सासारिक व्यवहार कुशल होती है। 'मालविकाग्निमित्रम् म 'वयस्य निसर्ग निपुणा स्त्रिया' और मृच्छकटिकम् म 'स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिता । पुरुषाणा तु पाण्डित्य शास्त्रैरेवोपदिश्यते॥' के द्वारा नारी की इस सहज पटुता को समथन प्राप्त है। यह सहज-पटुता न केवल मानवो में वरन् उन सभी प्राणियो मे जो पुरुष भिन्न योनि के हैं प्राप्त होता है। मानवी तो इस सहज-पटुता के साथ-साथ 'प्रतिबोध' अर्थात् ज्ञान भी प्राप्त करती है। ज्ञान का यहाँ अर्थ है जो अध्ययन, निरीक्षण और शिक्षा आदि के द्वारा अर्जित किया जाए। राजा दुष्यन्त इसी सार्वभौम सत्य का आश्रय लेकर 'अभिज्ञान शाकुन्तल' मे शकुन्तला को व्यग्य वाण से आहत करता है यथा—

स्त्रीणामशिक्षित पटुत्वमानुषीणा,
सदृश्यते, किमुत या परिबोधवत्य ।
प्रागन्तरीक्षगमनात् स्वमपत्यजात—
मन्यद्विजै परभृता किल पोषयन्ति ॥५।२२॥

वाम हिवाले मैं सुत¹ देती। उहै भव अपनै² फिरि लेती॥
राजा कही कठिन यह बानी। सकुंतला सुनि कै सरमानी³ ॥
कहा कहत है रे अयाई⁴। तैं मो⁵ सों कीन्ही ठगहाई॥
तब मतहिं न ठग करि जायो। जो तैं कह्यो सु तव मत मायो⁶(1)॥

---

१ हवाले सुता कर (A) हवाले सुत करि (B)   २ बड़ो भये तातें (AB)
३ फरमानी (A)   ४ अनियाई (B)   ५ हम (B)
६ जो तुम कह्यो सो सब हम मान्यो (AB)

अर्थात —

हाती स्त्रियाँ तिर्यंचीकुल की न्यक्ष शिक्षा के बिना,
फिर बात क्या उनकी भला जो ज्ञानशीला अंगना।
पालन पिता के शावकों का और खग करते सदा,
नभ उत्पतन से पूर्व वे परपुष्ट होते, सर्वदा॥
(इन्द्रनगर द्वारा अनुवादित अ० शा० पृ० ६३)

अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुवादकों ने कालिदास के नारी विषयक इस भाव की रक्षा तो की है किन्तु उक्त श्लोक में शकुन्तला के जन्म का जो उपहास छिपा है, उस क्रिया के प्रति राजा का जो व्यंग निक्षिप्त है उस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया है। यामुन्त्र विष्णु मिराशी के शब्दों में— राजा ने कोकिला का यह दृष्टान्त अपने पक्ष को पुष्ट करने वाला समझ कर दिया था। परन्तु उसके श्लोक में अन्तरिक्ष गमन, द्विज और परभृत ये शब्द द्विपक्ष होने से परावजीवी अप्सरा अपनी सन्तान दूसरे ब्राह्मण के द्वारा पोषण करा लेती है ऐसी भी ध्वनि उसमें से निकलती है। राजा इस प्रकार से मेरी माता की निन्दा करता है, यह जानकर शकुन्तला के क्रोध का आवेश ज्यादा हो जाता है।" (कालिदास० १८६)

नवाज का सकुंतला नाटक महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद नहीं है अतः यदि वे इस भाव का संरक्षण नहीं करते तो दोषी नहीं हैं। वास्तव में नेवाज का रचना लोक-साहित्य के अधिक निकट है उनके पात्र भी सामान्य जन से नजर आते हैं अतः उनके कथनों में वक्रता अथवा अस्पष्टता कहीं भी नहीं है। सामान्यतया नाटक भाषा हा के आश्रय से उन्होंने सीधे किन्तु चुटीले ढंग से अपनी बात कही है। इस स्थल पर भी कोयल और काग की किम्वदन्ती जो लोक प्रचलित है साधारण रीति से कही गई है हाँ प्रसंग के आश्रय से नारीजनोचित कुशाग्रता की ओर ध्यान सहज ही आकृष्ट हो गया है।

1—यही एक ऐसा स्थल है जहाँ शकुन्तला अपने पति के लिये किसी तीखे शब्द का प्रयोग

यों कहि नीचे शीश[1] नवायो। दुप बढि[2] गयो गरो भरि आयो॥
मुनिहि[3] ढाकि दुपसों सो[4] पायो। सकु तला तब रोवन लागी॥
अधर[5] दुहुन[6] मिप्यन तब पाले। रिस करि सकुतला सों बोले॥
नेह करत काह न[7] जनायो। जैसो किया सुफ्न[8] अब पायो॥
पूछि लीजियतु पहिचाने मो। प्रीति न करियतु बिन जाने सो॥
सकुतला सो तब यो कहिकै। बोले फिरि नृप सो रिस गहिकै[9]॥
सुनहु नृपति यह बात हमारी। भली बुरी यह नारि तिहारी॥१५१॥

---

१ सीस (A) सीसु (B) २ भरि (AB) ३ मुप कौं (AB)
४ दुपन सों (A) दुपन म (B) ५ ओंठ (AB) ६ दुहूँ (AB)
७ काह नहीं (A) काहू न (B) ८ सो फल (AB) ९ करिक (A)

करता हैं अन्यथा जीवन पर्यन्त समाज और भाग्य द्वारा प्रदत्त कठिनाइयों को भेलते हुए भी वह कहीं भी, कभी भी धृष्ट अथवा विक्षिप्त नहीं हुई है। वस्तुत उसकी यह अलौकिक सहिष्णुता ही उसके उदात्त चरित्र का मेरुदण्ड है। श्री एस० रामचन्द्र राव के शब्दों में "But all this suffering did not make her bitter or cynical It is this silent suffering and continued good will towards her husband, who has betrayed her, that qualifies her for the part af an ideal wife ' (The Herolns of the plays of Kalidas (P 1 6) यहाँ भी बहुत अधिक खीज कर दु खी होकर वह केवल 'अनार्य' शब्द का उच्चारण करती है और कहती है कि 'अनार्य, तुम सबको अपने समान ही समझते हो। आपके अतिरिक्त ऐसा कौन अधम होगा जो धर्म का चोगा पहिन कर घास फूस से ढके हुए गढे के समान लोगों को छल सकता हो।" नेवाज की शकुन्तला सामान्या नारी है। उसके सतीत्व पर जब ठग लगाई जाती है तो रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है किन्तु अतत तो वह अबला है कर क्या ? महाकवि की शकुन्तला 'तिणच्छण्णकूवोवमस्स' जैसी आपातत साहित्यिक उपमाओं द्वारा दुष्यन्त के कपटाचरण का द्योतन करती है जबकि नेवाज की शकुन्तला सामान्या विवश नारी की भांति उसे कपटी और ठग कहती है साथ ही अपनी मंदबुद्धि और अदूरदर्शिता पर ग्लानि भी प्रकट करती है। इतना ही नहीं विषमावस्थिति में मकल होकर रो भी पड़ती है जोकि नारी जनोचित अत्यन्त सामान्य व्यापार है।

दोहा—सिष्यन के पीछे लगी, सकुतला अकुलाय ।
पीछे देषि सकुन्तलहि, बोने सिष्य रिसाय ॥१५३॥

चौपाई—कहा अभागिन तै इत आवत[1] । सोई करत[2] जो कछु मन भावन[3] ॥
ज्यो नृप कहत सुनू[4] हैं तैसो । करिहै कहा सुना मुनि ऐसो ॥
साचु जो है यह[5] तेरो कहिबो । उचित तोहि पिय घर को रहिबो ॥
मुनि के आश्रम तू अत्र रहै[6] । तौ सब तोहि कलकिन कहै[7] ॥
पिय की जो ह्वै रहै[8] दासी । तौ तुव नेकु न[9] ह्वै है हासी (1)॥

---

१ आवनि (AB) २ करति (AB) ३ भावति (AB)
४ सुहूँ (AB) ५ वह (B) ६ ऐहै (AB)
७ कलक लगहै (A) क है (B) ८ रहिहै (A) रेहो (B) ९ तऊ न तोरी (AB)

विवशता और नारीजन सुलभ निरीहता व्यजित होती है वह अन्य शाकुन्तलोपाख्यान रचयिताओं की रचनाओं में नहीं है। यह निगाडी शब्द सर्वथा देशज हैं लोकव्यवहार में, सामान्यतया स्त्रियों में इसका व्यवहार काफी किया जाता है इसका अर्थ है अभागा जिसके आगे पीछे कोई न हो। 'निगाडा नाठा' शब्द तो लोकोक्ति और मनाज के अर्थों में बहुत अधिक प्रचलित है ही। नवाज द्वारा प्रयुक्त यह 'निगाडो' शब्द अद्भुत चमत्कार उत्पन्न करने वाला है। लोकज शब्द की शक्ति का अत्युत्तम प्रयोग इस स्थल पर किया गया है। वस्तुत इस लोक प्रचलित उपाख्यान को लोक भाषा हो में प्रस्तुत करके कवि नवाज ने स्तुत्य प्रयास किया है

एक बात और द्रष्टव्य है कि शकुन्तला दुष्यन्त के द्वारा इतनी अधिक भर्त्सना पाकर भी उसके प्रति क्रोधित नहीं होती। एक भी शब्द ऐसा नहीं कहती जो दुष्यन्त के मान-सम्मान को ठेस पहुँचाने वाला हो। इस सम्पूर्ण तिरस्कार का कारण भी वह अपने ही दुर्भाग्य को देता है। वस्तुत सहिष्णुता की दृष्टि से वह कालिदास की सीता है। शारदारञ्जन रे का कथन इस विषय में द्रष्टव्य है "In the face of the gravest insult, when she was apparantly most meanly विप्रकृत, she could not use a word harsher than अनार्य towords her husband When the fatal decision was finally announced, she only said "भगवति वसुधे देहि मे विवरम्' and blamed not her husband the author of her misery, but her destiny like another model woman Sita" (Kalidas as Abhijnana Sakuntalam Thirteenth Edition by Saradaranjan Ray M A)

1–मनुष्य की आयु साधारणतया एक सौ वर्ष मानी जाती है और इसी आधार पर २५-२५

भागे' के स्थान पर 'अभागिन' शब्द का प्रयोग किया है 'पुरोभागे' शब्द में जहाँ शकुन्तला का अविवेक एवं प्रकृतिगत दुर्बलता परिलक्षित होती है वहाँ 'अभागिन' शब्द में उसके भाग्य वैपरीत्य, जो कि करुणा का जनक है, की व्यंजना है। शार्ङ्गरव इस घटना का कारण शकुन्तला का पुरोभागी होना नहीं वरन् भाग्य दोष ही मानता है। दूसरा विशेष शब्द है 'स्वातन्त्र्यमवलम्बसे' अर्थात् स्वतन्त्र होना चाहती है। शकुन्तला इस समय अपने पतिगृह में है अतः उसे उसके तन्त्र में रहना चाहिए स्वतन्त्र में नहीं। यों भी मनु के अनुसार नारी को किसी भी अवस्था में स्वतन्त्र नहीं होना चाहिए—"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"। गुसाईं तुलसीदास भी नारी की स्वतन्त्रता को अच्छा नहीं मानते हैं—"जिमि स्वतन्त्र होय बिगरहिं नारी।" नेवाज ने 'स्वतन्त्र' शब्द का प्रयोग नहीं किया है हालाँकि उन्होंने आशय वही रखा है जो कालिदास का है। स्वातन्त्र्य अर्थात् स्व आत्मा का तन्त्र होता है। जो मन में आये वही करना स्वातन्त्र्य है। पराधीन होकर अपने मन की करना अनुचित है।

उपरिलिखित श्लोक में शार्ङ्गरव वधू के चिर प्रचलित आदर्श ही का पोषण करता है। पति को ही प्रभु मानना, उसी के साथ सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना कुल वधू का धर्म है—'जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युता मुदिते। सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात्।' तात्पर्य यह है कि कुलबाला विवाह के उपरान्त पति की ही आश्रित हो जाती है उस पति के प्रति सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर देना होता है। यहाँ तक कि विवाहोपरान्त उसका गोत्र जो पितृकुल से उसे प्राप्त था, बदल कर पति का गोत्र हो जाता है। इस प्रकार विवाह के द्वारा उसे पतिगृह तो मिलता है किन्तु पितृगृह सदा सर्वदा के लिए छूट जाता है वह किसी भी अवस्था में पितृगृह को अपना स्थायी निवास नहीं बना सकती। पृ० ९७ पर स्पष्ट किया गया है कि ऐसी स्थिति में लोकापवाद भी विषय होता है। आज भी हिन्दू लोक जीवन में यह विश्वास प्रचलित है कि वधू की डोली पतिगृह जाती है और फिर अर्थी ही निकलती है। Hindu Law भी इन तथ्यों का अनुमोदन करता है "The wife is bound to live with her husband and to submit her self to his authority" (principles of Hindu Law by Sir Dinshah Fardunji Mulla P P 532 Sc 442) इसी पुस्तक में यह भी स्पष्ट है कि पति की मृत्यु के उपरान्त भी पत्नी का पितृकुल का गोत्र प्राप्त नहीं होता अर्थात वह पितृकुल में सम्बद्ध नहीं की जा सकती—"It has been held in Allahabad that where a widow was remarried a person belonging to her fathers gotra the marriage is not invalid as she has not reverted to her fathers gotra by her husbands death and her issue is legitimate" (P P 525 Sc 436) इस प्रकार यह सिद्ध है कि प्रचलित विश्वासों और कानूनों के अनुसार एक विवाहिता स्त्री का किसी भी दशा में पतिगृह छोड़कर पितृगृह जाना निंद्य और दण्ड्य था। किन्तु **प्रश्न** यह है कि शकुन्तला का विधिवत विवाह तो अभी हुआ ही नहीं था जब तक **धार्मिक विधि**

विधान सम्पन्न न हो जावें तब तक कन्या कुमारी हो मानी जाती है ऐसा कुछ स्मृतिकार मानते हैं। इसके विपरीत दायभाग के रचयिता और मिताक्षर स्कूल के अनुयायी यह मानते हैं कि जो कार्य सम्पन्न हो गया वह यदि गलत भी हो तो भी उस विधान द्वारा स्वीकृति मिलनी चाहिये। Hindu Law में Sir Mulla की commentary द्रष्टव्य है—"Factum Valet quod fie i non-debuit — It is a doctrine of Hindu Law enunciated by the author of Daya bhaga and recognised also by the Mitakshara School, that "a fact can not be altered by a hundred texts" The meaning of the doctrine is that where a fact is accomplished, in other words, where an act is done and finally completed though it may be in contravention of a hundred directory texts, the fact will stand and the act will be deemed to be legal and binding The maxim of the Roman Civil Law corresponding to this doctrine is factum valet quod fieri non-debuit which means that what aught not to be done is valid when done (P P 523 Sc 434) इस प्रकार यह विदित होता है कि कण्व और उनके शिष्य यह तो मान ही गये थे कि यह विवाह सम्पन्न हो गया है और शकुन्तला जो कि अन्तःसत्वा है दुष्यन्त की वैधानिक पत्नी है। और चूंकि पत्नी है इसलिए उसे किसी भी दशा में अब पतिगृह में स्थान नहीं मिल सकता क्योंकि ऐसा करना लोकपवाद का हेतु और अधार्मिक कृत्य होगा। ऐसा अधार्मिक और निन्दनीय कृत्य केवल उन्हीं के द्वारा सम्भव है जो स्वैरिणी है। इसीलिए वे शकुन्तला को उसके कर्तव्य का बोध कराते हैं और कहा है कि तुझे दासी बनकर भी पतिगृह ही में रहना चाहिए।

कवि नेवाज ने महाकवि की के भावों का अनुमोदन किया है हाँ एक बात विशेष कही जान पड़ती है कि यदि तू नृप के कहे अनुसार कुलटनी' और 'स्वैरिणी' है तो मुनि कण्व भी तेरा क्या करेंगे अर्थात् तुझे घर में कैसे रहने देंगे। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि यदि तू कुलवती और सच्चरित्रा होती तब तो यह भी सम्भावना थी कि पितृगृह में आश्रय मिल जाता। सम्भव है नेवाज के समय तक पत्नी के सम्बन्ध में प्रचलित नियमों में ढील आ गई हो और ऐसी विषम स्थितियों में उसे पितृगृह में पनाह मिल जाती हो। आज भी ऐसा होता है।

दोहा—सकुंतला की दुरदसा देषि दया मन ठानि[1]।
सोमराज प्रोहित सुबुध[2] बोल्यो नृप सों आनि[3] ॥(1) १५५॥

१ आनि (AB) २ नृपति (AB) ३ सों बोलो यह बानि (AB)

1–पद्मपुराण में दुष्यन्त और शकुन्तला के इस विवाद का निराकरण करने के लिये पुरोधा मन्त्रणा देता है और यही कसौटी प्रस्तुत करता है कि यदि इसके आपके समान पुत्र उत्पन्न हो तो आप इस भार्या रूप मे स्वीकार करें क्योंकि शालि के बीज से यवांकुर तो प्रस्फुटित हो ही नहीं सकता। किन्तु जब तक यह प्रसव करे आप अपने घर मे रख— "यावत प्रसमवैर नारी तिष्ठतु ते गृहे।" राजा दुष्यन्त शकुन्तला को प्रसव पर्यन्त भी अपने शुद्धान्त मे रखने को तयार नहीं है उसका विचार है कि "संसर्गादपि पुंश्चल्यो दूषयन्ति कुलस्त्रियः।" ऐसी स्थिति मे पुरोधा शकुन्तला को अपने घर मे रखने को तयार होता है साथ ही राजा को यह भी विश्वास दिलाता है कि यह शुद्ध पवित्र नारी है और इसका पुत्र अवश्य ही भूतल का अधीश्वर होगा और आपको इसे भार्या रूप मे स्वीकार करना होगा। पुरोधा का कथन द्रष्टव्य है—

अदृष्टतनयस्योऽसि राजराजोऽपि भूतले।
अतस्त्वत्सन्ततौ श्रद्धा राजन्! मे जायतेऽधिका॥
इयं साध्वी वरारोहा कण्वेन परिपालिता।
व्यभिचारमतां राजन्! नाहं मन्ये मनागपि॥
यावत् प्रसवमेतां तु वासयेऽहं निजालये।
प्रसवे सति कल्याणीं स्वयमेव ग्रहीष्यसि॥

महाकवि कालिदास ने इस स्थल पर राजा दुष्यन्त के मन की संकल्प विकल्पात्मक स्थिति को उसी के प्रश्न में मुखर कराया है। राजा स्वयं को इस विवाद का निर्णय करने में असमर्थ पाता है अतः अपने पापदों से परामर्श करना आवश्यक है। यह मामला चूँकि धर्म से सम्बद्ध है अतः धर्माधिकारी सोमरात पुरोहित से वह पूछता है—

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः॥५।३२॥

इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

चौपाई—लरिका को यह जावो[1] जबलौ। मेरे गेह रहै या[2] तब लौ॥
ह्वै है सुत चक्रवै[3] तिहारे। यह सब पंडित कहत पुकारे॥
सकुन्तला जेहि पूतहि जावै। जो जु[4] चक्कवै लक्षन (1) पावै॥

१ जाव यह (AB)   २ यह (AB)   ३ चक्कव (AB)   ४ तो (AB)

है भ्रान्ति, या मैं कुछ भूलता हूँ,
असत्य या उक्ति शकुन्तला की।
कहाँ बनूँ क्या निज दार त्यागी,
या पातकी फिर पर नारी स्पर्श से॥

स्वपत्नी त्याग और परपत्नी रक्षण दोनों ही प्रकार म पाप होता है। अतः पूछता यह है कि इन दोनों मे स कौन सा कार्य करके पाप से बचा जा सकता है। पुरोहित सोच विचार कर उत्तर देता है कि जब तक प्रसव न हो शकुन्तला मेरे घर पर रहे क्योंकि सत्प्रकृति सम्पन्न सामुद्रिक विद्या जानने वालों ने कह रखा है कि आपके पहला पुत्र चक्रवर्ती होगा। अतः यदि चक्रवर्ती पुत्र हो तब तो आप इन्हें भार्या रूप म ग्रहण कर लें अन्यथा इनका पिता के पास वापस जाना तो निश्चित है ही। कालिदासकृत इस प्रसंग में पुरोहित राजा के पूछने पर अपना अभिमत देता है वह राजेच्छा जाने बिना अपनी ओर से कुछ भी कहने का साहस नहीं करता – यद्यपि मामले में उसका हस्तक्षेप, धर्माधिकारी होने के नाते, करना अनुचित न होता। किन्तु राज दरबार का अनुशासन ही ऐसा है कि राजा के पूछे बिना किसी बात में न बोलना चाहिए सामान्यावस्था में जबकि विवेक बुद्धि और मेधा सभी कुछ नियमित कार्य करते रहते हैं यह राजानुशासनादि पालनीय रहते हैं किन्तु जब मानव मन पर बुद्धि के स्थान पर भावनाओं का आधिपत्य हो जाता है—करुण अवसर मन को विगलित कर देता है तो यह बाह्य बन्धन शिथिल हो जाते हैं। कवि नेवाज की शकुन्तला की बेबसी निरीहता, विवशता, दया एवं तज्जन्य करुण विचार पर दुःखकातर ब्राह्मण सोमराज का भाव-व्यथित कर देता है। वह राजानुशासन के बन्धनों की परवाह न कर स्वयं ही राजा से निवेदन करता है। पद्म पुराण के पुरोधा की भाँति यह नहीं कहता कि शकुन्तला प्रसव काल तक आपके यहाँ रहेगी वरन् प्रथमतः ही वह निवेदन कर देता है कि "लरिका को यह जावो जबलौं। मेरे गेह रहै या तब लौं॥" सोमराज पुरोहित का स्वयं प्रस्ताव रखना शकुन्तला की करुणामिश्रित अवस्था के चित्र को और गहरा रंग देता है।

1—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार चक्रवर्ती के चिह्न निम्नवत् हैं—

यस्य पादतले पद्मं चक्रं वाप्यथ तोरणम्।
अंकुशं कुलिशं वापि स राजा भवति ध्रुवम्॥

तो याको साची[1] करि जानौं[2]। महाराज अपने घर आनौं[3] ॥
अरु जो[4] और तरह को[5] ह्वै है। तौ अपने मुनि के घर जै है ॥१५६॥

दोहा—सुर के मुनि के[6] साप ते नर[7] वेसुधि ह्वै[8] जात।
श्राप मिटे आवै[9] सुरति फिरि पाछे[10] पछितात ॥१५७॥

चौपाई-यह सुनि नृपति कही यह वानी। करहु जो तुम5 अपने मन ठानी[11] ॥१५८॥

दोहा—यह लै आयसु नृपति सा[12] दया राखि सब देह।
सकुंतला सो कहि उठ्यो चलो हमारे गेह[13] ॥१५९॥
सिष्य[14] छोडि या[15] विधि गए या[16] विधि छोडी नाथ।
सकुंतला रोवत चली सोमराज के साथ (1)॥१६०॥
सकुंतला के देखि दुख अगिनि[17] लपट सी आय।
माइ मयनका लै गई भुव ते गगन उठाय[18] (2) ॥१६१॥

---

१ साचो (A) २ मान (AB) ३ आन (AB) ४ कछु (AB) ५ जो (AB)
६ सुर मुनि नर के (A) सुर नर मुनि के साप तें (B) ७ सब (AB)
८ वेसुध (A) ९ आवति (AB) १० पीछे (AB)
११ आनौं (A) आनि (B) १२ को (B) १३ हमारो (A)
१४ सिष (A) १५ एहि (A) वा (B) १६ यहि (A)
१७ आगि (AB) १८ भुवते वाहि उडाइ (AB) प्रति B मे निम्न चौपाई और हैं—
यह सुनि हरष अंग उपजायो। राजै तब यह वचनु सुनायो ॥
हम पहिले ही यह तजि दीनी। भली बात परमेस्वर कीनी ॥
भूतिनि हुती किधौ यह प्रेती। रखतो तो मोहि जीवहि लेती ॥

1–अभिज्ञान शाकुन्तल मे शकुन्तला का यह कथन कि "भगवदि ! वसुंधरे ! देहि मे अन्तर" उसके हृदय की पीडा की वडी प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। जब कहीं, आश्रय नहीं, तो माँ वसुंधरा तूही अपने में समाले। यह कथन निराशा की अन्तिम अवस्था ही मे सम्भव है। प्राय जब कभी नारियों का तिरस्कृत किया जाता है, उन पर चारित्रिक आरोप लगाए जाते हैं तभी वे ऐसी वाणी बोलती हैं भगवति सीता भी अन्तत ऐसे ही चिल्लाती हुई धरती में समा गई थीं। नवाज न केवल 'सिष्य छाडि या विधि गये या विधि छाडी नाथ' कहकर कुछ थोडा बहुत बोध उसकी विवशता का दिया है।

2–महाभारतीय शाकुन्तलोपाख्यान में इस स्थल पर एक अशरीरिणी-वाणी प्रस्फुटित होती है कि शकुन्तला का कथन सत्य है और तुम ही इसके पिता हो अत तुम इस पुत्र का पालन पोषण करो तथा शकुन्तला को स्वीकार करो—

चौपाई—शकुंतला को गोधु न पावा। आहित दौरो[1] नृप ढिग आवा॥
महाराज कहिय यह बैननि। ऐसो अचरज दख्या नैननि।

---

१ दौरयो (A)

—

"भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त ! मावमस्थाः शकुन्तलाम् ॥
रेतोधा पुत्र उन्नयति नरदेव ! यमक्षयात् ।
त्वञ्चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥
जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधाकृतम् ।
तस्माद्भरस्व दुष्यन्त ! पुत्रं शाकुन्तलं नृप ॥
अभूतिरेषा यत्यक्त्वा जीवञ्जीवन्तमात्मजम् ।
शाकुन्तलं महात्मानं दौष्यन्तिं भर पौरवम् ॥
भर्त्तव्योऽयं त्वया यस्मादस्माकं वचनादपि ।
तस्माद्भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः ॥'

महाभारत का यह प्रसंग भले ही दैवी शक्तियों और तराद्भुत चमत्कारों का पोषक हो किन्तु सामान्य जीवन में अनहोनी है, अस्वाभाविक है साथ ही नाटकीय दृष्टि से भी अनुपयुक्त है। पद्मपुराणकार ने इस प्रसंग को तनिक सुधार के साथ समाविष्ट किया है। उसके अनुसार जब शकुंतला पुरोहित के द्वारा सान्त्वयित होकर धीरे धीरे उसके पीछे जाने लगती है तो एकाएक एक आकार अवतरित होता है। यह आकार भी साधारण नहीं वरन् तडित्वत्। इस तडिदालोक का अवतरण सभा के मध्य होता है, दुष्यन्त भय विह्वल हो जाता है यथा—

एतस्मिन्नन्तरे विप्र ! मेनकाऽप्सरसां वरा ।
तेजोरूपा व्योममध्यात् तडित्वान पपात सा ॥
"किमिदं किमिदं चित्रम्" इति जल्पत्सु सर्वतः ।
सभाग्र्येषु च सर्वेषु तेजसा धर्षितेषु च ॥
आलोकनेऽप्यशक्तेषु दुष्यन्ते भयविह्वले ।
शकुन्तलां समादाय अङ्कमारोप्य सत्वरा ॥
अम्बरं विजगाहे सा तत् केनापि न लक्षितम् ।
एवं गते तु दुष्यन्ते खेदमाप ततो भृशम् ॥

असुवन की अपियन गहि माला। चली साथ मेरे वह बाला ॥
धुनत दुह कर भाल अभागी। करि पुकार रोवन तव[1] लागो ॥ (1)
तब यक आगि लपट सी आई। वाहि गगन लै गई उठाई[2] ॥
यह सुनि हरष अग उपजायो। राजा[3] तब यह वचन सुनायो ॥
हम पहिले ही वहि[4] तजि दीन्ही। भली बात परमेश्वर[5] कीन्ही ॥

१ मग (A)   २ उडाई (A)   ३ राज (A)
४ यह (A)   ५ परमेस्वर (A)

सभा के मध्य ही यह समस्त व्यापार घटित होता है, पुरोहित का शकुन्तला के गायब हो जाने की कथा राजा को सुनाने की आवश्यकता नहीं होती है। महाकवि कालिदास ने इस आलोक के अवतरण का प्रसग अप्सरस्तीर्थ के निकट सम्पन्न होना बताया है। साथ ही यह भी कहा है कि वह आलोक स्त्री के समान आकृति वाला था। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि अप्सराओं का सम्बन्ध विशेष रूप से जल से है उनकी स्थिति भी प्राय जल मे ही मानी जाती है। "वेदोत्तर-कालीन साहित्य मे बार बार आता है कि अप्सरायें वन कुञ्जों और सरिताओं में, विशेषतया गगा मे रहती हैं और वे समुद्र में वरुण के भवन में भी विराजती हैं अप्सरा शब्द का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है— जल में भ्रमण करने वाली।" अत अप्सरस्तीर्थ, जोकि अप्सराओं का निवास स्थान था, के निकट इस घटना का घटित होना अधिक समीचीन है। अप्सराओं का सम्बन्ध मेघ, विद्युत और तारा से भी है 'अभ्रिये विद्युन्नत्रिये या विश्वावसु गन्धर्व सचध्वे' अथ० २ २ ३। अत पद्मपुराणकार के अनुसार मेनका का तडित रूप में अवतरित होना भी कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। तो भी कालिदास का एतद् सम्बन्धी व्यापार अधिक बुद्धिगम्य है।

कालिदास या अन्य शकुन्तलोपाख्यानकार न तो यह कहते हैं कि वह आलोक कौन था, न यह बताते हैं कि वह शकुन्तला को लेकर कहाँ गायब हो गया। नेवाज इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं। उनके अनुसार वह अग्नि की ज्वाला के समान तेजोमयी नारी उसकी माँ मेनका थी जो उसके दुःख को न देख सकी और उसे लेकर गगन में चली गई। नेवाज का यह कथन नाटकीय दृष्टि से समीचीन नहीं है क्योंकि इसके द्वारा प्रेक्षकों की जिज्ञासा नष्ट हो जाती है। पाठ्य नाट्य होने के कारण नेवाज ने सम्भवतया यह कथन प्रस्तुत किया है।

1–अभिज्ञान शाकुन्तल में इस करुण विलाप का चित्र इस प्रकार है—

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

यो कहि प्रोहित घरहि पठायो। नृप उठि रौन मंदिरहि[1] आयो॥
जऊ[2] सुरति आवति कछु नाही। तऊ[3] भई[4] चिंता चित माही॥
नेकु न आवति[5] नीद सयन मे। रहत[6] उदासी निशिदिन[7] मन मे॥७६॥

॥ इति श्री सुधातरंगिन्या[8] शकुंतला नाटक कथायां तृतीयस्तरंग ॥

---

१ मंदिर मो (A) २ तऊ (AB) ३ AB प्रति मे नहीं है
४ भई महा (AB) ५ आवत (A) ६ रहति (AB)
७ निसदिन (AB) ८ सुधा तरंगनि (A) B प्रति मे नहीं है।
९ प्रति A में नहीं है।

राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

निंदा अपन भाग की चली करति वह तीय।
रोई बाँह पसारि के भई विथित अति हीय॥ (श० ना० पृ० ९२९)

इसी भाव का समावेश मैथिलीशरण जी ने अपने खण्डकाव्य 'शकुंतला' मे इस प्रकार किया है—

अपने हतविधि की ही निंदा की उसने रोकर,
सतियाँ पति को नहीं कोसती परित्यक्त भी होकर।
यही कहा उसने कि—"कहाँ अब मैं अभागिनी जाऊँ?
माँ धरणी! तू मुझे ठौर दे, तुझमें अभी समाऊँ।"

नेवाज के प्रस्तुत प्रसंग मे भी यद्यपि भाव प्राय यही है तथापि 'असुवन की अथियन गहि माला', 'धुनत दुहू कर भाल अभागी', 'करि पुकार रोवन' आदि पदो ने करुणा निमज्जित जिस चित्र को प्रस्तुत किया है वह सर्वथा भावमय है। दोनो हाथो से सिर पीट डालना, पुकार पुकार कर रोना और वह भी एक सम्भ्रान्त तरुणी का, कितनी विषम स्थिति में सम्भव हो सकता है इसे सभी सुधी समझते हैं। सच तो यह है कि नेवाज ने जो भी चित्र प्रस्तुत किया है वह अपनी प्रभावशालीनता, मार्मिकता और आकर्षणीयता मे अनुपम है।

चतुर्थ तरग

चौपाई–सकु तला[1] जो जलहि[2] गिराई। वहै[3] अगूठी[4] केवट पाई (1) ॥१६३॥

दोहा—वहै अगूठी[5] हाय ले वेचन गयो बजार।
वेचत केवट पकरि गो पाई[6] अति ही मार ॥१६४॥

चौपाई–नृप को नाउ[7] अगूठी देप्यो। चोर[8] केवटहि जानिय[10]लेप्यो ॥१६५॥

दोहा—चोर केवटहि जानि कै[11] पकरयो तब कुतवाल[12]।
तहा[13] अगूठी को[14] लग्यो केवट कहन[15] हवाल ॥१६६॥

चौपाई–साहेब यह नहि मय न चुराई[16]। मय तडाग के भीतर पाई[17] ॥१६७॥

दोहा–भरे ताल मछरीन[18] सो[19] पेलत हुतो। सिकार।
तहै अगूठी ललित यह कठि आई पुनि जार[20] ॥१६८॥

---

१ सकु तल (B) २ जल मे (AB) प्रति में 'जो' से पूव है ३ उहै (AB)
४ अँगूठी (AB) ५ अँगूठी (AB) ६ पायो (B)
७ नाँउँ (A) नाउँ (B) ८ चोर (A) ९ केवट ही (B)
१० लोगन (AB) ११ चोर जानिक केवटहि (A) चोर जानि कर केवटहि (B)
१२ कोतवाल (AB) १३ तहाँ (AB) १४ को (A) के (B)
१५ कहत (B) १६ साहेब यह हम नाहि चोराई (A)
साहेब म यह नाहि चोराई (B) १७ में जल के भीतर यह पाई (AB)
१८ मछरिनि (A) १९ को (A) की (B) २० तहाँ अँगूठी कढ़ि गिरी, नाहिन रहो सम्हार (AB)

1–यद्यपि अभिज्ञान शाकु तल और पद्मपुराणीय शाकुन्तलोपाख्यान में अगूठी के राजा दुष्यन्त तक पहुँचने के वृत्तात म थोडा बहुत अन्तर है तथापि दोनों ही स्थला पर अंगूठी धीवर के पास बताई गई है। धीवर ने अपना व्यवसाय दोना ही ग्रथा में क्रमश इस प्रकार बताया है–"अह जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायै कुटुम्बभरण करोमि।" और 'जात्याहं धीवरो राजन् ! मत्स्यमात्रोपजीवक ।" [illegible]

चौपाई–यो सुनि केवट को छुटवायो[1] । कोतवाल नृप के ढिग आयो (1)॥

---

१ छुड़वायो (A) छिड़वायो (B)

उपस्थित किया है। जैसा कि हम सब मानते हैं केवट का व्यवसाय मात्र नाव के द्वारा यात्रियों को नदी पार कराना होता है। तुलसीदास की कवितावली में केवट स्वयं ही कहता है—

> पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बार,
> केवट की जाति, कछु बेद ना पढ़ाइहौं।
> सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू
> हौं दीन वित्तहीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं॥

और धीवर या मछियारे का कर्म है — मछली मार कर बेचना। सम्भवतया इसीलिए नेवाज का केवट व्यवसाय के लिए नहीं वरन् खेल के रूप में शौकिया मछली का शिकार कर रहा था कि राजा की अंगूठी जाल में आ गई। जबकि कालिदास के धीवर ने रोहू मछली को काटने पर उसमें अंगूठी को प्राप्त किया।

प्रश्न यह है कि नेवाज ने यह परिवर्तन क्या किया? पहली बात कि जो तीर्थ अप्सराओं द्वारा रक्षित हो, वहां मछियारों को मछली पकड़ने और मारने की अनुमति नहीं हो सकती यह दूसरी बात है कि उसी तीर्थ में नाव चलाने वाले केवट कभी कभी शौक या मन बहलाव के लिए जाल या बंसी में दो चार मछलियां पकड़ लें। रोहू एक बड़ी मछली होती है और सामान्यतया तेज चलने वाली नदियों में पाई जाती है। छोटे-छोटे कुंडों अथवा तीर्थों में उसका मिलना सम्भव नहीं है। यही सोचकर शायद निवाज ने यह परिवर्तन किया है।

1–पद्मपुराण के अनुसार राजा दुष्यन्त ब्राह्मणों और मन्त्रियों के साथ प्रजा के हाल चाल जानने के लिए नगर में गया हुआ था वहीं राज भट मारते पीटते हुए धीवर को राजा के सामने पेश करते हैं और राजा अंगूठी देखकर मूर्छित हो जाता है कवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में इस प्रसंग का चित्रण विस्तार पूर्वक किया है। छठे अंक के प्रवेशक में मात्र इसी प्रसंग का चित्रण है। इस वर्णन से तत्कालीन राज्य व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यथा चोरी के अपराध के लिए प्रायः प्राण दण्ड दिया जाता था—"जानुक स्फुरतो मम हस्तावस्य वधस्य सुमनसः पिनुद्धम्।' और राजकर्मचारी अपराधियों से रुपया पैसा भी ले लिया करते थे आदि आदि। नागरिक श्याल यद्यपि नगर शासन का बड़ा अधिकारी होता था तथापि वह अपराधी को बिना न्यायालय में पेश किए छोड़ नहीं सकता था। धीवर के कथन पर विश्वास करके भी नागरिक श्याल उसे राजा दुष्यन्त के

आप[1] अगूठी नपहि देदैई[2] । सकुतला नप को सुधि आई ॥
पैठ्यो दुप जिय सुप कढि[3] भाग्यो । पट[4] दृग जल बरसन[5] तब[6] लाग्यो ॥
दोउ कर सिर मे[7] दय मारे[8] । हाय हाय मुप वचन निकारे[9] (1)॥
और कछू न रही सुधि तन मे । नृप यों[10] सोचन लाग्यो मन मे ॥
अपने गरे छुरी मय दीन्ही । कासो कहो[11] कहा मय[12] कीही[13] ॥१६३॥

१ आइ (AB) २ देवाई (AB) ३ उठि (B) ४ टपटप (AB)
५ बरिसन (A) ६ AB प्रति मे नहीं है ७ में (A) म (B)
८ मार (AB) ९ निकार (A) पुकार (B) १० यों (B)
११ कहों (B) १२ मैं (A) म (B) १३ कीनी (AB)

पास ले जाता है और अँगूठी उन्हे देता है । राजा को अँगूठी देखकर शकुन्तला का स्मरण हो आता है और नागरिक श्याल राजादेश से धीवर को छोड देता है साथ ही अँगूठी के मूल्य के बराबर धन भी उसे देता है । कवि नवाज ने यह लम्बा चौडा आख्यान भवन का य म सम्मिलित नही किया है । सम्भवतया उन्हे इस सदभ का प्रधान कथानक से कोई विशिष्ट सम्बन्ध दिखाई न दिया होगा और शायद उनके काल तक राज्य व्यवस्था भी काफी बदल गई थी । कोतवाल ही को मौखिक परीक्षण (Summary Trial) के बाद अपराधी को छोड देने के अधिकार प्राप्त हो गए थे । इसीलिए उन्होंने कोतवाल के द्वारा समस्त वृत्तान्त सुने जाने के पश्चात् केवट की मुक्ति करा दी है ।

1–जैसा कि पहले भी यत्र तत्र सकेत किया जा चुका है महाकवि कालिदास ने राजा दुष्यन्त को सवत्र ही राजोचित गाम्भीर्य और प्रभाव से विमण्डित चित्रित किया है । वह किसी भी स्थल पर भावनाओ के प्रवाह म बहकर सामान्यजनोचित व्यवहार नही करता । यहा देखिए, पद्मपुराण का दुष्यन्त अँगूठी देखते ही मूर्छित हो जाता है । उसकी आँखो से जल बिन्दु गिरने लगते हैं । वह यह विचार नही करता कि मैं चक्रवर्ती सम्राट् हू और मुझ मन्त्रियो, ब्राह्मणों राजकर्मचारियो तथा इस अपराधी की विद्यमानता मे रोना नहीं चाहिए । वस्तुत प्रेमी अक्ल का रास्ता जानता ही नही । तर्क और बुद्धि तो सच्चे प्रेम के मार्ग म व्यवधान हैं । ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने कहा है —

मुईन बचश्मे खिरद हुस्ने दोस्त न नुमाय ।
बबीं बदीदए मजनू जमाले लैला रा ॥

अर्थात ऐ मुईन ! अक्ल की आँख से तू दोस्त का हुस्न न देख । तू मजनूँ की आँख से लैला के हुस्न को देख । लेकिन अभिज्ञान शाकुन्तल का दुष्यन्त बुद्धि का साथ कभी नहीं छोडता । नागरिक श्याल के द्वारा अँगूठी दी जाने पर भी वह रो नहीं पडता मूर्छित नहीं हो जाता वरन् बडे सकून से धीवर के अभियोग का निर्णय करता है । हाँ नागरिक श्याल के निम्न कथन से इतना तो मालूम होता है कि वे उद्‌ पर्युत्सुक अवश्य,

चौपाई–प्राण प्रिया[1] घर बैठहि[2] आई। मा सो घर मे रहन न पाई ॥
भूलि गई सुधि[3] तब दुपदाई[4]। अब वे बातैं सब सुधि आई ॥
प्रिया[5] लाज तजि भेद[6] बतायो। तऊ न मो[7] मन मे कछु आयो ॥
प्राण प्रिया[8] इत ते मय[9] छोडो[10]। चले शिष्य उत[11] छाडि[12] निगोडी ॥
करि पुकार मग रोवन लागी। तऊ दया नहि मोमन[13] जागी ॥
वह सुधि सब अब मन म करकति। कहा करी छाती[14] नहि दरकति(1)॥१७०

---

१ प्रान पिया (AB)	२ बठे (AB)	३ सब (AB)
४ दुषपाई (AB)	५ पिया (AB)	६ भेदु (B)
७ मेरे (A)	८ प्रान पिया (AB)	६ मैं (A) मं (B)
१० छोडी (A)	११ तब(B)	१२ छोडि (AB)
१३ मेरे (AB)	१४ छतिया (AB)	

हो गए थे क्योंकि उन्हें एकाएक अपने प्रियजन की याद आ गई थी। "तस्य दर्शनेन भर्ता कोऽप्यभिमतो जन स्मृत इति, यतो मुहूर्त प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमना मासीत।"

कवि नेवाज का नायक दुष्यन्त वस्तुत सामान्य व्यक्ति है। माना हम आप म से एक। प्रिय की स्मृति आते ही उस के सभी पूर्व स्मृतियाँ हो उठती है जो शकुन्तला के सान्निध्य मे घटी थी। वह अपने कृत्य पर, महान अपराध पर लज्जित होता है पाश्चाताप की अग्नि मे सुलगने लगता है। विरह और प्रायश्चित्त की निर्धूम अग्नि म तडपने लगता है। बिल्कुल सामान्य जन की तरह कपाल ठोक लेता है, दुहत्तड मारकर रो उठता है, कहता है 'कासो कहौं कहा भय का हा'। वास्तव मे ऐसे अवसर पर व्यक्ति की मनोदशा का यह अत्यन्त सहा चित्र है। 'दोऊ कर सिर में दय मारे 'हाय हाय मुख वचन उचारे', 'अपने गरे छुरी मय दीन्हा', आदि मुहावरो के प्रयोग से चित्र मे प्रभावशीलता की वृद्धि हुई है। कवि नेवाज का एतद्स्थलीय चित्रण स्वाभाविक है और लोक जीवन के अधिक समीप है।

1–पद्मपुराण में भी इसी स्थल पर दुष्यन्त का विलाप तथा पाश्चाताप चित्रित है। मूर्छा हटने पर उसे एक एक गत घटनाय याद आती हैं और वह स्वय को अभागा और अपराधी स्वीकार करता है और कहता है कि मुझ जैसे पापी के लिये तो नरक से भी निष्कृति नही है— 'आमन्नप्रसवा भार्या त्यक्ता दवसुतापमा। अनुकूला न मे धाता नरका न च निष्कृति।' कवि कालिदास इस स्थल पर तो मौन रहे किन्तु छठे अक म विदूषक के समक्ष कुछ ऐसे ही उद्गार व्यक्त कराए हैं—

दोहा—दई अगूठी आनि[1] कै जा दिन ते कोतवाल।
रहत चोरो सो वक्त महा दुखित महिपाल[2] ॥१७१॥

---

१ आइ (B) २ ता दिन दे लाग्यो रहन, महा दुखित महिपाल (A)
२ दुखित महालाग्यो रहन ता दिन ते महिपाल (B)

प्रथम सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥६।६॥

अर्थात्

चेताया चेत्या नही मृगनैनी जब आप।
अब चेत्यो यह हत हियो सहन काज सताप ॥ना० ना० १३६॥

इतः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रकरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥६।६॥

अर्थात्

मैं न लई अबला लगी निज साथिन संग जान।
हटकि कही रहि रहि यही मुनिसुत पिता समान ॥
तब जु दीठि मोतन करी आंसुन भरी रसाल।
दहति निठुर मेरो हियो मनहु विष भरी भाल ॥ना० ना० १४१॥

इसी अंक में कवि कालिदास ने विदूषक और दुष्यन्त के सम्वाद के रूप में पिछली समस्त घटनाओं का संक्षिप्त विवरण भी कहलवाया है। यह विवरण कथन नाटकीय दृष्टि से अधिक संगत नही है। दर्शक इन समस्त घटनाओं को भली भांति जानता है—भले ही विदूषक न जानता हो अतः उन्हीं का विवरण देना दर्शक के लिए अरुचिकर प्रसंग हो सकता है। नेवाज ने इन समस्त घटनाओं का समाहार अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली और मार्मिक रीति से कर लिया है। 'हटकि कही रहि रहि यही' और 'दहति निठुर मेरो हियो मनहु विष भरी भाल' उक्तियों की अपेक्षा नेवाज की 'चले निदुर उत छाड़ि निगोडो' और 'कहा करो छाती नहि दरकति' में अधिक मर्मस्पर्शिता है, सामान्य-जन भावना का सामीप्य है।

कवित्त—नेह निबरात लागो देह को दिया मो[1] जागी
भूख भागी नींदो[2] न परति चैन[3] दिन है॥
मानत[4] न राग[5] बगरात[6] ना रहत सो[7]
सुनि के दसा[8] मो[9] गुन लागत अरिन है॥
आठहू[10] पहर[11] कहरा ही बितावत[12]
सकुन्तला की सुधि हिय मानत कठिन है॥
कहूँ दिन बीतत तो बीतति[13] न राति
कहूँ राति बीतत तो बीतत न दिन है (1) ॥१७२॥
चौपाई—राजा की यों दसा उनागी। सिगरे[14] दुखित नगर के लागी॥१७३॥

१ मों (B) २ नींदो (B) ३ चैन (AB) ४ मानतु (AB)
५ रागु (B) ६ बराग (A) बगरातु (B) ७ सोने (A)
८ दसा (AB) ९ मों (B) १० आठौ (AB)
११ पहरनि (A) पहरन(B) १२ बीतत (A) १३ बीतति (AB) १४ सगर (A)

1—यह माना जा सकता है कि नारी का विरह अधिक संतापित करता है अनंग नारी को उसे अबला जानकर अधिक प्रचण्ड आक्रमण करता है तथापि प्रेम की पूर्णता उस समय तक सम्भव नहीं जब तक प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही आतिशे हिज्र में न तपें। यहाँ यदि यह स्वीकार करें कि कालिदास गान्धर्व विवाह अथवा यौवन के क्षणिक आवेश में किए गए कृत्य के प्रायश्चित रूप दोनों ही जनों को विरहाग्नि की ज्वाला में शुद्ध करने की चेष्टा करते हैं तो इस अङ्क से दुष्यन्त की कठिन तपस्या प्रारम्भ होती है। पिछले अङ्कों में शकुन्तला की तड़पन और कसक हम जान चुके हैं। यों भी बिना दर्द के दवा नहीं मिलती, साधना के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होती। प्रेम के उदय से लेकर प्रिय से मिलन तक की यात्रा में प्रेमी को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है इन बाधाओं से प्रेम निखरता है। जब सिवा दर्द के और कुछ न रहे तभी प्रिय का मिलन सम्भव है। अब्दुल कादिर जिलानी ने अपनी एक गजल में कहा है—

बे हेजाबाना दर आ अज दरे काशानए मा।
के कसे नेस्त बजुज दर्द तो दर खानये मा॥

(मध्ययुगीन प्रेमाख्यान पृ० १५ से उद्धृत)

अर्थात् हमारे झोंपड़े के दर्वाजे से बेपर्दा दाखिल हो जाओ, क्योंकि मेरे घर में दर्द के सिवाय और कुछ नहीं है।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों में तो कतिपय स्थानों में पुरुष की विरहाक्रान्त अवस्था के चित्र उपलब्ध हो जाते हैं किन्तु सर्वत्र इस अवस्था का नारी विरह की तुलना में पूर्ण और सांगोपांग चित्रण नहीं है सम्भवतया इसका प्रधान कारण पुरुष का परुष होना है

साथ ही वह अन्यान्य सामाजिक कार्यों में भी सलग्न होकर विरह की प्रचण्डता का अनु भव नहीं करता। कालिदास ने राजा दुष्यन्त की विरहाक्रान्त रूपच्छवि का चित्रण कचुकी के माध्यम से किया है यथा—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथ
बिभ्रत काञ्चनमेकमेव वलय श्वासोपरक्ताधर ।
चिन्ताजागरणप्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मन
सस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥ (५।६)

अर्थात्

भूषन उतारे भाज मण्डन के दूर डारे,
कङ्कन ही एक हाथ बाए राखि लीनी है।
ताती तानी श्वासन बिनास्यो रूप होठन,
को नीको लाल रङ्ग मारि फीको पारि दीनो है॥
सोचत गमाई नीद जागन बिताई राति,
आँखिन मे आय के ललाई बास कीनो है।
तेज के प्रताप गात कृष्णहू लखात नीको
दीपत चढायो सान हीरा जिमी छीनो है ॥

(श० ना० १३८)

वस्तुत इस स्थल पर राजा दुष्यन्त विरह की व्याधि दशा के अन्तर्गत है। व्याधि का लक्षण शृङ्गार निर्णय में इस प्रकार दिया है—

ताप दुबरई स्वास अति, व्याधि दसा मे लेखि।
आहि आहि बकिबो करे, आहि आहि सब देखि ॥ पृ० १६० ॥

कालिदास के उक्त चित्रण म शुद्ध रूप मे न तो व्याधि ही का पूर्ण परिपालन है और न उद्वेग का। मध्ययुगीन हिन्दी प्रेमाख्यानकारो ने इस स्थिति का चित्राकन भली प्रकार किया है। नेवाज के प्रस्तुत चित्रण ही में देखिए, देह की क्षीणता न लेकर, मान सिक बकली तक का समावेश कर लिया गयाहै। मैं तो समझता हू 'भावत न राग वयराग सो रहत लीन्हे' कहकर तो उन्होने उद्वेग का भी यत्किञ्चित सयोग कर लिया है। उद्वेग का लक्षण 'शृङ्गार निर्णय' के अनुसार निम्न है—

जहाँ दुखद रूपी लगै सुखद जु वस्तु अनेग।
रहियो कहूँ न सुहात सो दुसह दसा उद्वेग ॥पृ० १५८॥

यद्यपि नेवाज के इस चित्रण पर आलम कृत 'माधवानल कामकन्दला' और सूरदास लखनवी के 'नल दमन' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है तथापि उनकी पद योजना और शब्द चयन श्लाघ्य है। कामकन्दला में लिखित—

जो दिन होत तो निसि रहै, जो निसि होत तो प्रात।
ना दिन राति न रैन सुख, विरह सतावत गात॥

की तुलना में नेवाज के प्रस्तुत कवित्त की अन्तिम पक्तियाँ कहीं अधिक मनोहारी हैं।

कवित्त—गायबो[1] बजाइबो सबन[2] बिसराइ डारयो
छोहरन[3] खेलन को खेलबो[4] भुलाइगो।
सब पुरवासी गहे[5] रहत उदासी सोऊ
हासी[6] को गवन न सुपन तें ह्विरायगो[7]॥
सबही के सुखन[8] को[9] दवैया महिपाल
सो सकुन्तला के सोक[10] समुद[11] में समायगो[12]।
नारी औ[13] पुरुष[14] मिलि सबही बिसारयो सुख
सिगरे[15] नगर में निगोड़ो दुख छायगो[16] (I) ॥१७७॥

—

१ गाइबो (AB) २ सबनि (AB) ३ छोहरनि (AB)
४ खेलिबो (AB) ५ गहे (A) ६ हाँसी (AB)
७ ह्विराइगो (AB) ८ सुख (AB) ९ के (A)
१० सोक के (A प्रति में 'सोक' से पूर्व 'के' नहीं है) के सोक के (B प्रति में 'सोक' से पूर्व और पर 'के' है) ११ समुद्र (AB) १२ समाइगो (AB)
१३ अरु (A) १४ पुरुष सौं (A) १५ सगरे (A) १६ छाइगो (AB)

1—पद्मपुराण में यह प्रसङ्ग नहीं है। वहाँ दुष्यन्त शकुन्तला के वियोग में अकेला ही दुखी है और विलाप करता है। अभिज्ञान शाकुन्तलकार ने भी दुष्यन्त के इस महादुःख में और किसी को भागी नहीं बनाया है। उत्सव की समाप्ति और राग रंग की उपेक्षा जो भी कुछ राज्य में यत्र तत्र परिलक्षित है वह उसकी आज्ञा से है जनता में स्वतः स्फुरित नहीं है। यहाँ तक कि राजवर्ग से सम्बन्ध परभृतिका और मधूलिका नामक दासियाँ तो वसन्तोत्सव के प्रमुख देव कामदेव का पूजन भी कर लेती हैं क्योंकि उन्हें यह मालूम नहीं था कि राजा ने वसन्तोत्सव रोक दिया है। कंचुकी के टोकने और नाराज होने पर वे कहती हैं— "पसीददु पसीददु अज्जो अगहिदत्था अह्मे।" अर्थ यह है कि कालिदास का दुष्यन्त विरहतापजन्य दुख का भोक्ता अकेला है किन्तु नेवाज के दुष्यन्त के दुख से समस्त प्रजा दुखी है—वह मानो अत्यन्त लोकप्रिय है और उसका सुख दुख प्रजा का सुख-दुख है। नासमझ और अबोध बालक तक क्रीडा और विनोद भूल गए हैं समस्त नगर में मात्र दुख ही दुख छाया हुआ है।

राजा और प्रजा के सम्बन्धों का एक नवीन आदर्श इस स्थल पर कवि नेवाज ने प्रस्तुत किया है। राजा यदि 'सबही के सुखन को दवैया' बन सके तो प्रजा भी राजा के शोक समुद्र में डूबने पर समस्त सुखों को विसार देता है। वास्तव में नेवाज के काव्य में

विरही दुष्यत महाराज जू के राज
रितुराज को[1] अमल[2] न कहू[3] ।नहारियतु है।
कहत नेवाज कहू[4] पावनि[5] न कुहकनि[6]
कोकलन[7] बाग तें[8] उड़ाय मरियतु[9] है ॥
विकत बजार मे न केसरि गुलाब
औ रसाल के[10] रंगीले वसननि फारियतु है।
फलन न पावत द्रुमनि[11] के बनाय फल
काची कली गहि गहि[12] तोरि डारियतु है (1) ॥१७५॥

---

१ के (A)	२ अमलु (A)	३ कहूँ (A)
४ कहूँ (AB)	५ पावती (B)	६ कुहुकन (AB)
७ कोयलनि (AB)	८ बागनि (AB)	९ मारियतु (AB)
१० रंगसाला के (AB)	११ मे (AB)	१२ तोरि (AB)

लोक मंगल, लोक हित, लोक तत्त्व और लोक प्रियता को विशेष स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि उनके पात्र लोक जीवन के अभिन्न अङ्ग हैं।

1–कवि कालिदास का दुष्यन्त अत्यन्त प्रतापवान और प्रभविष्णुता सम्पन्न है उसकी आज्ञा न केवल मानव वरन् देव भी शिरोधार्य करते हैं। प्रकृति भी उसकी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने का साहस नहीं करती। निम्न उद्धरण मेरे कथन का समर्थन है—

कंचुकी—हं, न खलु श्रुतं भवतीभ्यां यद्वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिश्च। तथाहि—

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत् कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ॥६।३॥

मिश्रकेशी—णत्थि एत्थ संदेहो, महाप्पहावो क्खु राएसी।
राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका अनुवाद शकुन्तला नाटक में इस प्रकार किया है—

कंचुकी—तुमने नहीं जाना वसन्त के वृक्षों ने और उनमें बसने वाले पखेरुओं ने भी तो महाराज की आज्ञा मानी है देखो इसी में—

सवैय्या

यह आज घने निन त हैं लगी परि देति पराग न आम कली।
कलियाय धुरेवो रह्यो विरला परि लेत नहा छवि फूलि भली ॥
इवि कठहि कोकिल कूर रही ऋतु यद्यपि शीत गई है चली।
मति खेंचि निपग तें बान वहू उर मानि धरयो फिर काम बली ॥११६॥

सानु०—इसमें सन्देह नही यह राजर्षि ऐसा ही प्रतापी है।

महाकवि कालिदास प्रकृति के कवि हैं उनके लिए प्रकृति मानव अन्तःकरण से बाहर की कोई वस्तु नहा है। प्रकृति के समस्त व्यापार मानवीय भावनाओं और मनगत अवस्थाओं ही के अनुरूप घटित होते हैं। दवधर न अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका में इस तथ्य का अनुमोदन किया है। उनकी दृष्टि में तो यह कालिदास के प्रकृति-काव्य का एक उल्लेखनीय गुण है—"Nature is not Something out side of man with a life-spirit and purpose of its own, but it is a back ground for reflecting human emotion This which is felici onsly described as "atmospheric Subjectivity' is one feature of Kalidasa's nature poetry (PP XV) प्रकृति को इस प्रकार दुखित और क्लान्त श्रान्त सा चित्रित करना अपने नायक के दुख में, महाकवि का निःसन्देह अपूर्व कौशल है तथापि वास्तविकता यह है कि प्रकृति के सभी व्यापार ज्यों के त्यों होते रहते हैं, चलते रहते हैं किन्तु दुखी जन उसमे दुख का और सुखी सुख का आरोप करते हैं। पूर्णिमा की धवल ज्योत्मना यदि विरही के लिये अग्नि के समान तापदायक लगेगी तो सयोगी को उसी में अमृतवर्षण का आनन्द प्राप्त होगा।

नेवाज ने इसी वास्तविकता का विचार कर, साथ ही नगर वासियों की सम्भावना की क्रियान्विति के लिये प्रकृति व्यापारों को रुकता हुआ तो चित्रित नही किया है, कोयल तो कुहकने आती है, रसाल तो रगीला वस्त्र धारण करता है, कली तो फूल बनना चाहती है लेकिन विरही महाराज दुष्यन्त के दुख से दुखी प्रजाजन ये सब सहन नहीं कर सकते अत कोयल को मारकर उठा देते हैं, रसाल के वस्त्र अर्थात् मञ्जरियों को फाड डालते हैं और कच्ची कलियों ही को तोडकर फेंक देते हैं। प्रजावर्ग के इस ध्वसात्मक कार्य में भी राजहित की भावना निहित है वे जानते हैं कि विप्रलंभातगत उद्वेगावस्था मे सभी सुखद वस्तुएँ दुखद लगती हैं। 'रघुनाथ' कवि तो प्रिया के जीवन का उपचार केवल यही समझते हैं—

चौपाई–नित पियरात जात जो रोगी। मन मारे नृप रहत वियोगी ॥
वारहि बार गरो भरि आवत। लोचन असुवन की झरि लावत[1] ॥
राज काज ते चित्त सकेलो[2]। बैठो रहत यकात[3] अकेलो[4] ॥
सून[5] सा[6] सिगरो[7] जग[8] लेपन। धरि धरि ध्यान भावती देपत[9] ॥१७६॥

दोहा—निहचल करि चितु[10] लाइ नृप[11] मूदि लिये[12] जुग नैन।
देपि ध्यान मे भावनी[13] कहन लग्यो नृप बैन (1) ॥१७७॥

---

१ राज काज ते चित नहि लावत (B) २ सब बात तें चित्त सकेले (B)
३ इकत (A) यकत (B) ४ अकेले (B) ५ सूनो (AB)
६ से (A) ७ सिगरे (A) ८ घर (B)
९ ध्यान धरे सुभाव तिहि देपत (A) ध्यान धरे सुभावतिहि देपत (B)
१० तनु (AB) ११ मनु (AB) १२ लये (B)
१३ भाव तिहि (A)

दकहि बीर! सिकारिन का, इहि बाग न कोकिल आवन पावै।
मूं िझरोकनि मदिर के, मलयानिल आइ न छावन पावै ॥
भाए बिना 'रघुनाथ', बसत को, ऐबो न कोऊ सुनावन पावै।
प्यारी को चाहो जिवाओ, धमार तो गाव को कोऊ न गावन पावै ॥

इस प्रकार नेवाज कवि के दुष्यन्त की प्रजा अपने राजा के दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक समझती है कि जब तक वे विरह ज्वर ग्रसित हैं तब तक वसन्त राज्य में पदार्पण न कर सके। यों भी सत्प्रजा किसी दूसरे राजा को सरलता से स्वीकार नहीं करती हर सम्भव प्रतिरोध करती है।

1–आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे दश कामदशाए बताई है—

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशा ॥३।१९०॥

अर्थात अभिलाष, चिन्ता स्मृति, गुणकथन उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि जडता और मृति ये दश कामदशाएँ होती हैं इनमें से व्याधि तो पहले ही दुष्यन्त आक्रान्त कर चुकी ... प्रलाप और उन्माद ने मिलकर उस पर जोरदार

चौपाई–मन ते दूरि करो[1] निठुराई। परगट ह्वै अब देहु देपाई ॥
कहा कहों[2] तव सुधि नहि आई। जैसी करी सु अब हम[3] पाई ॥
विरह विथा सो अब मति मारो। छमहु यक[4] अपराध हमारो ॥
ज्यो अब त्यो हमसो[5] ह्वै आई। तुम अपनी मति तजौ वडाई ॥
छोड़हु कोप[6] दया मन ल्यावहु। जित हो तित तै अब[7] वढि आवहु ॥
यतनी कहत मूरछा[8] आई। फैलि गई मुप मे पियराई ॥
तन मे निकसि पसीना आयो। डालत तव कछु हाथ न आयो[9] (1) ॥
दौरि चतुरका[10] दासो आई। मुख मे आनि समीर[11] डोलाई ॥
दपि चतुरिका रोवन लागी। तव कछु नृपहि[12] मूरछा जागी ॥१७८॥

दोहा—जागि उठी मन मूरछा दीने दृग तव पालि।
देपि चतुरकहि स्वास लै उठ्यो नृपति या वोलि[13] ॥१७९॥

---

१ करहु (A) करो (B) २ करौं (AB) ३ तसो (AB) ४ एक (A)
५ ज्यों हमतें ऐसो (A) ज्यो हम हे हम सों (B) ६ कोपु (B)
७ B प्रति मे 'तित और 'हो के बीच मे है A प्रति मे नहीं है
८ एतनो कहतहि मुरछा (A) येतनो कहत मूरछा (B)
९ डोलत अब कछु हाथ न पायो (A) डोलत नहि कछु हाथ न पायो (B)
१० चतुरिका (AB) ११ बयारि (AB) १२ नृपति (A)
१३
देखि चतुरकहि सास ल उठ्यो नृपति यों बोलि।
जागि उठो मन मूरछा, दीनों दृग तब पोलि ॥ (A)
देपि देपि क सांस ल उठ्यो नृपति यो बोलि।
जागि उठी मन मूरछा दीने दृग तब पोलि ॥ (B)

कर लिया है। अहर्निशि शकुन्तला ही के ध्यान में डूबा रहता है। इस निरन्तर चिन्तन, स्मरण और स्मृति का परिणाम यह है कि उसके समक्ष शकुन्तला का मानसी रूप उपस्थित हो जाता है और वह पागल की भांति प्रलाप करने लगता है। प्रलाप की स्थिति मे स्मृति नाश, मति भ्रम और असंबद्ध वाक् होता है किसी भी जन के सामने न रहने पर भी विरही मानसी प्रिया स वार्तालाप करता है। यही स्थिति धीरे धीरे विकसित होकर उन्माद में परिणत हो जाता है।

१—कामदशान्तर्गत यह व्याधि की स्पष्ट स्थिति है। मुख पर पीलापन छा जाना, कम्प, पसीना आना सांस तेज चलने लगना और बेहोश सा होने लगना साहित्यदर्पणकार के अनुसार व्याधि का लक्षण है—

व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपाण्डुताकृशतादयः॥

[चौ]पाई–तै विन काजहि को इत आई। महा मूरछा आनि जगाई॥
घरिक[1] मूरछा मे कल पाई। फिरि मो का[2] तै सुरति देवाई (1)॥
दुप की पानि नृपति यो पोली। चतुर चतुरिका दासी बोली॥१८०॥
दोहा—महाराज मग बीच मय[3] देपि दुपन की पानि।
सकु तला कैं हरि लई यह कछु परति न जानि[4]॥१८१॥

---

[1] घरिकु (B)   २ कौं (A)   ३ मे (AB)
[4] सकु तला के हरि लई, यह न परति कछु जानि (A)
सकु तला किन करि लई यह कछु परति न जानि (B)

---

[1]–मूर्छा रा यह प्रमग पद्मपुराण अथवा अभिनान शाकुन्तन म नही है। पद्मपुराण में दुष्यन्त गकु तला का प्रन्त अभिनान के दखते ही मूर्छित हो जाता है। मूर्छा हटने पर वह विलाप करता है, पूर्व घटनाओ का स्मरण करके स्वय को अपने भाग्य को धिक्का रता है। इसी अनतरान म राज्य क एव वणिक की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के अभियोग को भी निपटाता है। इस व्याघात के कारण करुण रस निष्पत्ति सफल कही जाने योग्य नहा हो सकी है। अभिनान शाकुतल मे दुष्यन्त मूर्छित नही होता हाँ शकुन्तला का चित्र देखकर उस मतिभ्रम अवश्य हा जाता है। वह चित्रांकित भ्रमर को जो कि शकुतला के चारा ओर मडरा रहा है कमल-सम्पुट क कारागार में ब द करन की धमकी दता है। आश्चय है कि वह भ्रमर को सजीव मानकर उससे तो बात करता है किन्तु चित्रांकित प्रियतमा शकुन्तला का सजीव नही मानता और यदि मानता भी हो तो उससे वार्तालाप करने या मान छोडने का कोई प्रार्थना नही करता। मेरी राय म कवि कालिदास का इस प्रसग क नियोजन मे प्रधान उद्देश्य दुष्यन्त की चित्रकला विषयक निपुणता तथा अपने एतद् सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करना रहा है। दुष्यन्त की अविकल चित्रांकन पद्धति की प्रशसा ता अन्तत मिश्रकेशी अथवा भानुमती भी करती है उसका यह कथन है कि—'अहमपि इदानीमवगार्था' अर्थात् मैं भी अब समझ सकी कि यह चित्र है। दुष्यन्त की चित्रकला निपुणता ही की दाद देता है। जहा तक कालिदास के चित्रकला सम्बन्धी विचारा का प्रश्न है 'अभिज्ञान शाकुतल' मे एतद् विषयक निम्न कथन इसके प्रमाण हैं।

यद यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियत तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्य लखया किञ्चिदन्वितम्॥६।१५॥

तथाहि—

अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयमिद, निम्नेव नाभि स्थिता,
दृश्यन्त विषमोन्नताश्च वलयो भित्तौ समायामपि।

चौपाई—राजा फिरि यह बात जनाई[1]। हुती[2] मेनका की वह[3] जाई ॥१८२॥
दोहा—सहि न सुता को[4] दुप सकी[5] उतरि गगन ते आय[6] ।
माय[7] मेनका लै गई भुवते[8] वाहि उठाय[9] ॥१८३॥

---

१ राजा तब यह बात सुनाई (A) राज यह तब बात सुनाई (B)
२ हुती (AB) ३ तिहु (B) ४ की (B)
५ सखी (B) ६ आइ (AB) ७ माइ (AB)
८ भवतें (A) ९ उठाय (AB)

अङ्गे च प्रतिभाति मार्दवमिदं स्निग्धप्रभावाच्चिर
प्रेम्णा मन्मुखमीषदीक्षत इव, स्मेरा च वक्तीव माम् ॥६।१६॥

अर्थात् अविकल चित्र निर्माण करते समय जिसका चित्र बनाया जाता है उसके जिस किसी अंग में सुन्दरता नहीं भी रहती है उसमें भी सुन्दरता लाई जाती है फिर भी इस चित्र के द्वारा शकुन्तला का सौन्दर्य बढ़ा नहीं प्रत्युत कुछ घटा ही है। जैसे कि, यद्यपि चित्रपट समतल है, फिर भी शकुन्तला के दोनों स्तन कुछ ऊँचे हैं और नाभि गहरी मालूम पड़ता है। स्निग्धता के कारण अंगों में कोमलता भी दिखाई पड़ती है और ऐसा मालूम पड़ता है कि अनुराग पूर्वक वह थोड़ा थोड़ा मुझे देखती है और मुस्करा कर कुछ कह रही है। श्री एम० आर० काले ने भी चित्र विषयक इस प्रसंग से कुछ इसी प्रकार का निष्कर्ष निकाला है—"The relief or the appearance of the high and low parts of the picture was managed with such masterly skill that it could not be escape even the perception of the vidushaka This shows to what perfection the art of painting was carried by the Hindus even in those remote times." ऐसा लगता है कि कालिदास के काल में प्रकृति का यथा-तथ्य चित्रण, वस्तु की अविकल प्रतिलिपि करना ही चित्रकला की सिद्धि समझी जाती थी। वर्तमान कला की भांति वह नवीनतम अनुभूतियों की नाथ और खोज का साधन नहीं था। कालिदास परम्पराओं और रूढ़ियों के विरुद्ध क्रांति करने वाले क्रान्त कवि न थे वे परम्पराओं का पालन करना अच्छा समझते थे यही कारण है कि चित्रकला के लिये भी उन्होंने परम्परागत सिद्धान्तों को ही मान्य ठहराया है।

यह चित्र प्रसंग बड़ी कुशलता पूर्वक मुख्य कथानक में मिला दिया गया है। राजा दुष्यन्त की मनगत अवस्था की अभिव्यक्ति का बड़ा सुन्दर अवकाश निकल आया है। राजा जब चित्रांकित भ्रमर को सजीव मानकर उसे डाँटने लगता है और भ्रमर के आज्ञा न मानने पर, क्रोधित हो जाता है तो विदूषक यह कहकर कि 'यह तो चित्र है' राजा की स्वस्थ मति करता है। राजा दुःखी होकर पुनः कहता है—

चौपाई-राजा[1] कही साव[2] यह वानी। चतुर चतुरिका फिरि बतरानी ॥१८४॥

दाहा—सकु तलहि[3] जो लय[4] गई पकरि मेनका आपु।

महाराज तौ[5] हरवरै व्है है फेरि[6] मिलापु ॥१८५॥

---

१ राव (B)　　२ जब (AB)　　३ सकु तला (B)　　४ ल (AB)

५ जनि (AB)　　६ बहुरि (A)

राजा—किमिदमनुष्ठित पौरोभाग्यम्।

दर्शनसुखमनुभवत साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।

स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥६ २३॥

राजा लक्ष्मणसिंह ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

दुष्यन्त—अरे मित्र तैंने बुरा किया—

दाहा

मैं दरशन सुख लेत हा इकटक चित्त लगाय।

साक्षात ठाडी मनो सन्मुख मेरे आय ॥

तौ लौं तैं मोको वृथा सुरति दिवाई मित्र।

अब प्यारी फिर रहि गई लिखी चित्र की चित्र ॥

विरहाक्रान्त नायक को उन्माद की अवस्था मे ले जाकर इस प्रकार की भ्रान्ति उपस्थित कर कालिदास प्राय ही नायक का मनोव्यथा को अभिव्यक्त कराते हैं। 'विक्रमोर्वशीयम्' म पुरुरवा हरी घास पर फैली हुइ बीरबहूटियो को, उर्वशी की सुग्गे के पट जैसे हरे रग वाली चोली समझ लेता है जिस पर उसके आसुओ से धुलकर ओठो से गिरे हुए लाल रंग की बूंदकियाँ दिखाई दे रही हो। इसी प्रकार एक स्थान पर वह नदी को ही भ्रान्तिवश उर्वशी मान लेता है। 'उन्माद', 'जडता' अथवा 'विभ्रम की अवस्था में इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न हो जाना सम्भव है। फ्रायड के अनुसार Eros अर्थात् प्रेम, प्रजनन या काम और Arakne अर्थात् विनाश, ध्वस या मृत्यु ये दो ऐसी मूल प्रवृत्तिया हैं जिनके प्रभाव से भौतिक जगत के वास्तविक पदार्थ भी हृदय की आच मे पिघलकर नवीन कल्प धारण कर लेते हैं। किन्तु यह स्थिति साधना के क्षेत्र में तपता, अद्वैत अथवा 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की टक्कर की है। काम' भाव का इतना अधिक उत्कर्ष होने पर

हो प्रेमी अपनी प्रमिका का स्वप्न देखता है। सामान्य जन इस स्थिति का अनुभव नहीं करते अत कवि नेवाज ने 'मूर्छा' मे 'भावता' के दर्शन की परि-कल्पना कर सामान्य हृदय को प्रम के इस उत्कर्ष की अनुभूति कराने की चेष्टा की है। जिस व्यक्ति का ध्यान हमे निरन्तर बना रहता है हम स्वप्न अथवा अचेतनावस्था म भी उसी का दर्शन करते है यह तथ्य स्वप्नतन्त्र द्वारा सिद्ध है। 'प्रलाप और उन्माद' की अवस्था क बाद 'मूर्छा' की स्थिति भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

इसी स्थल पर थोडा आगे चलकर कालिदास अपनी प्रिय अभिव्यञ्जना की अभिव्यक्ति दुष्यन्त द्वारा कराते हैं। वह प्रिया के दर्शन के लिये बहुत अधिक व्यग्र है। चित्र के माध्यम म उसक सान्निध्य का लाभ ले रहा था किन्तु विदूषक ने चित्र कहकर उसकी इसका तन्मयावस्था को भी मिटा दिया। नींद आती नहीं जो कि स्वप्न म उसके दर्शन हो जावें और चित्रगत शकुन्तला के दर्शन के लिये भी यह आँसू व्यवधान बन जाते है—

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥६ २४॥

श्री इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

रात्रि जागरण न किया, स्वप्न समागम दूर।
नहीं चित्र दर्शन सुलभ, लोचन जल भरपूर॥

आँसू क कारण चित्रगत प्रिया क दर्शन न कर सकने की कल्पना कालिदास को सम्भवतया अत्यन्त प्रिय है। 'मेघदूत' मे भी व इसका प्रयोग करते हैं—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥ उ० मे० ४२॥

अर्थात् हे प्रिये! प्रणय कुपिता तुम्हारी प्रतिकृति गेरू आदि से पत्थर पर रचकर तथा उसी प्रतिकृति म अपनी प्रतिकृति को तुम्हारे चरणो पर ज्यो ही रखना चाहता हू त्यो ही मेरी दृष्टिपथ आँसुओ से अवरुद्ध हो जाता है। हा! हन्त!! क्रूर यमराज उस चित्र मे भी हम दोनो का मिलाप होना पसन्द नहीं करता।

कवि नेवाज ने इस स्थिति का चित्रण नहीं किया है। उन्होने चित्र क प्रसंग को ही सर्वथा छोड़ दिया है। हो सकता है कि नेवाज क समय तक वियोग का दारुण अवधि काटने क लिए प्रयोजन क लिये निर्दिष्ट 'विनोदो' म 'चित्र रचना' का विशेष महत्त्व न रहा हो। मल्लिनाथ ने चार विनोद विशिष्ट बताए हैं—

चौपाई–तव लौ अपनो गनति न कछु सुप । माय[1] सुता[2] को देपत[3] जव दुप ॥
तुम्है सुरति आई सुनि पैहै । फेरि मयनका[4] वाहि मिलैहै ॥
राजा[5] फिरि मुप वचन निकारे[6] । ग्रैसे[7] है नहि भाग हमारे (1)॥१८६॥

---

१ माइ (AB)   २ सुता (A)   ३ देपति (B)   ४ मनका (AB)
५ राज (B)   ६ निकार (B)   ७ ऐसे (AB)

वियोगावस्थासु प्रियजनसदृक्षानुभवन ततश्चित्र कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि ।
तदङ्गस्पृष्टानामुपनतवता स्पर्शनमपि प्रतीकारोऽनङ्गव्यथितमनसा कोऽपि गदित ॥

प्रिय सदृश वस्तु का दर्शन, प्रिय के चित्र की रचना स्वप्न मे प्रिय दर्शन तथा प्रिय द्वारा स्पृष्ट पदार्थों का स्पर्श कर सुखानुभव करना । नेवाज ने केवल 'मूर्छा' मे 'कल' पाने की चर्चा की है । महा मूर्छा मे, अत्यन्त विकल महीपाल का तनिक चैन मिलता है— अवचेतन मे 'शकुतला' मिलाप म अथवा सुख दुख की स्थिति से ऊपर उठ जाने के कारण, यह स्पष्ट नही है ।

1–महाभारत और पद्मपुराण मे यह प्रसग नही है । अभिज्ञान शाकुन्तल मे विदूषक और दुष्यन्त के वार्तालाप के मध्य यह प्रसग वर्णित है । दुष्यन्त के यह बताने पर कि शकुतला को उसकी माँ मेनका उठाकर ले गई है विदूषक राजा को आश्वस्त करता हुआ कहता है—

"ण क्खु मादापिदरा भत्तिविओअदुक्खिद दुहिदर चिरं पेक्खिदु पारेन्ति ।" अर्थात माता पिता पति वियाग से दु खिनी कन्या का ज्यादा दिना तक नही देख सकते । नेवाज के सकुन्तला नाटक में विदूषक नामक कोई पात्र है ही नही अत चतुरिका नामक दासी को ही यह काय सम्पादन करना पडा है । चतुरिका अभिज्ञान शाकुन्तल मे एक सामान्या दासी है जो केवल चित्रपट तूलिका आदि लाती है । नेवाज ने इस सामान्या को भी विशिष्ट बना दिया है क्योकि नेवाज का दुष्यन्त भी सामान्य विशेष है वह राजत्व के काय और वैभव से वर्मित नही कि सामान्य जन उस तक पहुँच ही न सकें । चतुरिका के कथन म पिता' शब्द नही है केवल 'माय' है–क्योकि यहाँ पिता की कठोरता ता सिद्ध है । ऋषि विश्वामित्र ने कब शकुन्तला के सुख दु ख का विचार किया ? मेनका माय ही उस अभागिन को उठाकर ले गई और सम्भवतया वही उसे पुन पति सयुक्त करने का प्रयास करेगी । या भी माँ की ममता पिता के स्नेह की तुलना में अधिक गुरु है । चतुरिका का कथन विदूषक के कथन की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और मार्मिक है ।

दोहा—हम भूमे[1] इन रहत यह रही जाय[2] सुरलोक ।
वयो मिलाप अब ह्वै सकत मिटत हमारो सोक[3] ॥१८७॥

1 भुव मण्डल (A)   २ जाइ (AB)   ३ क्यों मिलाप ह्वै सकत क्यों मिटत हमारो सोक (AB)

अभिज्ञान शाकुन्तल का दुष्यन्त विदूषक के उक्त आश्वासन के उत्तर म यद्यपि स्वमनगत नराश्य की ही व्यंजना करता है तथापि वह अत्यन्त साहित्यिक और क्लिष्ट उपमाओं से संयुक्त होने के कारण अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं करती । नेवाज ने बड़े सादे ढंग से दुष्यन्त की निराशा को अभिव्यक्त किया है, दर असल प्रसादत्व तो निवाज के ही हिस्से मे आया है असे हैं नहि भाग हमारे' मे जथा और निराशा की जो उत्तम अभिव्यक्ति है वह कालिदास के इस लम्बे चौड़े श्लोक म कहाँ ? इसके आगे भी 'जमीन और 'आसमान' के अन्तर को सामने रखकर मिलाप की असभाव्यता का अच्छा तर्क उपस्थित किया है । कालिदास का एतद् सम्बन्धी श्लोक इस प्रकार है—

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लप्त नु तावत फलमेव पुण्यै ।
असन्निवृत्यै तदतीतमेव मनोरथानामतटप्रपात ॥६१०॥

इन्दुशेखर के अनुसार इसका अनुवाद इस प्रकार है—

स्वप्न या माया या मति दोष,
पुण्य या या कोई फल हीन ।
न जिसक मिलने की अब आश–
मनोरथ रज मे हुए विलीन ॥

वस्तुस्थिति यह है कि प्रेमी के हृदय मे ऐसी स्थिति मे निराशा का भाव अपने उच्चतम रूप म रहता है । जिसका कोई पता नहीं, जिसका तिरस्कार कर निकाल दिया, गया, भला उसके मिलने का कोई क्या आशा कर सकता है । उर्दू के एक शायर तो अपने प्रेमी के मिलने की आशा के प्रति इतने अधिक निराश हो चुक थे कि जब उनके प्रेमी के एक मित्र ने आकर उनसे यह कहा कि वह अर्थात आपका प्रेमी, आज से पाँचवे दिन आपसे मिलेगा तो वे बड़े मायूस होकर फरमाने लगे—

वो मिलने का वादा कर रहे हैं पाँचवे दिन का,
किसी स सुन लिया होगा कि दुनिया चार दिन की है ॥

चौपाई—यो[1] कहि[2] नृप मनकरी[3] उदासी । बोली फेरि चतुरिका दासी ॥
महाराज मय[4] कहत न झूठी । यह कैसे मिलि गई अगूठी[5] ॥
कहा[6] गिरी जल मय[7] को[8] पाई । महाराज के कर फिर[9] आई ॥
चतुर चतुरिका[10]या[11]समझायो[12] । भेद अगूठी[13] को सुनि पायो ॥
महाराज अति दुप सो पाग्यो[14] । कहन अगूठी[15]सो यो लाग्यो ॥
जो पै[16] बडो अभागी मे री । तै हू[17] बडो अभागिनि[18] है री ॥
तोहि हती[19] पहिरे ही[20] प्यारी । तासो छूटि भई तै न्यारी[21] ॥
अब पीछे ते हू पछिते है । वैसी कहा आगुरी वे है[22] (1) ॥१८८॥

---

१ यों (B) २ कहि क (A) ३ गहो (AB) ४ में (A) म (B) ५ अगूठी (AB)
६ कहां (AB) ७ मे (B) ८ केहि (A) किन (B) ९ फिरि (AB) १० चतुरिक (B)
११ फिरि (B) १२ समुभायो (B) १३ अगूठी (AB) १४ राजा
विरह बिया सों पाग्यो (A) १५ अगूठी (AB) १६ जग में (A) जग म (B)
१७ हू (AB) १८ अभागिन (A) अभागी B) १९ हुती (AB) २० वह (B)
२१ वाको छोडि भई त न्यारी (AB) २२ वसी ठौर कहां तू प है (AB)।

1–महाभारतीय शाकुन्तलापाख्यान मे यह प्रसग नहीं है । पद्मपुराण में जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि दुष्यन्त अभिज्ञान देखते ही मूर्छित हो जाता है और लब्ध-सज्ञ होने पर विलाप करता है । पद्मपुराणीय विलाप मे अगूठी क सम्बन्ध मे ऐसी परिकल्पना नहीं है । यह सवदा मनोवैज्ञानिक और सुन्दर कल्पना महाकवि कालिदास ही की है । आखिर क्यो न हो, उपमाओं के ना वे सम्राट हैं । अगूठी यद्यपि निर्जीव है तथापि उसमें चेतन की परिकल्पना कर, उसे क्षीण-पुण्य मानकर शकुन्तला की कमनीय अगुलिया से पृथक होने के कष्ट में पीडित कहा गया है । इधर दुष्यन्त भी उस मन्याजमनोहरा कान्ता शकुतला से वियुक्त होकर ही पीडित है दोनो ही अगूठी भी और दुष्यन्त भी एक ही मर्ज के मरीज हैं अत परस्वादिक मैत्री के काँमेज उपाय हैं । दुख यो भी सघटनात्मक भाव हैं दोनो ही दुखी हैं अत मिल बैठकर दुख की इस लम्बी अवधि को काट लेंगे । ऐसा कुछ कालिदास ने साचा है । अचेतन म चतन का आरोप सुन्दर है । कालिदासोक्त श्लोक इस प्रकार है

तव सुचरितमङ्गुरीय । नून प्रतनु कृनेन विभाव्यते फलेन ।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपद यदङ्गुलीषु ॥६। ११॥

राजा लक्ष्मणसिंह और इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद क्रमश इस प्रकार किया है —

दोहा—हे मुन्दरी तेरो मुकृत मेरो ही सो हीन ।
फल सा जायो जात है मैं निरख करि लीन ॥
अधिक मनोहर अरुण नख उन अँगुरिन को पाय ।
गिरी फेर तू आय जब पुण्य गयो निबटाय ॥ श० ना० १४३ ॥
सुचरित तेरा मुद्रिके । है मुझसा ही क्षीण ।
पाके सुन्दर अँगुलियाँ, गिरी कहीं तू दीन ॥१२॥

दोहा—माय[1] बाप को छोडि कै और छुवे जो याहि।
　　काटे कारो नाग व्है यह गांडा[2] तब ताहि ॥१६३॥
　　तब कछु दिन मे[3] मेनका कह्यो इद्र सो[4] जाय[5]।
　　तुम राजा दुष्यत को भेजहु[6] इहा[7] बुलाय[8] ॥१६४॥(1)
　　　❀　❀　❀

---

१ माइ (AB)　　२ गडा (AB)　　३ म (AB)　　४ प (B)
५ जाइ (AB)　　६ भेजो (AB)　　७ यहां (A)　　८ बोलाइ (AB)

❀ A और B प्रति मे इस स्थल पर यह दोहा और है —

　　इहां बोलाइ दुराइ क, राजहि सुरनि देवाइ।
　　सकुतलहि गहि बाँह तब दीज फेरि मिलाइ ॥

1-अभिज्ञान शाकुतलम् मे मेनका द्वारा दुष्यन्त को बुलाये जाने के लिए इन्द्र मे प्रार्थना करने का प्रसग नही है। शाकुतलम् के छटे अङ्क के अत मे मातलि के निम्न कथन से केवल इतना हो विदित होता है कि दानवो को नष्ट करने के लिए इन्द्र ने उन्हे बुलाया है।—

　　मातलि—अस्ति कालनेमिप्रभृतिदुर्जयो नाम दानवगण ।
　　राजा—अस्ति, श्रुतपूर्वो मया नारदात् ।
　　मातलि—सख्युस्त स किल शतक्रतोरवध्य,
　　　　तस्य त्व रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।
　　　　उच्छेत्तु प्रभवति यन्न सप्तसप्ति,
　　　　तन्नैश तिमिरमपाकरोति चन्द्र ॥६।३५॥

　स भवानात्तशस्त्र एवदानी त्वरथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्।

इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

　मातलि— कालनेमि के वशज दानवगण दुर्जेय हो रहे हैं।
　राजा—— हां, नारदमुनि ने इस सम्बन्ध मे मुझे यह बताया था।
　मातलि— वासव वध न करेंगे उनका
　　　　होगा मरण तुम्हारे हाथ।
　　　　निशा-तिमिर क्व सूर्य भगाते,
　　　　करते छिन्न यामिनी नाथ।

अब आज यह धनुषबाण लेकर इन्द्र के रथ पर चढ़ कर विजय के लिए चल दीजिए।

नृपहि बुलावन हेत तव करि वहुतै सनमान ।
भेज्यो[1] मातल[2] सारथी लीन्हे[3] सहित विमान[4] ॥१६५॥

चौपाई–राजा विरह विथा सो[5] छायो । इन्द्र सारथी मातलि आयो ॥
ललित विमान[6] इन्द्र को ल्यायो । ड्योढी पर तव[7] मातलि आयो ॥१६६॥

दोहा—चोपदार नृप सो कह्यो महाराज मघवान ।
भेज्यो मातलि सारथी ल्यायो ललित विमान[8] ॥१६७॥

---

१ भेजहु (A) २ मातलि (AB) ३ सुरपति (AB) ४ बेवान (AB) ५ ते (AB)
६ बेवान (AB) ७ चलि (AB) ८ बेवान (AB)

इस प्रसग से यह स्पष्ट है कि इन्द्र ने दुष्यन्त को मेनका के कहने से शकुन्तला से उसका मिलन कराने हेतु, नही बुलाया बल्कि वस्तुत कालनेमि के वशज दानवो से युद्ध करने ही के लिए उसे आमन्त्रित किया गया है। सप्तम अङ्क के मातलि और दुष्यन्त के सम्वाद से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। शत्रुओ को पराजित करने और युद्ध मे अत्यधिक कौशल दिखाने के कारण इन्द्र ने राजा दुष्यन्त को मन्दार माला, जिसकी इच्छा जयन्त भी कर रहे थे, प्रदान की। तात्पर्य यह कि अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन सर्वथा आकस्मिक है उसके लिए किसी भी ओर से कोई प्रयास नही किया गया है।

कवि नवाज ने इसी तरग मे चतुरिका नामक दासी से राजा दुष्यन्त को सान्त्वना दिलाते हुए कहलवाया है—

तव लौ अपनो गनति न कछु सुप । माय सुता को देखत जब दुप ॥
तुम्है सुरति आई मुनि पै हैं । फेरि मयनका वाहि मिलै है ॥

इसी प्रकार कालिदास ने भी छटे अङ्क के अन्त में विदूषक द्वारा राजा दुष्यन्त को सान्त्वना दिलवाते हुए कहलवाया है—

"ण क्खु मादापिदरा भत्तिविओअदुक्खिदं दुहिदरं चिरं पेक्खिदुं पारेंति"

अर्थात् माता-पिता पति वियोग से दुखिनी कन्या को ज्यादा दिनो तक नही देख सकते। काव्य मे ऐसी उक्तियाँ भी साभिप्राय होती हैं। इनके द्वारा जहाँ कथोपकथन मे चारुता और प्रभाव आता है वही ये भविष्य की घटनाओ की ओर भी सकेत करती हैं। नेवाज और कालिदास दोनो हो के उक्त कथन दुष्यन्त-शकुन्तला मिलाप और मयनका के एतद्देशीय प्रयत्न की ओर सकेत करते हैं। यो भी मयनका का दोनों के मिलनार्थ प्रयत्न करना स्वाभाविक है। मयनका अप्सरा है अमानुषी है

कन्या का पति है, की प्रत्येक स्थिति से पूर्णतः परिचित है। दुष्यन्त ने जब उसकी कन्या का तिरस्कार किया तब भी वह शकुन्तला की सहायताथ अप्सरस तीर्थ पर पहुची और उसे उठा लाई और अब जबकि दुष्यन्त शकुन्तला के वियोग मे विकल है, शकुन्तला भी पति वियोग मे वैधव्य सा जीवन काट रही है, मेनका का मिलनार्थ प्रयत्न न करना सगत नहीं है। कविराट कालिदास सम्भवत ऐसा सकेत करके उसका निर्वाह का बात भूल गए और दुष्यन्त शकुन्तला के मिलाप मे मेनका का स्थान कहीं न रखा। नेवाज ने अपने संकेत की लाज रखी और मेनका द्वारा इन्द्र से कहलवाया कि वह दुष्यन्त को वहाँ मरीचाश्रम मे किसी प्रकार बुलवा ले ताकि वह शकुन्तला को पुन प्राप्त कर सके। फलत इन्द्र ने दानवो से युद्ध का बहाना करके दुष्यन्त को बुलाने का निश्चय किया और मातलि को इस कार्य के लिए भेजा।

प्रश्न हो सकता है कि यदि मेनका स्वात्मजा को दुष्यन्त से मिलाना ही चाहती थी तो जैसे उठा लाई थी वैसे ही छोड भी आती। लेकिन इस प्रकार से मिलन होने पर सम्भवत दुष्यन्त उसे स्वीकार न करता। शकुन्तला को सम्भवत अग्नि परीक्षा भी देनी होती उसे न जाने कितनी सफाई प्रस्तुत करनी पडती इतने दिन वह कहा रही, उसने क्या किया आदि। इसके अतिरिक्त कृतिकार यौवनावेग मे किए गए विचारहीन कर्म का प्रायश्चित जहाँ वियोगदग्ध हृदयाश्रुओ से कराना चाहता था वहीं सच्चे और वास्तविक मिलन का स्थान भी भौतिकता से परे रखना चाहता था। तात्पर्य यह कि जो मिलन यौवनोन्माद अथवा माया से किसी क्षणिक आकर्षण के कारण होता है उसकी परिणति आसुओ और दुख मे होती है इसके विपरीत जो मिलन तपस्या और साधना के बाद होता है वह वास्तविक मानसिक और स्थायी होता है। रवीन्द्रनाथ टगोर के अनुसार तो अभिज्ञान शाकुन्तलम् पुष्प के फल मे धरती के स्वर्ग मे और पदार्थ के शक्ति मे परिणत होने का इतिहास है। उनके अनुसार "The drama was meant for translating the whole subject from one world to another to elevate love from the sphere of physical beauty to eternal heaven of moral beauty अत दुष्यन्त को मरीचाश्रम मे बुलवाकर शकुन्तला का मिलन कराना ही न्याय सगत और अनिवार्य था।

नेवाज ने दुष्यन्त को दानव युद्ध के बहाने से बुलवाया है यह कार्य वहा शकुन्तला की माता मेनका की प्रेरणा से किया जाता है। कालिदास ने भी यद्यपि दुष्यन्त को बुलवाया है तथापि उसे वस्तुत दानवो से युद्ध करना पडता है उसका वास्तविक प्रयोजन हो राक्षसो से युद्ध करना रहा है। शकुन्तला मिलन तो आकस्मिक घटना मात्र है। इस मिलन सयोग के लिए मेनका अथवा अन्य कोई जन प्रेरक नहीं है।

इसके अतिरिक्त नाटक की एकरूपता तथा प्रवृत्ति के रक्षणार्थ भी मारीचाश्रम मे यह मिलन कराया जाना अधिक समीचीन और उपयुक्त था। शकुन्तला प्रकृति पुत्री है उसका अपने प्रेमी से प्रथम सयोग भी वन वीरुधा और लताओ की साक्षी मे होता है अत पुन मिलन भी आश्रम ही मे प्रकृति के मध्य होना अधिक सगत है। शाकुन्तलम् के फारसी अनुवाद,

चौपाई—सुनतहि राजा[1] तुरत बुलायो । मातलि महाराज[2] ढिग आयो ॥१६८॥(1)

दोहा—मातलि कियो सलाम[3] तव पूछन लग्यो नरेस ।
कहौ कुसल सो रहत है सवके सुपद सुरेस ॥१६६॥

चौपाई—कुसल छेम मातलि कहि नीही[4] । राजा सो फिरि[5] विनती कीन्ही[6] ॥
महाराज ढिग माहि पठायो । यह सदस सुरपति को ल्यायो[7] ॥
हम सो सुर अरि[8] करत लराई[9] । होहु हमारे आनि सहाई ॥
आय[10] दानवन को अंत मारो । वडो भरोसो हमहि[11] तिहारो ॥
मातलि यह सदश[12] सुनायो । सुनि[13] महिपाल महासुख[14] पायो ॥२००॥

---

१ राय (B) २ राजा के (A) ३ प्रनामु (A) ४ दोनी (AB)
५ तब (A) ६ कोनी (AB) ७ यह सदेश सुरनाथ सिपायो (AB)
८ दानव (AB) ९ लडाई (A) १० आनि (AB) ११ हमैं (AB)
१२ सदेसु (B) सदेस (A) १३ सुन (A) १४ बहुत सुख (B)

जिसका उल्था भारत स्थित फारस के राजदूत श्री अली असगर हिक्मत ने किया है की भूमिका म इसी तथ्य का अनुमोदन श्री जी० एस० महाजना ने भी किया है उन्ह ता कालिदास क कलानपुण्य का एक महत् अश इसमे अनुभव होता है । वे लिखते हैं—Perhaps the master stroke of art consists in the harmony which the poet has established between the first and the last acts It is in an hermitage that the play begins, it is also in an hermitage that it ends with the reunion of the lovers"

1—नेवाज ने इस स्थल पर सर्वथा इतिवृत्तात्मक रीति का अपनाया है । कालिदास की भाँति मातलि द्वारा विदूषक के पकडने और दुष्यन्त के क्रोधित होकर बाण चलाने की कथा का वर्णन नहीं किया है । यद्यपि कालिदास का यह प्रसग-समावेशन मनोवैज्ञानिक दृष्टि स ठीक है । कालिदास का दुष्यन्त शकुन्तला क वियोग म दुःखी एव आत्म विस्मृत सा बैठा है ऐसी शोकाकुल अवस्था मे सहायक वीर भाव जाग्रत करने क लिए यह आवश्यक था कि मातलि दुष्यन्त के प्रिय विदूषक को सताये ताकि दुष्यन्त तुरन्त ही क्रोधित हो उठे और उनमें वीरत्व जाग उठे फलत कालिदास ने इस प्रसग की अवतारणा की । मातलि स्वय ही अपने इस कृत्य का कारण स्पष्ट करते हुए कहता है—

दोहा—अँवर आदि पहिरि के कँवर यादि हथ्यार।
राजा अँवर को चल्या ह्वै विमान[1] असवार ॥ २०१ ॥

१ बेवान (AB)

मातलि—(सस्मितम्) तदपि कथ्यते। किञ्चिन्निमित्तादपि मनःसन्तापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः पश्चात् कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः
ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः ॥ ६।३६ ॥

इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

मातलि—यह भी बताता हूँ। मैंने यहाँ आकर देखा कि आपका मन न जाने क्यों बड़ा उद्विग्न है, इसलिए आपका क्रोध जगाने के लिए मैंने यही करना ठीक समझा, क्योंकि —

जिसतन से काष्ठ दाह हो उठता पावक
सर्प छेड़ देने से अपना फन फैलाता।
तेजस्वी जन भी उत्तेजित होने पर ही
अनायास ही विक्रम अपना झट दिखलाता॥

इस प्रकार सिद्ध है कि शोक को मिटाने भगाने और वीर भाव जागृत करने के उद्देश्य से इस प्रसंग की अवतारणा की गई। नेवाज ने लोक कथाकार की शैली को अपना कर, काव्य में वर्णित विरह दृश्य और मातलि आगमन के व्यवधान को, स्वयं पूर्व कथा कह कर भर दिया है। पाठक दुष्यन्त को विरहाक्रान्त देखते तो है तथापि नेवाज के कथन के बीच में आजाने से उस स्थिति का प्रभाव कम हो जाता है और दुष्यन्त में वीर भाव जागृत करने के लिए कालिदासोक्त प्रसंग की अवतारणा करने की आवश्यकता नहीं रहती है। इसीलिए नेवाज ने इस प्रसंग को छोड़ दिया है हाँ राजदरबारोचित शिष्टता का पूर्ण निर्वाह किया है। मातलि आगमन की सूचना चोबदार द्वारा राजा को दिलवाई है। मातलि आकर राजा को सलाम करता है राजा भी उससे इन्द्र की कुशलक्षेम आदि पहले पूछ कर फिर उसके आने का कारण पूछते हैं।

ऐसा लगता है कि नेवाज दरबारी शिष्टता और तद्देशीय प्रभाव से अधिक अभिभूत थे। मुगल दरबार में किसी राजा के सारथि का यह साहस सम्भव ही न था कि वह राजा के प्रिय पात्र को इस प्रकार सता सके। प्रत्युत उसे तो राजा के समक्ष विनय पूर्वक झुकना और अत्यन्त शिष्टता पूर्वक सन्देश देना पड़ता था। अभिज्ञान शाकुन्तलम् का यह प्रसंग राजाओं की पारस्परिक मैत्री और उनके अनुचरों के प्रति सद्व्यवहार की द्योतक है। नेवाज का यह चित्रण तत्कालीन राजदरबारों में सेवकों की स्थिति का भी द्योतक है।

चौपाई—राजा चढि विमान[१] मे[२] आयो। मानलि गगन विऽमान[३] चलायो ॥
नृप व्है मगन गगन नजिकायो[४]। तब यक[५] अचल नजरि मे आया(1)॥२०२॥

दोहा—परसत भुव[६] अरु गगन को लीन्हे ललित[७] बहार।
राजा यो[८] पूछन लग्यो यह है कौन पहार ॥ २०३ ॥

---

१ बेवान (AB)   २ मैं (A)   ३ बेवान (AB)   ४ चलि आयो (B)
५ एकु (B) एक (A)   ६ भुव (B)   ७ अमित (A) असित (B)   ८ तब (B)

1-अभिनान शाकुतल के रचयिता ने यह व्यापार दुष्यत की युद्धोपरा त लौटती हुई यात्रा के समय घटित कराया है और साथ ही अपन खगालीय नान का भी परिचय दन का उपक्रम किया है। कालिदास के अभिनान शाकुन्तल के उपलब्ध पाठा मे इस स्थल पर दो पाठ मिलने हैं—

त्रिस्रोतस वहति या गगनप्रतिष्ठा
ज्योतीषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मि
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्क
वायोरिम परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ देवनागरी सस्करण ॥

त्रिस्रोतस वहति यो गगनप्रतिष्ठा
ज्योतीषि वत्तयति चक्रविभक्तरश्मि ।
तस्य व्यपेतरजस प्रवहस्य वायो–
मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एष ॥ बगाली सस्करण ॥

वायुमण्डल का विभाजन हिन्दुओ न सप्त भागो मे किया है और प्रत्येक भाग मे एक निश्चित प्रकार की वायु का उल्लख किया है। महाभारत क अनुमार ये इस प्रकार हैं —

आवह प्रवहश्चैव तथवानुवह पर ।
सवहो विवहश्चव तदूर्ध्व स्यात् परावह ।
तथा परिवहश्चोर्ध्व वायावै सप्त नमय ॥

सिद्धा त शिरोमणि मे इनकी गणना इस प्रकार की गई है —

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्व
स्यादुद्वहस्तदनु सवहसनकश्च ।
अन्यस्ततोऽपि सुवह प्रतिपूर्वकोऽस्मात्
बाह्यपरावह इमे पवना प्रसिद्धा ॥

दाहा–मातलि या तव कहि उठ्या[1] हेमकूट है नाम ।
मद्दाराज यहि[2] अचल मे[3] कस्यप[4] मुनि को धाम ॥२०४॥

चौपाई—मुनि कस्यप को नृपहि सुनायो[5] । मातलि को यह वचन सुहायो[6] ॥
रथ यहि गिरि पे स मुच कीजे । मुनिवर को दरसन[7] करि लीजे ॥
मातलि अचल निकट[8] रथ ल्याग्रा । राजा उतरि ग्रगन म ग्रायो ॥२०५॥

दोहा—सकुतला को सुत तहा[9] देख्यो जाय[10] नरेस ।
वल सो सिंहनि [11] के सुतहि पचन गहि गहि केस ॥२०६॥
सग लगी छै[12] तापसी[13] तिनकी सुनत न बात ।
सकुतला का सुत गनत[14] सिंहिनि[15] सुत के दान ॥२०७॥

---

१ उठो (B)   २ इहि (B)   ३ मैं (A)   ४ कस्यप (AB)
५ मुनि कस्यप को नृप सुनि पायो (A) कस्यप मुनि कों नृप सुनि पायो (B)
६ सुनायो (AB)   ७ दरसनु (AB)   ८ निकटु (A)   ९ तहाँ (AB)
१० जाइ (AB)   ११ सिंघिनि (AB)   १२ व्है (AB)
१३ तपसिनि (A) तापसीं (B)   १४ गहत (B)   १५ सिंघिनि (AB)

तात्पय यह कि प्रथम वायु माग जो कि पथ्वी से पाताल और सूय तक विस्तीर्ण है भुवर्लोक कहलाता है इसमें प्रवाहित होने वाली वायु का नाम ग्रावह है जिसम मेघ, पुच्छल तारे, विद्युत आदि स्थित है । द्वितीय माग सूर्य का हैं इसमे स्थित वायु का नाम प्रवह है । तृतीय चन्द्र का माग है इसकी वायु सवह सज्ञक है । चतुथ नक्षत्र–माग है जो उद्वह नामक वायु स पूर्ण है । पचम मार्ग ग्रहा का है जिसम सुवह वायु बहती है और तदुपरान्त परावह वायु का क्षेत्र ग्राता है । ब्रह्माण्ड पुराण मे प्रथम चार प्रकार की वायुग्रा का उल्लेख तो इसी प्रकार है किन्तु अतिम तीन क्रमश 'विवहाख्य परिवह परावह" सज्ञक कही गई हैं । ग्रह माग की वायु विवह है, परिवह क्षेत्रीय वायु मे सप्तर्षि और स्वगगा स्थित है और सप्तम वायु परावह तो सौर मण्डल की धुरी ही है ।

प्रश्न यह है कि देवनागरी सस्करण क अनुसार दुष्यन्त मातलि से प्रश्न करता है परिवह नामक वायु क्षेत्र म, कि तु ग्रगले ही श्लोक मे ऐसा ध्वनित हो रहा है कि इनका रथ मेघ पथ पर है । मेघा की स्थिति ग्रावह नामक वायु माग मे है यह विलोमक्रम से अतिम माग है । ग्रत 'परिवह' स एकदम 'ग्रावह तक ग्रा जाना स्वाभाविक एव सुकर नहीं लगता । बगाली सस्करण मे प्रवह वायु क्षेत्राय मार्ग म दुष्य त प्रश्न करता है और इस सूर्य माग के नीचे ही मेघपथ है जो ग्रावह नामक वायु से ग्रापूरित है । इन्द्रलोक की ग्रवस्थिति परावह वायु माग मे है वहाँ से चल कर परिवह क्षेत्र में ग्राते ही दुष्यन्त म जिज्ञासा उत्पन्न

चौपाई—यहि विधि बालक को लषि पायो। नृप के मन अद्भुत रस छायो[1] ॥
बालक संग[2], चित्त अनुराग्यो। मन मन नृपति कहन यो लाग्यो ॥
ज्यो अपने सुत की[3] उर जागति। याको मोहि[4] मया त्यो[5] लागति ॥
बिन सुत को विधि मोहि बनायो। मया लगति लषि पूत परायो ॥
बालहि वैस वीरता[6] वांको[7]। यह[8] अद्भुत सुत है धौ[9] काको ॥
मन मैं उपज्यो[10] अद्भुत रस अति। पूछन लग्यो तापसिन नरपति॥२०८॥

---

१ मायो (B) २ सगहि (A) ३ के (AB) ४ मोह (A)
५ प्रति (B) ६ वीर प्रति (B) ७ वाको (A) ८ यो (A)
९ यह (A) १० उपज्यो (B)

होना स्वाभाविक है तथापि कविराट ने सभी वायु मार्गो का विवरण देना सम्भवत समीचीन नही समझा होगा इसीलिए वे दुष्य त का एकदम विद्युत गति से प्रवह वायु पथ तक उतार लाते हैं और तत्पश्चात् हेमकूट पर्वतावस्थित मारीचिकाश्रम मे – मृत्युलोक का स्वर्गलोक से सगम, वासना की साधना मे परिणति – शकुन्तला मिलन कराते हैं ।

कविराट ने यह शकुन्तला मिलन दुष्यन्त के इन्द्रलोक से वापस लौटने पर कराया जब कि नेवाज ने यह सब उसके इन्द्रलोक जाने के मार्ग में ही सम्पन्न करा दिया है। कविराट-कालिदास 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के द्वारा केवल दुष्यन्त–शकुन्तला की कथा ही का वर्णन करना नही चाहते थे वरन् वे यह भी बताना चाहते थे कि तपरूपि वह्नि मे जलकर वासना जन्य राग भी दैवी, अभिराम, निष्ठामय और शिव बन जाता है। जब व्यक्ति भौतिक रागादि को छोड कर ऊर्ध्वचेता और तापसी बन जाता है यहाँ तक कि उच्च से उच्चतर होते हुए इन्द्रलोक जहा परावह नामक वायु का गमन है जो समस्त सौर मण्डल का नियत्रक है में पहुँच जाता है तो उसकी समस्त वासनायें भौतिक लालसायें और कामनाएँ पूत एव शिव बन जाती हैं। दुष्यन्त विरह की अग्नि में जल कर स्वर्ण ता बन चुका है तथापि उसकी ऊर्ध्व चेतना और आध्यात्मिक गति का आभास पाठकों को इस प्रकार दिया गया है। स्वर्ग से लौटते समय उसका वह वासना और उच्छृङ्खलता कि जिसके वशीभूत होकर उसने महर्षि कण्व की पालिता कन्या, निसर्ग पुत्री शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया था और फिर विस्मृतावस्था मे उसे परित्यक्त किया था शुचि और शान्त हो जाती है। फलत रूप के आसव का प्यासा दुष्यन्त शिशु,भरत के प्रति वात्सल्य भाव से सिक्त हो उठता है। वस्तुत कालिदास का यह स्थान–काल चयन उनकी विशद् चेतना और सयत कल्पना शक्ति का निदर्शन है।

नेवाज के समक्ष ऐसा कोई महान् उद्देश्य न था वे तो केवल लोक प्रचलित आख्यान को कथा काव्य में आबद्ध कर रहे थे इसलिए उन्होंने प्रत्येक प्रसंग के केवल उसी अंश को

दोहा—बोलि उठी तब तापसी कहा कहे हम हन ।
याके पापी बाप को नाउं[1] न काऊ लेत ॥२०६॥
सलज[2] सुसील पतिव्रता अरु कुलवन्ती[3] नारि ।
जेहि बिन कारन तजि दियो[4] घर ते दई निकारि (1) ॥२१०॥

---

१ नाऊँ (A) नांउँ (B) २ सुलज (AB) ३ सकुन्तला सी (AB) ४ दई (A)दया (B)

स्वीकृत एवं चित्रित किया जा कथा विकास मे सहायक था अथवा जिसके बिना कथा को पूर्णता प्राप्त न होती थी । वायुमार्ग का चित्रण 'शाकुन्तल' के भ्रान्तरिक मर्म के विश्लेषण मे भले ही सहायक हो कवि के खगोलीय ज्ञान के प्रकाशन में वह भले ही योग दे किन्तु नाट्य कथा के विकास मे उसकी कोई सार्थकता नही है बल्कि इन सवादो से कथारस मे व्याघात और उत्पन्न होता है । नेवाज ने इसीलिए स्वर्ग तक जाने और पुन लौटने की स्थिति का चित्रण नही किया है । इसके अतिरिक्त नेवाज के इन्द्र ने तो दुष्यन्त को केवल मेनका के कहने पर युद्ध के बहाने से स्वर्गलोक में बुलाया है वस्तुत कोई युद्ध थोडा ही है अत दुष्यन्त का वहाँ तक पहुँचना भी आवश्यक नही है । कालिदास का इन्द्र वास्तव मे युद्ध मे सहयोग देने ही के लिए दुष्यन्त को बुलाता है दुष्यन्त सुरारियो से लडता भी है और फलत इन्द्र द्वारा यथोचित सम्मान भी प्राप्त करता है । इसीलिए कालिदास को ये सब कुछ चित्रित करना समीचीन है उधर नेवाज का भी इस सब कुछ को छोड देना असगत नही है ।

1–महाकवि कालिदास ने इस प्रसग का चित्रण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढग से किया है । वे इस मिलन बिन्दु तक धीरे–धीरे पाठको मे कौतूहल की वृद्धि करते हुए पहुँचे हैं । राजा दुष्यन्त मारीचिकाश्रम के वातावरण से प्रभावित होता है महर्षि कश्यप का पतिव्रत–धर्म पर दिये जाने वाले व्याख्यान का सकेत भी सप्रयोजन है, दक्षिणाग का फडकना और बालक के प्रति अनुरक्ति आदि का वर्णन भी मिलन की ओर कथा को गति देते हैं । कालिदास के अनुसार राजा दुष्यन्त तापसियो के कहने से सर्वदमन का उसके आश्रम की मर्यादा के प्रतिकूल अशिष्टाचरण से वर्जित करता है । स्वत बालक के रूप लावण्य चापल्य बालिस्य के वशीभूत होकर उस मनोरम प्रसग मे सम्मिलित नही होता । मानो राजा दुष्यन्त ऐसे अन्त करण प्रवृत्त्यनुमोदित हृदयग्राही हृदय के उपस्थित होने पर भी अपना राजत्व सुरक्षित रखता है । यद्यपि उसके हृदय में बालक के प्रति वात्सल्य के भाव सावन के मेघ से भर गए हैं तथापि उसकी नागरकवृत्ति उसे सहज, सरल मानव बनने से रोक रही है । पहले कई स्थलो पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नेवाज का दुष्यन्त जन-सामान्य की भाँति आचरण करने वाला साधारण व्यक्ति है वह हर समय राजा के गर्व दर्प का मुखौटा चढाए हुए नही रहता, कम से कम अपने घरेलू–जीवन और प्रेम–प्रणय राग–अनुराग हर्ष–विषाद जसी सहज अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के अवसर पर तो वह सहज मानव है ही । अत यहाँ भी बालक के प्रति तीव्र-वात्सल्य भाव के उद्दीप्त हो जाने पर वह तापसियो द्वारा आमन्त्रित किए

दोहा—ये बातें मुनि के भयो नृप के अति[1] सन्देह[2] ।
फेरि भेद पूछन लग्यो राजा करि अति नेह[3] ॥२११॥

चौपाई—याको पिता पाप जुत जो है। याकी माय[4] कहो[5] तुम को है ॥(1)
राजा यहि[6] विधि बतियन[7] बोलो। फेरि तापसी[8] दोऊ बोली ॥२१२॥

---

१ मन (AB) २ सदेह (B) ३ नेह (B) ४ माइ (AB)
५ कहो (AB) ६ एहि (A) या (B) ७ बात (AB) ८ तापसिनी (B)

जान की प्रतीक्षा नहीं करता वरन् स्वत अपनी सहज जागरित जिज्ञासाओ के शमन के लिए उनके पास पहुँच जाता है और जानना चाहता है कि 'यह अद्भुत सुतहै धौ काको'। कालिदास ने भी कुछ ऐसा ही प्रश्न दुष्यन्त द्वारा तापसियो के समक्ष प्रस्तुत कराया है— अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षे पत्नी ? अर्थात् ता व किस राजर्षि की पत्नी है। यह प्रश्न राजा दुष्यन्त तब पूछने का साहस करता है जब वह यह जान जाता है कि यह बच्चा पौरववशीय है और इसका माता का सम्ब ध अप्सरा कुल से है। इस प्रश्न का उत्तर पाता है– को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम कीत्तइस्सदि' अर्थात् अपना धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले का नाम कौन लेगा। यह उत्तर यद्यपि लगभग वैसा ही है जैसा नवाज के दुष्यन्त को मिला है तथापि नवाज के इस सम्वाद मे जो तालापन और लोक प्रचलित अभिव्यजनात्मकता है वह स्पृहणीय है। 'याके पापी बाप को नाउ न काऊ लेत मे जो तिरस्कार और घृणा अभिव्यजित है वह कालिदास की तापसियो के शिष्ट कथन मे नहीं। इतना ही नहीं शकुन्तला की निर्दोषिता और उसकी गुणातिशयता का उल्लेख भी अत्यन्त समीचीन है। दुष्यन्त के हृदय मे स्वत ही अपना दोष और अत्याचार घहराने लगा होगा।

लोक कथा काव्य में वक्रता यो भी अधिक प्रशस्य नहीं कही जाती वहा तो ग्राम्यता, सहजता एव सरलता ही प्रयोग मे आनी चाहिए। अत नेवाज की यह स्पष्टता युक्तियुक्त और श्लाघ्य है।

1– अभिज्ञान शाकुन्तल' में इस रहस्य का उद्घाटन भी कौशलपूर्ण एव वक्र रीति से हुआ है। बालक भरत की हठ से तग आकर उसका ध्यान बटाने के लिए तापसिया उसका खलने की दूसरी सामग्री के रूप मे मृत्तिका मयूर देती हैं। यह मृत्तिका मयूर कालिदास के नायक पुत्रो का अत्यन्त प्रिय खिलौना रहा है विक्रमोर्वशीयम् के पचम अक मे आयुस भी अपना मृत्तिकामयूर वापस मागता है। मृत्तिका मयूर देते समय वे कहती हैं 'सव्वदमण सउन्तलावण्य पेक्ख । बालक सर्वदमन अपनी माता का नाम सुनते ही दृष्टिनिक्षेप करता है और पूछता है 'कहि वा मे अज्जू । कालिदास ने तापसियो के द्वारा 'शकुन्त' शब्द को 'लावण्य' से सयुक्त करके तापसो के मुख से सप्रयोजन कहलवाया है। शकुन्तलावण्य भरत की माता के नाम की ओर सकेत करता है फलत बालक विचलित होता

दोहा—महावीर यहि[1] बाल को सकुन्तला है माय[2]।
ताहि मेनका त्यहि[3] समय[4] ल्याई इहां[5] उठाय[6] ॥२१३॥
यह सुनि कै[7] आनन्द तव[8] मन सन्देह[9] मिटाय[10]।
हाले[11] आय[12] महिपाल तव लीन्हो[13] बाल उठाइ ॥२१४॥
हरवर भरि आयो गरो दृग आंसू[14] वरसाइ।
कहत[15] तापसिन सों लग्यो राजा यों समुझाइ ॥२१५॥

---

१ यह (B)	२ माइ (AB)	३ इक (AB)	४ सम (AB)
५ जाइ (B)	६ उठाइ (B)	७ करि (A)	८ भयो (B)
६ सँदेह (B)	१० मिटाइ (AB)	११ पास (A)	१२ भाइ (AB)
१३ लीनो (AB)	१४ आसू (AB)	१५ कहन (AB)	

दुष्यन्त के मन की द्विधा भी निश्चय में बदलती है। इसके उपरान्त केवल 'रक्षाकरण्डक' वाला प्रमाण और आता है जो इस बात का सच्चा सुबूत है कि भरत राजा दुष्यन्त ही का पुत्र है। कवि कालिदास ने जिस रीति से इस रहस्य का राजा के समक्ष उद्घाटन किया है वह वस्तुतः बहुत ही अधिक बोधगम्य और तार्किक रीति से सुनियोजित है। प्रमाण प्रस्तुति की प्रक्रिया को हम तीन भागों में विश्लेषित कर सकते हैं—

१ अन्तःकरण प्रवृत्तय प्रमाण— बालक सर्वदमन की ओर सहज ही मन की प्रवृत्तियों का उन्मुख होना और उसके स्पर्श से पितृत्व का उद्दीप्त होना।

२ परोक्ष प्रमाण— बालक के हाथ में चक्रवर्ती के लक्षण दिखाई देना, सर्वदमन का आश्रम नियम विरोधी कार्य करना और राजा दुष्यन्त तथा भरत की आकृति का साम्य।

३ प्रत्यक्ष प्रमाण— बालक का पुरुवंशी होना, बालक की मां की अप्सरा जाति से संबद्ध होना उसकी माता का नाम शकुन्तला होना और अन्ततः रक्षाकरण्डक का दुष्यन्त के प्रति निष्प्रभाव हो जाना।

इस प्रकार कालिदास पाठकों की जिज्ञासा को बनाए रख कर शनैः शनैः राजा दुष्यन्त के मन में सर्वदमन की माता के शकुन्तला – उसकी परित्यक्ता पत्नी – होने का विश्वास जगाते हैं। नेवाज को इस चातुर्य के अपनाने की आवश्यकता न थी क्योंकि उनका काव्य लोक परक है जहां सरलता, स्पष्टता और अकृत्रिमता पूर्ण है। वहां तो राजा दुष्यन्त एकदम तापसियों से प्रश्न करता है और उत्तर में यह जानकर कि इसकी माता का नाम शकुन्तला है जो मेनका की पुत्री है और जिसे उसके पति ने अकारण ही छोड़ दिया है निश्चय कर लेता है कि हो न हो यही मेरी प्रिया शकुन्तला है और सर्वदमन मेरा ही पुत्र

चौपाई—जाको तुम मुख नाउ[1] न काढो। वह[2] पापी हो[3] ही हौ ठाढो ॥
पतिव्रता वह प्रान[4] पियारो। मय[5] पापी बिन हेत[6] निवारी ॥
प्राण पियारो मोहि मिलावहु। मेरो श्रैवो[7] जाय सुनावहु ॥
बालक[8] गरे जु गोंडा[9] राजे। सो व्है मर्प[10] न काटत राजे ॥
यह तापसिन भेद[11]मन आयो[12]। साचो[13] करि दुष्यन्तहि जायो[14]॥२१६॥

दोहा—दौरि गई तब तापसी यह सब भेद[15] सुनाइ[16]।
अपने साथ[17] सकु तलहि ल्याई[18] तहा[19] लेवाइ ॥ २१७॥
मुख मलीन मैले वसन फैले फैले[20] कैस ।
आई पिय के पास तब सकुन्तला यहि भेस[21] ॥ २१८॥ (1)

---

१ नाऊँ (AB)	२ सो (B)	३ हों (B)	४ नारि (AB)
५ मैं (AB)	६ हेतु (A)	७ ऐबो (AB)	८ बाल (AB)
६ गडा (A)	१० साँपु (AB)	११ भेदु (AB)	१२ आनो (B)
१३ साँचहि (A) साँचो (B)	१४ जानो (B)	१५ भेदु (B)	१६ बताइ (P)
१७ हाथ (B)	१८ लाई (A)	१६ जाइ (AB)	
२० फले मले (A) मले मले (B)		२१ बेस (B)	

है। फलत सखिया के समक्ष गलन्गाश्रु हो अपने अभाग्य का चिट्ठा खोल देता है और बालक को गोद म उठा लेता है। बालक के गले में सुशोभित गाडा (रक्षाकरण्डक) सप बन कर राजा को नही काटता यह देखकर तपस्विनिया के हृदय मे राजा के कथन का विश्वास हो जाता है। इस प्रकार अत्यन्त सक्षेप में केवल कथा-तत्व का सगति बिठान हुए कविवर नैवाज ने इस प्रसंग को चित्रित किया है। लोक कथा शैली की दृष्टि से उनकी यह इति वृत्तात्मकता और मात्र कथा क प्रति व्यामोह निद्य नही है।

पद्मपुराण में भी यद्यपि शकुन्तला और मारीच मे मिलने के पूव ही राजा दुष्यन्त का बालक सर्वदमन से साक्षात्कार होता है और वह बालक के विक्रम, रूप-लावण्य मेधा आदि से प्रभावित होकर सहज ही उसके प्रति अनुरक्ति अनुभव करता है तथापि महर्षि मारीच के उसी स्थल पर आ जान से कथा की रोचकता और प्रसग के विकास मे यवधान उपस्थित हो जाता है। मारोच के आने पर राजा पूछता है कोऽय बालस्तपोधन। और उत्तर में मारीच 'तवैव तनया राजन्!' कह कर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह देते है। तत्पश्चात् शकुन्तला से उनकी भेंट कराते हैं और अन्तत शकुन्तला का हाथ राजा दुष्यन्त के हाथ मे पकडा देते हैं। पद्मपुराणीय इस वृत्तान्त में न तो नाटकीयता है और नाही नाक कथा रस। शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलना, सन्तान के अभाव म रोते कलपते राजा दुष्यन्त को पुत्र प्राप्ति आदि प्रसग क्या या ही विरस और शुष्क चित्रित किए जाने थे? कवि कालिदास ने इन प्रसगो में जो जीवन पीयूष बरसाया है वह श्लाघ्य है।

देषत भरि आयो गरो दृगनि रह्यो जल छाय।
पिय ढिग ठाढ़ी ह्वै रही सकुन्तला सिर नाय ॥ २१६ ॥*

---

८ सिर (A)   * यह दोहा B प्रति मे नहीं है।

1–श्री एम० रामचन्द्र राव एम० ए० के प्रबन्ध 'The Heroins of the plays of Kalidasa' के इस कथन म कितना सार्थकता है No wonder therefore, that the contemplation of such and like heroins of the plays of Kalidasa of a Bharya in the मालविकाग्निमित्रम्', of a Pativrata' in the विक्रमोर्वशीयम्, of a Grihini in the अभिज्ञानशाकुन्तलम्, makes the reader taste the ecstasy of literary joy besides ennobling the mind' कालिदास की शकुन्तला गृहिणी – आदर्श गृहिणी की साकार प्रतिमा है। उन्होंने इस स्थल पर जिस गौरवनिमण्डित अपनी दीनता में महान्, अपने अप्रसाधनत्व में प्रसाधित रूप मे उसे प्रस्तुत किया है वह भारतीय संस्कृति म गृहीत आदर्श गृहिणी को सच्चे अर्थों म सामने लाता है।

दुर्भाग्य विताडित निश्छलता एव सात्विकता की प्रतिमा, यौवन-लावण्य की धनी शकुन्तला दुष्यन्त के सामने आती है किन्तु कण्वाश्रम की प्रकृति पनवा स्वच्छन्द, 'कुसुममिव लोभनीय यौवन सम्पन्ना कन्या क रूप मे नहीं वरन् मातृत्व गौरव से विमण्डित तथापि भाग्यताप स प्रपीडित वियोग-तप मे दीक्षित आदर्श हिन्दू रमणी के रूप में। शकुन्तला के इस वप का कितना ममस्पर्शी चित्रण है यह —

'वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणि ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घ विरहव्रत बिभर्ति" ॥ ७।२१ ॥

इसके शरीर पर मैल वस्त्र पडे हुए हैं तप करते करते इसका मुख सूख गया है, इसके बाल एक लट में उलझ पडे हैं, तथा यह शुद्ध चित्त स मेरे वियाग म दीर्घकाल से तप करता चली आ रही है।'

वियोगाग्नि से सतप्त पतिव्रता पत्नी का कितना हृदय द्रावक चित्रण है। भवभूति के उत्तर रामचरित मे वर्णित सीता की स्थिति से तुलना कीजिए—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दर दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथ वा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥"

वस्तुत मारीच आश्रम के शुद्ध सात्विक वातावरण ने हमारी म याजनमनोहरा, अक्लिष्ट कान्ति शकुन्तला को एकवेणी धरा, व्रतोपवासादि से शरीर को सुखा देने वाली 'शुद्धशीला, पतिपरायणा, पुत्रवत्सला आदर्श गृहिणी बना दिया है। आश्रम यह भी है और वह भी आश्रम ही था जहा शकुन्तला मदनशर से व्यथित हर्षित हो आत्मार्पण कर बैठी थी। वास्तव में

चौपाई—राजहि श्रौर न कछु कहि श्रायो। सकु तला के पग[1] सिरु नायो(1) ॥२२०॥

१ पगु (B)

यहा उन सखिया का साथ नही जो राजा दुष्यन्त स लगा दें वरन् यहा तो उन तापसिया का साहचर्य है जो दुष्यन्त का झुका दें। यही कारण है कि मारीच आश्रम हा मे शकुन्तला का वास्तविक आध्यात्मिक पुर्नजीवन प्राप्त हुआ है। "वह सच्च अर्थो मे स्त्रारत्नसृष्टिरपरा बन गई है — शरीर स क्षाम-क्षाम किन्तु अन्तस से पवित्र, निर्मल, निर्विकार और सौवर्ण।"

इस स्थल पर शकुन्तला विजयिनी चित्रित की गई है तभी तो दुष्यन्त उसक चरणो मे गिर पडता है। इसा स्थल पर सर्वदमन क यह पूछने पर कि मात क एप ' शकुन्तला का उत्तर दना कि 'वत्स त भागधेयानि पृच्छ तो सचमुच राजा दुष्यन्त क मर्म का बुरी तरह आहत कर दता है, उसकी वासना और उच्छृङ्खलता का यथाचित दण्ड द ता है। शकुन्तला राजा दुष्यन्त से कोइ गिला शिकवा नही करती वरन् हिन्दू रमणी के समान पूर्व स्मृति कर रा पडती है। इधर शकुन्तला रोती है उधर दुष्यन्त रोता है और तब, "दानो ओर से आसुओ की धारायें निकलकर प्रायश्चित रूप मे उनक पापा के ऊपर बह जाती हैं। इस दण्ड रूप भटठा मे जलकर जब उनका पाप भस्म हा जाता है, तब पुत्र रूपी राग उत्पन्न होकर उनक हृदय के धावो को दोना ओर बठकर भर देता है। शकुन्तला और दुष्यन्त अपना गाहस्थ्य, जो सारे आश्रमो का आधार है नए सिरे से प्रतिष्ठित करते हैं।' (कालिदास और उनका युग भगवतशरण उपाध्याय पृ० ११६)

'धृतैकवेणि' का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने 'सीस एक बेनी धरे' किया है और इन्दुशेखर ने 'एक लट म लटका कच भार' किया है। मेरी समझ मे इसका अर्थ है बिना कधा किए हुए और बिना माग निकाले हुए बालो का एक समूह जा पीठ पर स्वच्छन्द बिखरे हुए हो। Prof K M Shembavanekar ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि—'A Hindu lady devoted to her husband can not comb her hair, can not braid them and can not put on decorations, when seperated from her husband ('प्रोषिते मलिना कृशा) अत नवाज का 'फैन फल केस' लिखना भा अयुक्ति सगत नही कहा जा सकता।

1—नवाज का यह कथन कि राजहि और न कछु कहि आयो। सकुन्तला क पग सिरु नायो', आपातत अभिज्ञान शाकुन्तल ही स प्रभावित है। कालिदास ने अपने दो नाटकों 'मालविकाग्निमित्रम्' और अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' मे नायकों का नायिकाओं के चरणा म गिराया है। भगवतशरण उपाध्याय क अनुसार राजाओ का यह आचरण 'वात्स्यायन क विशिष्ट सूत्र स सादृश्य रखता है "मालविकाग्निमित्रम्' क तीसरे अंक की समाप्ति पर राजा अग्निमित्र इरावती के पैरो पर पडता है, उसी प्रकार शाकुन्तल के सातवें अक म राजा

दोहा—पाप[1] लगावत क्यों हमैं परसि हमारे पाय[2]।
यो कहि मुसकि[3] सकुंतला[4] राजहि लियो उठाय[5] ॥२२१॥

चौपाई—सकुंतला[6] फिरि बात चलाई। महाराज अब क्यो सुधि आई[7] ॥
राजा तब यह बात सुनाई[8] । यह मय जबहि अगूठो पाई[9] ॥
याहि लपति[10]हा फिरि सुधि आई[11]। तब ते विरहमया अधिकाई[12]॥२२२॥

---

१ पापु (B) २ पाइ (AB) ३ मुसुकि (AB) ४ सकुंतल (B) ५ उठाइ (AB)
६ सकुंतल (B) ७ क्यों तव मेरी सुधि बिसराई (B) ८ महाराज अब क्यों सुधि आई (B)
९ राज यह तव बात सुनाई (B) इस चौपाई के स्थान पर (A) प्रति में निम्न चौपाई है —
राजा फेरि कही यह बानी। यह कछु बात कही नहीं जानी ॥
१० याही लपतहि (A) ११ तब ही सुरति तिहारी आई (B)
१२ AB प्रति मे यह अर्द्धाली नहीं है।

दुष्यन्त भी। इन दोनो राजाओ का पैर-पड़ना 'वात्स्यायन' के एक विशिष्ट सूत्र मे सादृश्य रखता है। (तत्र युक्तरूपेण साम्ना पादपतनन वा प्रसन्नमनास्तामनुनयन्नुपक्रम्य शयन मारोहयेत्—टीकाकार द्वारा उल्लेख) (कालिदास का भारत पृ० ११६) नायिका के चरणो में गिरने की रीति प्रायः नायिका के कोप–मान आदि के शमन के लिए प्रयुक्त की जाती रही है जैसाकि निम्न श्लोको मे भी ध्वनित है।—

साम भेदोऽथ दानञ्च नत्युपेक्षे रसान्तरम्।
तद्भङ्गाय पतिः कुर्यात् षडुपायानिति क्रमात् ॥
तत्र प्रियवचः साम भेदस्तत्सख्युपार्जनम्।
दानं व्याजेन भूषादेः पादयोः पतनं नतिः ॥
सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधारणम्।
रभसत्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम् ॥

'मालविकाग्निमित्रम्' में अग्निमित्र उस समय इरावती के चरणों में गिरता है जब नाटक के तीसरे अंक में इरावती अग्निमित्र के दक्षिण नायकत्व से रुष्ट होकर रशना (तागड़ा) लेकर उस पर प्रहार करने चलती है अर्थ यह कि इरावती के क्रोध का शमन करने के लिए अग्निमित्र 'वात्स्यायन' द्वारा प्रतिपादित इस शैली को अपनाता है। वस्तुतः तत्कालीन सामन्तों की प्रेमगाथा के स्वभाव में अच्छी पैठ रही है यह उनका गुण समझा जाता रहा है। राजा दुष्यन्त भी इस कला में निपुण है वह बड़ी चतुराई से कण्वाश्रम में पली ऋषिराजपुत्री शकुन्तला का मन मोहता है और यहाँ उसको प्रसन्न करने के हेतु उसके चरणों मे गिर पड़ता है।

दोहा—जादिन ते आई सुरनि ता दिन ते यह हाल।
निशि[1] दिन[2] फिकरत[3] ही रह्यो जीवो मो[4] जजाल[5] ॥२२३॥

चौपाई—अब कछु गनौ न दोष[6] हमारो। कठिन पीछले[7] दुषहि बिसारो॥२२४॥

दोहा—ये बातें[8] सुनि सकुंतला बोली करि अनुराग।
महाराज को दोस कह पुले[10] हमारे[11] भाग ॥ २२५ ॥

चौपाई—नप सिप नृपति सुपन सो छाया। मुनि मुनि कश्यप नृपहि बोलायो[12]॥२२६॥

१ निसि (AB) २ दिनु (A) ३ कहरत (AB) ४ भयो (AB)
५ जवाल (AB) ६ दोसु (AB) ७ पिछले (A) पाछिलो (B) ८ दुख (A) दुष्य(B)
९ वचन (AB) १० बुरो (AB) ११ हमारो (B)
१२ विधि न फिरि आनंद दिखायो (AB)

महाभारत अथवा पद्मपुराण में वर्णित शाकुंतलोपाख्यान में यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित नहीं है। यह सब कुछ कवि कालिदास की ही उद्भावना है जो निःसन्देह उनके तत्कालीन सामन्तीय प्रभाव का द्योतक है। क्या नायक का इस प्रकार नायिका के चरणों में पतित होना उसके गौरव को कम नहीं करता? एक ओर राजा दुष्यन्त सर्वत्र ही एक अकल्पित गौरव-प्रभा-मण्डल से वेष्ठित है, पौरुष एवं राजत्व के दर्प से विमण्डित है और दूसरी ओर शकुंतला को देखकर इतना भाव विह्वल हो जाता है कि उसके चरणों में गिर कर रोने लगता है। मुझे सन्देह है कि आज भी नारी के प्रति अटूट अनुराग रखने वाले तुलसीदास' ऐसा कर सकेंगे।

नेवाज इस स्थल पर सर्वांगत कालिदास से प्रभावित हैं। हो सकता है उनके युग में भी पुरुष नारी के चरणों में गिरकर उसकी अभिनिसना करता हो। हाँ एक बात है इस प्रसंग से शकुन्तला का चरित्र अवश्य ही उदात्त से उदात्ततर हो गया है। वह राजा दुष्यन्त को उठाकर जब यह कहती है कि– 'पाप लगावत क्यों हमें परसि हमारे पाय' तो आदर्श हिन्दू-रमणी का उदाहरण प्रस्तुत करती है कालिदास ने यद्यपि यह तो नहीं कहलवाया है तथापि इस समस्त तिरस्कार जन्य पीडा का कारण पूर्व जन्म के कर्मों के मत्थे मढ दिया है—

"उत्तिष्ठतु आर्य्यपुत्र। नूनं मे सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाम मुखमासीत्, येन सानुक्रोशोऽपि आर्य्यपुत्रो मयि विरस संवृत्त।"

उठिए, आर्यपुत्र! उन दिनों पूर्व जन्मों का कोई पाप फल रहा होगा कि आप जैसे दयालु भी मुझ पर कठोर बन गए।

शकुंतला की इस क्षमाशीलता में ही उसकी सच्ची विजय द्योतित है। 'सच्ची हिन्दू नारी अपनी विपदाओं के लिए पति को कभी दोषी नहीं ठहरा सकती। वह तो केवल 'श्रद्धा' है जिसे 'क्रिया' का संयोग प्राप्त करना है क्योंकि तभी उसका जीवन सार्थक हो सकता है।" (कालिदास रमाशंकर तिवारी पृ० २०४)

दोहा—तन मे नही समात यो मन मे बढ्यो हुलास।
सकुंतला अरु[1] सुत सहित आयो नृप[2] मुनि पास ॥ २२७ ॥

चौपाई—राजा[3] लपि प्रनाम तव कीन्हो[4]। आसिरवाद[5] महामुनि दीन्हो ॥
अपने ढिग मुनि नृपहि बोलायो। आदर पूर्वक[6] तह[7] वैठायो ॥२२८॥

दोहा—सकुंतला की ओर[8] लपि अरु लपि सुत अवदात।
यहि विधि तब महिपाल सो कही महा मुनि वात ॥ २२६ ॥
सकुंतला है कुलवहू[9] यह सुत है सब[10] जोग।
राजवस के रतन[11] तुम भल्यो[12] वन्यो[13] सयोग ॥ २३० ॥

---

१ औ (B) २ B प्रति मे नहीं है 'मुनि के बाद 'के' है। ३ राज (B) ४ कीनो (AB)
५ आसीरवाद (A) आसिरवादु (B) ६ पूरवक (A) पूरव (B) ७ तेहि (AB)
८ वोर (B) ९ बधू (AB) १० तुम (AB) ११ रत्न (B)
१२ भलो (AB) १३ भयो (AB)

1—पद्मपुराण और महाभारत में पुत्र (सर्वदमन अथवा भरत) का महत्व बहुत अधिक है। महर्षि मारीच और अशरीरिणी वाणी दोनो ही भरत के भावी चक्रवर्तित्व की घोषणा करते हैं, उसके सर्वदमन और भरत नामा की सार्थकता का विश्लेषण करते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् म भी इस प्रसग मे भरत की इस महत्ता का सरक्षण किया गया है यद्यपि शकुन्तला और दुष्यन्त को भी उपयुक्त आशीर्वादात्मक वचना से अभिसिंचित किया गया है। नेवाज के प्रस्तुत काव्य मे भरत का महत्व नाम मात्र का है-यह शाकुंतल दुष्यंत और शकुन्तला के पुर्नमिलन म एक माध्यम मात्र है अत उसके व्यक्तित्व क चित्रण की उन्होने कोई आवश्यकता नही समझी है इस स्थल पर भी जहा कालिदास भरत का 'वित्त' कह कर महनीयता प्रदान करते हैं नेवाज उसे सब जोग ही बताते हैं। शाकुन्तलम् मे इस स्थल पर मारीच का कथन इस प्रकार है—

"दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्त विधिश्चेति त्रितय तत्समागतम्' ॥ (७।२६)

इन्दुशेखर ने इसका अनुवाद यों किया है—

सती पत्नी यह सुत अभिजात,
तुम्हारा फिर इनमे यह योग।
हुआ है मानो अब सम्पूर्ण,
त्रयी श्रद्धा-धन-विधि सयोग ॥

यह श्रद्धा-धन और क्रिया की त्रयी वस्तुत अत्यन्त दुर्लभ है। यद्यपि श्रद्धा और विधि के इस संयोग को शकराचार्य ने बहुत अधिक मान्यता प्रदान नहीं की है तथापि

चौपाई—मुनिवर सुभ यह बात सुनाई । राजा[1] फिरि यह बात चलाई ॥
मुनिवर कहहु दया मन ल्यावहु । मेरे मन को भरम मिटावहु ॥
तुम त्रिकाल की जानत बातै । मय[2] तुमको यह पूछत यातै[3] ॥२३१॥

दोहा—क्यो गधर्व विवाह मे[4] याके सग करि प्रीति[5] ।
फिरि मो को सुधि नहि[6] रही अद्‌भुत है यह रीति ॥ २३२॥

चौपाई—पीछु यह घर बैठे आई । मो सो घर मे रहन न पाई ॥
पहिलें[7]मय[8]क्यो सुधि बिसराई । लषत अगूठी[9] क्यो सुधि आई ॥
मो को जानि परत कछु नाही । भयो अचभौ यो मन माही ॥
राजा यहि विधि वचन[10] सुनायो । मुनिवर हसि राजहि[11]समुझायो॥२३३॥

दोहा—सकु तला को मेनका ल्याई[12] जबै[13] उठाय[14] ।
तब ही यह[15] धरि ध्यान मे[16] जायो भेद[17] बनाय[18] ॥२३४॥
दयो सुसाप[19] सकु तलहि दुरवासा[20] करि रोस[21] ।
ताते तुम बिन सुधि[22] भये तुम्हैं कछू नहि[23] दोस[24] ॥२३५॥

---

१ राज (B) २ मैं (AB) ३ तात (B) ४ कियो गधरप ब्याह मैं (A) कियो गधरब ब्याहु मैं (B) ५ प्रीत (A) ६ ना (AB)
७ पहिले (AB) ८ मै (AB) ९ अगूठीं (AB) १० सदेह (A)
११ यों नृपति (A) १२ ल गई (B) १३ जब (B) १४ उडाइ (B)
१५ यहि (A) १६ मैं (AB) १७ भेदु (B) १८ बनाइ (B)
१९ सरापु (B) सराप (A) २० दुरवास (B) २१ रोसु (B) रोष(A)
२२ बेसुधि (AB) २३ नहीं (AB) २४ दोष (A) दोसु (B)

पूवमीमासा में इसका उल्लेख सादर किया गया है । शकुन्तला श्रद्धा भरत धन और दुष्यन्त क्रिया श्रद्धा और क्रिया के समन्वय से वित्त की प्राप्ति एक अनुकरणीय आदर्श है ।

कालिदास की ये उपमायें सूक्ष्म हैं वे यों भी ऐसी सूक्ष्म उपमायें देना बहुत अधिक पसन्द करते हैं किन्तु इन उपमाओ का आनन्द केवल वे ही जन ले सकते हैं जो विद्वान और काव्य रसिक हैं सामान्य जन इनके रस से तृप्त नही हो सकता है । नेवाज की कृति लोक के लिए सामान्य मेधा के लिए है उनके लिए है जो हिन्दी भाषा के अच्छे जानकार नहा हैं अत उन्होने लोक जीवन में प्रचलित विशेषणों और उपमाओ ही का इस्तेमान किया है । शकुन्तला को कुलबधू (क्योकि दुष्यन्त उसे दुराचारिणी, मीठी बातें करके लोगो का मन मोहने वाली और न जाने क्या क्या समझता था) पुत्र भरत को सर्व योग्य और दुष्यन्त को राजवश का मणि कह कर उनके सामान्य पारिवारिक जीवन की रिक्तता का भर दिया है ।

चौपाई—सै[1] मराय[2] म्पियन मुनि[3] पायो । सकु तला को नाहि सुनायो[4] ॥
सपियन वह मुनि धाय मनायो । तब मुनि कछुक दया मन ल्यायो[5]॥
मुनि यह कह्यो याहि[6] सुधि ऐहै । जवहिं[7] लपन अगूठी पैहै ॥
यह कहि मुनि टरिगो दुपदाई[8] । सो वह वात साचु[9] ठहराई ॥
पहिले तुम सब सुधि बिसराई । लपन अगूठी फिरि[10] सुधि आई ॥
याको दुप मन कछु नहि आनो[11] । मेरो कह्यो साच[12] करि मानो ॥
❀ ❀ ❀
सकु तला सो चहत मिलायो । इद्र तुमहि[13]यहि हेत[14]बुलायो॥२३६॥

दोहा—सकु तला अरु[15] सुत सहित सुप का लिए[16] समाज ।
करहु जाय घर जाय कै महाराज अब राज[17] ॥ २३७ ॥

चौपाई—इद्रहु यहै कहाय पठायो । मय तुमको यहि हेत बुलायो[18] ।
काज हुतो सो भयो हमारो । तुम अब अपने धाम[19] सिधारा(1) ॥२३८॥

---

१ सो (AB) २ सरापु (B) ३ मुन (A) ४ सपियन वहु मुनि धाय मनायो (A)
५ (AB) प्रति मे यह सम्पूर्ण चौपाई नहीं है । ६ नृपति (A) नृपहि (B)
७ जब निज (A) जब यह (B) ८ जो कछु मुनि कहिगो सुपदाई (A) जो कछु मुनि कहिगो दुपदाई (B) ९ सांच (A) सांचु (B) १० अब (A)
११ याको सोचु नहीं मन आनो (AB) १२ सचि (A) साचु (B)
❀इस स्थल पर A प्रति मे निम्न अश और है —

दोहा—देख्यो तब धरि ध्यान मे, दुर्वासा को रोष ।
कनु महामुनि हू नहीं, गनो तिहारो दोष ॥
चौपाई— यह सुष वाहो मुनिहि सुनायो । घर को जाइ कहाइ पठायो ॥

१३ तुम्हैं (AB) १४ काज (B) १५ औ (B) १६ लियो (A)
१७ जाइ आपने धाम को करो अचल ह्वै राज (AB) १८ तब एक दूत इद्र को आयो । इद्रहु यहै कहाइ पठायो (A) दूसरो B प्रति मे यह नहीं है । १९ घर (A) घरे (B)

1—जैसाकि पहले भी सिद्ध किया जा चुका है कि इन्द्र ने राजा दुष्यन्त को मेनका के कहने से शकुन्तला का उनसे मिलन कराने के लिए नहीं बुलाया था । उन्होंने तो वस्तुत कालनेमि आदि दानवों का सहार करने के लिए मातलि को भेजकर दुष्यन्त को आमन्त्रित किया था । यह शकुन्तला-मिलन तो सर्वथा आकस्मिक, अप्रत्याशित, अचिंतित घटना है । एक बात और इन्द्र की अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुसार दुष्यन्त और शकुन्तला के इस मयोग-वियोग में कोई रुचि भी नहीं है किसी भी स्थल पर वह तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते अथवा उसमे किसी प्रकार का सहयोगादि देने का उपक्रम करता हुआ दिखाई नहीं देता । हाँ, अलबत्ता वह विश्वामित्र की तपस्या-खंडन तक इस कथा में

दोहा—यो मुनि चढ़्यो[1] विमान[2] म[3] मुनि को करि परिनाम[4]।
सकुंतला सुत सहित नृप आयो[5] अपने धाम ॥ २.९ ॥

❀ ❀ ❀

चौ०–यहि[6] विधि भाल भाग[7] सो[8] जाग्यो[9]। राजा राज करन फिरि[10] लाग्यो[11]॥

---

१ चढ़ि (AB) २ बेवान (AB) ३ में (AB) ४ परनाम (AB) ५ आये (B)

❀ इस स्थल पर AB प्रति मे ये पाठ और है —

हिय मे लाइ सकुंतला, मेट विरह संताप।
नरपति प्रेम समुद्र मे, भयो मनो गड़ोगाप॥
नित नित सुख नित प्रीति दुहु दिन दिन बढ़ती जाति॥
आनन्द मे बूझि ना परति, कित बीतत दिन राति॥ (A)
हिय मे लाइ सकुंतल मेटे विरह संताप।
नरपति प्रेम समुद्र में भयो मनों गड़गाप॥
नित नित सुख नित प्रीति दुहु छिन छिन बढ़ती जाति।
आनन्द मे बूझि न परति कित बीतत दिन राति॥ (B)

६ एहि (A) ७ भागु (B) ८ मे (A) मैं (B)
९ जागे (A) १० यौं (A) तब (B) ११ लागे (A)

सन्निहित या तदुपरान्त मेनका और इन्द्र का वार्तालाप तक कहीं वर्णित नहीं है। अत राजा दुष्यन्त का मातलि द्वारा पुत्र-पत्नी प्राप्ति पर बधाई देने पर एकाएक यह कह बैठना कि– अभूत्सपादितस्वादुफलो मे मनोरथ। मातले न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्त स्यात्।' और उत्तर में मातलि का यह कहना कि–' किमीश्वराणा परोक्षम्।'' (आज मेरे मनोरथ का सुन्दर फल मिल गया। क्या इन्द्र को भी यह सुन्दर वृत्तान्त ज्ञात हो चुका होगा।) कुछ बेतुका सा लगता है।

नेवाज ने इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग को इस असंगति से अच्छी प्रकार बचाया है। उनके अनुसार मिलन का यह सम्पूर्ण प्रसंग पूर्व कल्पित, पूर्व नियोजित है। इन्द्र अपनी प्रिय नृत्यांगना मेनका के कहने से दानवयुद्ध के बहाने दुष्यन्त को बुलवाता है और मार्ग में मातलि उन्हें (दुष्यन्त) भगवान मारीच के दर्शनार्थ हेमकूट पर्वत पर ले जाता है जहाँ यह सम्पूर्ण व्यापार घटित होता है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि इन्द्र भी योग दृष्टि सम्पन्न है। भगवान मारीच के आश्रम मे घटित होने वाली प्रत्येक घटना को वह देख रहा है यो भी वह इस समस्त व्यापार में बहुत अधिक दिलचस्पी रखता है अत शकुंतला और दुष्यन्त का मिलन हो जाने पर उसका यह सन्देश भेजना संगत है।

नृप के सब सुख है अति राजी[1] । घर घर पुर मे नौमति[2] बाजी ॥
सकुंतला सु भई[3] पटरानी । यतनी यह ह्वै चुकी कहानी[4] ॥ २४० ॥ (1)

॥ इति श्री स्वधातरंगि या सकुंतला नाटक कथा चतुर्थस्तरग[5] ॥

---

१ नप के सुख सब रयत राजी (AB) २ नौबति (AB) ३ भई (A) भई अब (B)
४ कवि नेवाज सब कथा बखानी (AB)
५ इति श्री सकुंतला नाटक कथा समाप्त । शुभमुयात ॥ (A)

इस स्थल पर B प्रति मे निम्न पाठ और है —

ऐसे नेवाज कविस्वर याहि सकुंतला नाटक की करी भासा ।
सो बिगरी बहुत काल कों पाई जहा तहां याके भये पद नासा ।
सोधि क सुहृद करी इहि कों दुरगापरसाद स्वबुद्धि बिलासा ।
याहि जुल पढ़िहैं सुनिहैं तिनके घर होय है आनन्द बासा ॥

दोहा—याके पढ़िबे तें कबहु होत न साजन वियोग ।
बिछुरयो हू बहु काल को पाव बेगि सजोग ।
आदौ जयुर देस क अब कासी में धाम ।
है दुरगापरसाद पुनि इहि सोधक को नाम ॥

॥ इति सकुंतला नाटक कथा समाप्ता ॥

1—लोक वार्ताओ लोक कथाओ और लोक नाटको मे प्राय लेखक इसी प्रकार कथा का अन्त करते हैं । वस्तुत यह रीति शास्त्रप्रतिपादित 'भरत वाक्य' का लोकगत सस्करण है । ग्रामीण कथाकार जिस प्रकार अन्त मे कहता है कि 'जसा इनको हुई वसी सबकी हो और कहानी खतम' उसी तरह निवाज ने इन चौपाइयो मे नाटक का समाहार किया है । किन्तु भरत वाक्य मे आशीर्वचन भी सम्मिलित रहता है जैसा कि ग्रामीण जनप्रचलित 'वैसा सबकी हो' मे भी आभासित है, वह निवाज मे नहा है । कालिदासीय शाकुन्तला में यह 'भरत वाक्य' अत्यन्त महनीय और शास्त्रीय है—

प्रवर्तता प्रकृति हिताय पार्थिव
सरस्वती श्रुतिमहता न हीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहित
पुनर्भव परिगतशक्तिरात्मभू ॥ ७।३५ ॥

श्री रघुनेसर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

सदा प्रयत्नशील हो नरेश राज्य के लिए
सुधीजनों की भारती सदा हो गौरवान्विता ।
स्वयंभू रुद्र की कृपा कलाप के प्रभाव से,
मुझे भी पार कर सकू न जन्म दूसरा मिले ।

दोहा—युग नव वसु अरु चन्द्र पुनि पौष असित भृगुवार।
रसतिथि ललित सकुन्तला नाटक लिख्यो सभार(1)॥ २४१ ॥

नाटक का अन्तिम पद, जिसमे अभिनेताओ, दर्शको आदि के लिए शुभाकाक्षायें व्यक्त की जाती हैं 'भरत वाक्य' कहलाता है। यह नाटक के प्रमुख पात्र द्वारा नाटकीय पात्र के रूप मे नहा वरन् नाटक समाप्त होने के बाद सामान्य रूप मे कहा जाता है। प्रमुख पात्र के द्वारा कहे जाने के कारण इसकी सज्ञा 'भरत वाक्य' है। यह भी सम्भव है कि नाट्य शास्त्र के आदि प्रणेता भरत मुनि के सम्मान में इसे यह सज्ञा दी गई हो क्योकि सम्भवतया उन्होने भी तो देवताओ द्वारा अभिनीत नाटक के सूत्र को धारण किया था अत उनके द्वारा कहा गया वाक्य ही 'भरत वाक्य' सज्ञक हुआ और तब से सभी नाटको मे प्रधान पात्र या सूत्रधार इस परम्परा का पालन करता है।

लोक नाटको अथवा कथाओ मे इसका रूप कुछ बदल गया है। वहा प्राय इस बात का निर्देश रहता है कि इस काव्य, कथा अथवा नाटक के पढने, सुनने अथवा देखने का क्या फल होता है। रतन रग ने जो कि 'छिताई वार्ता' का लेखक है अपनी पुस्तक के अन्त में इस कथा के श्रवण का फल इस प्रकार लिखा है—

रतन रग कवि देखि विचारी
करि कथा सो अम्रित सारि
इतनी कथा सुनै दै कान
तिनको घुरै गग अस्नान ॥

इतना ही नहा सत्य नारायण की कथा, श्रीमद्भागवत्, सुखसागर प्रभृति कथाओ के अन्त मे भी इस तथ्य की साक्षी उपलब्ध हो सकती है। कवि नेवाज ने इस प्रकार 'भरत वाक्य' के परिवर्तित रूप का सन्निवेश अपने काव्य मे नहा किया। B प्रति के शोधक दुर्गाप्रसादजी ने इस कमी को पूरा किया है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि 'याहि जुनै पढिहैं सुनिहैं तिनके घर होय है आनन्द बासा। और—

याके पढिवे तें कबहु होत न साजन वियोग।
बिछुरयो हू बहु कान का पावै बगि सजोग॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सकुन्तला नाटक' को लोकनाट्य शैली ही के अन्तर्गत दुर्गाप्रसाद जी ने भी माना है।

1—यह दोहा मेरी प्रति का लिपिकाल प्रतीत होता है। लिपिकर्त्ता ने उसी शैली मे जिसमे प्राय प्राचीन कवि काल का इगित दिया करते थे अपने इस लिपि कर्म के काल का भी परिचय दिया हैं। सिद्धान्तानुसार अक वामा गति इसका हल यो होगा—

चन्द्र=१ वसु=८ नव=९ और युग=४ या २, असित=कृष्णपक्ष, भृगुवार=शुक्रवार रसतिथि=६

इस समाधान म भ्रोर ता सब ठीक है लेकिन युग ॰
चार हाते हैं—कृत, त्रेता द्वापर भ्रोर कलि लेकिन युग
मतलब यह कि सवत् १८९४ भा हो सकता है भ्रोर १८९
मासीय कृष्णपक्ष मे रसतिथि को च द्रवार पडता है भ्रत
१८९२ पौष कृष्ण ६ का शुक्रवार है इस दिन ईसवी सन् १॰
तारीख है। भ्रत भ्रथ होगा कि पौष कृष्ण ६ सम्वत् १८९२।
१८३५ ई० शुक्रवार को यह ललित' सकु तला नाटक सम्भाल

यह भी सम्भावना हा सकती है कि लिपिकर्त्ता का नाम 'ल
कई स्थलों पर इस शब्द की भ्रावृत्ति हुई है।

—०—